ऐसा क्यों ?

भाग – 2

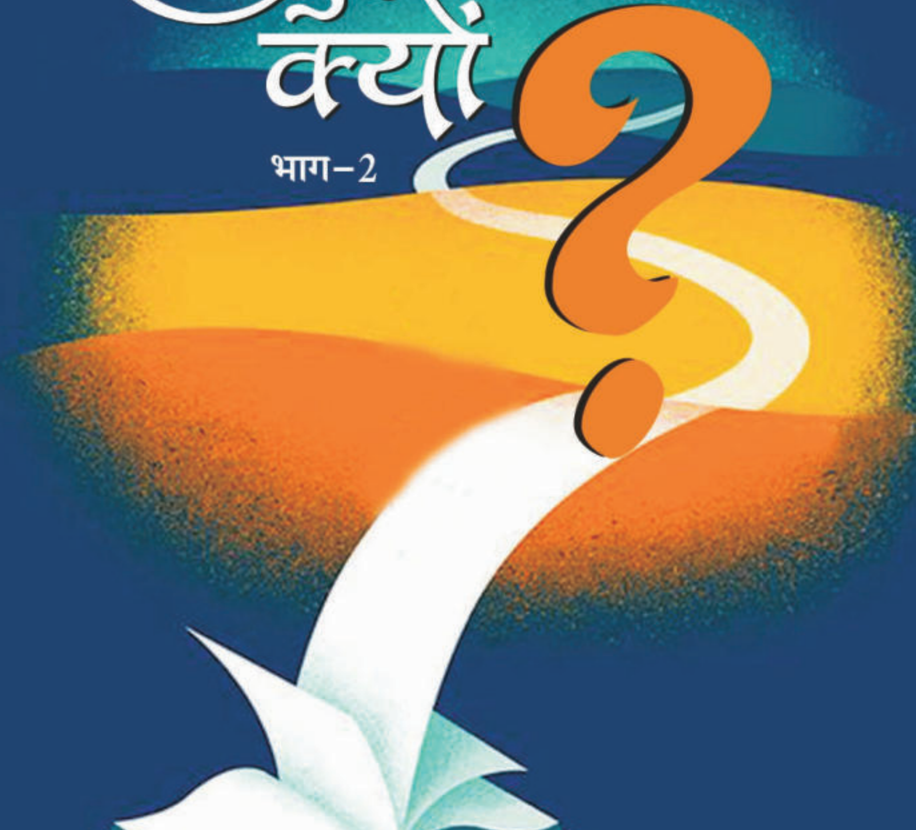

कृतिकार

भक्तामर महोदधि उच्चारणाचार्य विनम्रसागर

ऐसा क्यों ?

भाग-2

कृतिकार

भक्तामर महोदधि उच्चारणाचार्य विनम्रसागर

कृति– ऐसा क्यों ?

शुभाशीष – परम पूज्य राष्ट्रसंत गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महामुनिराज

कृतिकार – परम पूज्य उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज

प्रेरणा – श्रमणी आर्यिका 105 विमलश्री माताजी

संकलन – श्रमणी आर्यिका 105 विनेहश्री माताजी

प्रकाशक – वीतराग श्रमण श्रुत संवर्धन ट्रस्ट

प्राप्ति स्थान – *वीतराग श्रमण श्रुत ग्रंथालय, भिण्ड (म.प्र.)
*सीपुर समता तीर्थ, सीपुर, सलुम्बर (राज.) मो. 09828613614
*धर्मप्रभावना न्यास, भिण्ड मो. 09826801542
*देवेन्द्र जैन, बीना (म.प्र.) मो. 07580223344
पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग अपेक्षित है।

मुद्रक : **ज्योति ग्राफिक्स, जयपुर**
मो. 8290526049, 8619727900 jyotigraphics84@gmail.com

पुरोवाक्

आज भारत देश में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो ज्ञान से पूर्ण हो। संसार में चारों ओर अज्ञानता का बोलबाला है ऐसे माहौल में हर इंसान के अंदर कई प्रश्न उठते रहते हैं उसकी जिज्ञासाओं का सही समुचित समाधान बहुत कम लोगों को मिल पाता है समाधान में अभाव चिंता, विकल्प, टेंशन, बौदरेशन, अवसाद, असमंजस, दृढता रहित स्थिति बन जाती है। सही समाधान के अभाव में व्यक्ति कभी-कभी टेंशन में पहुँचकर सुसाइड तक कर लेते हैं, कई लोग अटैक में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। कई डिप्रेशन में चले जाते हैं और कई लोग कौमा के शिकार हो जाते हैं ऐसे लोगों को मृत्यु के बाद भी कई वर्षों तक समाधान नहीं मिल पाता है और अज्ञान के परिवेष में फिर कई बार मरण के दु:खों का सामना करना पड़ता है।

व्यक्ति के मन में जिज्ञासा उठना अच्छी बात है क्योंकि यही से तर्कशक्ति का विकास होता है लेकिन जिज्ञासा का सही समाधान मिल जाना हमारे लिए भाग्य की नहीं सौभाग्य की बात है। जिज्ञासाओं का सही समाधान व सही ज्ञान संतों के द्वारा ही हर व्यक्ति को प्राप्त हुआ करता है। कुछ ऐसी जिज्ञासा जो बहुत ही रुचिकर है और उनके समाधान भी पाने की इच्छायें व्यक्ति करते हैं ऐसी जिज्ञासाओं को हमने यहाँ एकत्र किया है और उनके समाधान भी अपने अल्प क्षयोपशम से आपके समक्ष रखे हैं इन जिज्ञासाओं को प्रवचन, स्वाध्याय जिज्ञासाओं का समाधान के द्वारा उत्तर दिये हैं। इन जिज्ञासाओं में जो भी मेरे द्वारा समाधान किया गया है ये सब परम पूज्य आत्मज्ञ गुरुदेव श्री विरागसागर जी का परम आशीष ही है मैं तो निमित्त मात्र बनकर सामने आ गया हूँ।

इन सबको एकत्र करने का कार्य हमारे संघ की श्रमणी आर्यिका श्री विनेहश्री माताजी के द्वारा किया गया है उनकी इन कार्यों में विशेष रुचि के लिये मेरा उन्हें बहुत बहुत आशीर्वाद है उनकी यह रुचि निरंतर वृद्धि को प्राप्त होती हुई साधना और समाधि की यात्रा तक जाये उनके जीवन में स्वस्थता, प्रशस्तता निरंतर बढ़ती रहे।

–उच्चारणाचार्य विनम्रसागर

हृदयोद्गार

अनादि अनिधन तीर्थंकर परम्परा में शिष्य और गुरु का संबंध अनिर्वचनीय रहा है। गुरु के बिना शिष्य में शिष्यत्व नहीं झलकता है और शिष्य के बिना गुरु भी गुरुत्व को प्राप्त नहीं होता क्योंकि गणधर के अभाव में भगवान महावीर की दिव्यध्वनि तिरेसठ दिन तक नहीं खिरी थी कारण था शिष्य का अभाव। उसी सनातन परम्परा को अर्वाचीन आचार्यों ने भी आत्मसात् किया। शिष्य प्रतिशिष्य को तत्त्वादिक का दिग्दर्शन कराया।

शिष्य भी आचार्य भगवन्तों ने दो प्रकार के बतलाये हैं। एक आज्ञा प्रधानी और दूसरा परीक्षा प्रधानी। आज्ञा प्रधानी वे जिन्हें गुरुदेव ने समझाया और यह मान लिया कि नान्यथा मुनि भाषणं। गुरुजन अन्यथा नहीं बोलते सही तत्त्व व सत्पथ का ही दिग्दर्शन कराते हैं और उनके उपदेश व शिक्षा को हृदयांगम कर लेते हैं। दूसरे परीक्षा प्रधानी उनको दिया गया उपदेश चरितार्थ होने पर या जो जिज्ञासा या प्रतिजिज्ञासा हुई है उसका सही निवारण या निर्णय प्राप्त होने पर उस शिक्षा या उपदेश को अंगीकार करते हैं।

सत्य है जब गुरुजन उपदेश देते हैं या अध्ययन कराते हैं तब शिष्यों के मन में कई जिज्ञासाओं की तरंगे हिलोरें लेने लगती हैं और उस तथ्य के रहस्य को शिष्य को सही दिशाबोध देकर अर्थात् उदाहरणार्थ से उसी जिज्ञासा का समाधान जब गुरुदेव करते हैं तो वह शिष्य गुरु के प्रति बहुमान से भर जाता है और उस उपदेश को हृदयांकित कर अपने अध्ययन, तप, संयम, सम्यक्त्व को गतिमान करता है।

ऐसे ही अनेक जिज्ञासाओं का समाधान ममाराध्य गुरुवर जिन्हें संपूर्ण विश्व भक्तामर महोदधि, भक्तामर वाले बाबा के नाम से जानता है ऐसे उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज प्रतिदिन श्रद्धालुओं को ज्ञान देकर उनको

संतुष्ट कर धर्ममार्ग पर स्थिर करते हैं। गुरुवर की दिव्य वाणी को संजोकर कुछ शंका समाधानों का संकलन हमारी अपनी श्रमणी आर्यिका विनेहश्री माताजी ने ऐसा क्यों? पुस्तक के माध्यम से आप सभी तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। आशा है इसमें से कई जिज्ञासायें आपकी होगी जिनका समाधान प्राप्त कर आप सम्यक्त्व के प्रथम नि:शंकित अंग को प्राप्त कर सकेंगे।

माताजी के इस सफल प्रयास की अनुमोदना करते हैं और वीतरागी भगवन् से प्रार्थना करते हैं कि उनका यह श्रुत संवर्द्धन का भाव अक्षुण्ण बना रहे, गुरु आशीष की कृपा उन पर सदा बरसती रहे और वे अपने क्षयोपशम ज्ञान को क्षायिक ज्ञान के रूप में परिवर्तित करने में शीघ्र सफल हों। श्रुत प्रकाशन में अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग करने वाले श्री संतोष कुमार जी-श्रीमती ममता, सुप्रिया-शुभम जी, शुभम् सतभैया गोपालगंज, सागर (म.प्र.) परिवार को अत्यन्त साधुवाद। गुरुदेव की कृपा हमेशा यूँ ही आपके परिवार व समाज पर बरसती रहे। अन्तत: यह पुस्तक सभी के सम्यक्त्व वर्द्धन में सहकारी बनें।

-श्रमणी आर्यिका विमलश्री

नमन

डूब रहे थे भव सागर में, गुरु ने आन बचाया है।
सम्यक् पथ का बोध करा कर, मम सौभाग्य बढ़ाया है।
जिनवाणी रस पान कराया, आत्म तत्त्व दिखाया है।
श्रद्धा और समर्पण से गुरु चरणों शीश झुकाया है।

समर्पण

गुरु व शिष्य का भव–भव का है नाता
गुरु बिन शिष्य को कुछ नहीं आता
गुरु ही शिष्य को हँसाता
जीने व मरने के उसूल सिखाता
राग–द्वेष कषाय को अंतरंग से हटाता
गुरु ही भव–भव की तपन मिटाता
हित–मित–प्रिय वाणी से सबको समझाता
व्रत संयम के फूल है खिलाता
ज्ञान की रौशनी से मोहांधकार मिटाता
स्वयं अच्छे आचरण करके दिखाता
रत्नत्रय के रत्नों को दिलाता
प्रभुवर से हमें मिलाता
अंत में समाधि कराके
मोक्षमहल को ले जाता
ऐस आचार्य भगवन् के
द्वय चरणों में
कोटि कोटि बार
नमन नमन नमन

– श्रमणी आर्यिका विनेहश्री

गुरु स्तुति

गुरुवर मेरा कल्याण हो, आशीष कर से दीजिये।
सब कुछ समर्पण कर सकूँ, उस ज्ञान से भर दीजिये।।
कल्याण मेरा हो सके, गुरु आपके ही हाथ में,
संयम ग्रहण करके रहूँ, गुरु आपके ही साथ में–2
आदेश का पालन करूँ–2 वह नम्रता भर दीजिये।।1।।
सोचूँ न परनिन्दा कभी, मन में न क्रोध विकार हो,
अपना सुहित मैं कर सकूँ, नहिं पाप का संचार हो–2
निज में निजातम पा सकूँ, निज भाव में धर दीजिये।।2।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान और चारित्र जिनका आचरण,
होकर विनम्र तजें अहं, उसको मिले गुरु की शरण–2
इकलव्य–सा मैं बन सकूँ, गुरु भक्ति के स्वर दीजिये।।3।।
गुरु ज्ञान हैं, गुरु मान हैं, गुरुवर परम बहुमान हैं,
गुरु वाक्य सत्य प्रमाण हैं, गुरु शिष्य को भगवान हैं–2
आशीष दे द्वय हाथ से, भक्ति अमर कर दीजिये।।4।।
तुम तत्त्व हो, तप त्याग हो–2, गुरु आप ही सम्मान हो,
आगम तुम्हीं अध्यात्म हो, मेरे लिए भगवान हो–2
गुण गीत हम गाते रहें, मन को विमल कर दीजिये।।5।।
माता पिता भाई बहिन, से श्रेष्ठ गुरुवर आप हो,
तप त्याग संयम ज्ञान से भी ज्येष्ठ गुरुवर आप हो–2
निर्मल स्वभाव बना सकूँ–2, उस शक्ति से भर दीजिये।।6।।

–उच्चारणाचार्य श्री विनम्रसागर

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम्।

I bow to all Arihantas.
I bow to all Siddhas.
I bow to all Acharyas.
I bow to all Upadhyayas.
I bow to all Saints in the world.
This Namokar Mantra, about to distroy all sins.
And the first is auspicious in the all auspicious.

चत्तारि मंगलं, अरिहन्त मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

The four auspicious are in the world.
All Arihantas are auspicious.
All Siddhas are auspicious.
All Saints are auspicious.
Said by god are auspicious.

The four are the best in the world.
All Arihantas are the best.
All Siddhas are the best.
All Saints are the best.
Said by god are the best.

The four shelter are in the world.
I go to shelter of all Arihantas
I go to shelter of all Siddhas.
I go to shelter of all Saints.
I go to shelter of said by God.

- Acharya Vinamra Sagar

अनुक्रमणिका

जिज्ञासा		पृष्ठ संख्या
1.	स्त्रियों को ग्यारह अंग व पुरुषों को सम्पूर्ण ज्ञान होता है ऐसा क्यों?	1
2.	जैनी लोग अधिक जीते व अधिक सौभाग्यशाली होते हैं ऐसा क्यों?	2
3.	कुछ लोग कालसर्प योग के कारण दु:खी होते हैं ऐसा क्यों?	3
4.	कुछ लोग मंगल ग्रह के कारण सफल नहीं हो पाते ऐसा क्यों?	4
5.	धन लक्ष्मी का आधार गृह लक्ष्मी है ऐसा क्यों?	5
6.	बिना श्रृंगार के संत सभी को आकर्षित करते हैं ऐसा क्यों?	6
7.	किसी वस्तु या व्यक्ति में विशेष आकर्षण होता है ऐसा क्यों?	7
8.	दिगम्बर संत का कमंडल भूमण्डल का अर्थशास्त्र है ऐसा क्यों?	8
9.	देव–शास्त्र–गुरु के समक्ष पारम्परिक वस्त्रों में जाना चाहिए ऐसा क्यों?	9
10.	कुछ–कुछ देव उच्च जाति के कुछ नीच जाति के होते हैं ऐसा क्यों?	10
11.	केसरिया वस्त्र पूजा करने की प्रेरणा देता है ऐसा क्यों?	11
12.	कोई–कोई प्राणी क्रोधी अधिक होते हैं ऐसा क्यों?	12
13.	प्रत्येक प्राणी आदर सत्कार चाहता है पर प्राप्त नहीं होता ऐसा क्यों?	13
14.	कुछ लोग कमाते अधिक है पर खर्च कम करते ऐसा क्यों?	14
15.	तत्त्वों पर श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन मजबूत होता है ऐसा क्यों?	15
16.	भेद विज्ञान से ज्ञान की ज्योति जलती है ऐसा क्यों?	16
17.	प्रात: जल्दी उठने से शरीर स्वस्थ व मन प्रशस्त होता है ऐसा क्यों?	17
18.	देवों के कारण दिन छोटे–बड़े होते हैं ऐसा क्यों?	18
19.	जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को दिलाएँ वह पॉजिटिव सोच है ऐसा क्यों?	19
20.	ग्रहण की गयी विद्या अगले जन्म तक साथ जाती है ऐसा क्यों	20
21.	दुनियाँ में पुरुष सबसे सुंदर होते हैं स्त्री नहीं ऐसा क्यों?	21
22.	सिर दर्द के कारण लोग अत्यधिक दु:खी व परेशान होते हैं ऐसा क्यों?	23
23.	शाश्वत सिद्धक्षेत्र का कण–कण पवित्र है ऐसा क्यों?	24
24.	किसी स्त्री को भाग्यहीन व किसी को भाग्यवान पुत्र होता है ऐसा क्यों?	26
25.	कई जीव एक ही समय में रोगी होते हैं ऐसा क्यों?	28
26.	इस संसार के जीव हर्ष–विषाद व विकल्पों से युक्त हैं ऐसा क्यों?	29
27.	कहीं वर्षा अधिक होती है तथा कहीं–कहीं वर्षा कम होती हैं ऐसा क्यों?	30
28.	आधि, व्याधि, उपाधि से रहित होती है समाधि ऐसा क्यों?	31

29. यह जीव लम्बी आयु पाकर भी महादु:खी होता है ऐसा क्यों? 32
30. चाय मीठा जहर है ऐसा क्यों? 33
31. कोई-कोई लोग सर्वश्रेष्ठ कार्य करने पर भी निंदा के पात्र बने ऐसा क्यों? 34
32. कुछ लोगों से मिलने पर आत्मिक शांति मिलती है ऐसा क्यों? 35
33. ध्यान, सामायिक, सेवा भाव व त्याग से आभामंडल प्रभावशाली होता है ऐसा क्यों? 36
34. किसी-किसी की वाणी सुनकर सभी उनके पास बैठना चाहते हैं क्यों? 37
35. जहाँ नम्रता, समर्पण, श्रद्धाभाव जहाँ है वहीं ईश्वर मिलता है। ऐसा क्यों? 38
36. कोई-कोई जीव इस संसार में अंधे होते हैं ऐसा क्यों? 39
37. बाह्य दो नेत्रों से सत्य नहीं दिखता, ऐसा क्यों? 41
38. विश्वास से दुनियाँ चलती है व श्रद्धा से धर्म ऐसा क्यों? 43
39. व्यक्ति का अहं वहम् और नकारात्मक सोच जीवन को नरक बनाते हैं ऐसा क्यों? 44
40. कोई जीव पूर्ण आंगोपांग से सहित होते हैं कोई नहीं ऐसा क्यों? 45
41. पत्नि को गृह लक्ष्मी व धर्म पत्नि कहा जाता है ऐसा क्यों? 46
42. वीतरागता से निर्विकल्प समाधि होती है सरागता में नहीं ऐसा क्यों? 48
43. परस्पर में कुछ लोगों में तो शांति बनी रहती है पर कुछ में नहीं ऐसा क्यों? 49
44. सबसे अच्छा दिन आज है तथा सबसे अच्छा समय अभी का है ऐसा क्यों? 50
45. मानव के जीवन में सबसे बड़ी जरूरत ज्ञान है ऐसा क्यों? 51
46. सबसे बुरी भावना ईर्ष्या व दूसरों को नीचा गिराने की है ऐसा क्यों? 52
47. अपने कार्य में संलग्न भाग्यशाली एवं उत्साह हीन दरिद्री होता है ऐसा क्यों 53
48. स्वास्थ्य सुख की कुंजी है, सौन्दर्य हमारा वैभव है ऐसा क्यों? 54
49. कोई-कोई जीव चांडाल व दुष्ट मनुष्यों के द्वारा मारा जाता है ऐसा क्यों? 55
50. जब किसी व्यक्ति को कुछ भी याद नहीं रहता तथा उसको गधा कहते हैं ऐसा क्यों? 56

51. चौका ही साधुओं के मन व इन्द्रियों के निरोध का सबसे बड़ा परीक्षालय है ऐसा क्यों? 57
52. पर की पीड़ा मे तथा दूसरों के दु:ख को अपना समझने में करूणा दिखती है ऐसा क्यों? 58
53. सुख पर वस्तु से नहीं, रत्नों से नहीं, मात्र ज्ञान से मिलता है ऐसा क्यों? 60
54. नये वस्त्रों को रविवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को पहिनना चाहिए ऐसा क्यों? 61
55. अनंत निगोदिया जीव एक साथ रहते हैं पर कर्म बंध पृथक करते हैं ऐसा क्यों? 62
56. रात्रि में चारों प्रकार के आहार जल का रात्रि में त्याग करने से छह माह के उपवास का फल मिलता है ऐसा क्यों? 64
57. जब साधु की समाधि हो जाती है तब पिच्छी-कमंडल उल्टी रखते हैं ऐसा क्यों? 65
58. प्राचीन समय में साधु उल्टा कमंडल रखते थे, लेकर भी चलते थे ऐसा क्यों? 66
59. मनुष्यगति के उत्तम कुल वाले पुरुष स्त्री ही दिगम्बर संतों को आहारादि दे सकते हैं अन्य तीन गति वाले नहीं ऐसा क्यों? 67
60. चारों गतियों में सबसे श्रेष्ठ सबसे उत्तम मनुष्यगति है ऐसा क्यों? 68
61. संयम के बिना मानव का जीवन बिना ब्रेक की कार जैसा है ऐसा क्यों? 69
62. जैन लोग अल्पसंख्यक है ऐसा क्यों? 70
63. यह जीव मरकर कीड़े-मकोड़े की अनेक पर्यायों में जन्म लेता है ऐसा क्यों? 71
64. थोड़े ज्ञान के लिए पुण्य अधिक ज्ञान के लिए ध्यान की जरूरत है ऐसा क्यों? 72
65. संसार में अनेक जीव है कुछ पुरुष, स्त्री व नपुंसक होते हैं ऐसा क्यों? 73
66. भाषा का निर्माण केवल मानव करता है पशु पक्षी आदि नहीं ऐसा क्यों? 74
67. संत पुरुष जीवन्त शास्त्र हैं मृत नहीं ऐसा क्यों? 75
68. गुणवान् व्यक्ति सभी के करीब रहना चाहते हैं अवगुणी से किनारा चाहते हैं ऐसा क्यों? 76
69. घर को स्वर्ग बनाने के लिए प्रेम, वात्सल्य, संस्कार आवश्यक है ऐसा क्यों? 77

70. संसार में अनेक जीव हैं, कोई–कोई जीव परिग्रही व कोई अपरिग्रही ऐसा क्यों? 78
71. ॐकार सभी धर्मों का सार है तथा ब्रह्माण्ड की शक्ति समाहित है ऐसा क्यों? 79
72. संत पुरुष इस दुनियाँ में वीर पुरुष कहे जाते हैं ऐसा क्यों? 80
73. किसी का ज्ञान बढ़ता हुआ, किसी का घटता हुआ होता है ऐसा क्यों? 81
74. हिंसक सामग्री से बनी वस्तु की अपेक्षा आभूषणों से अपना शृंगार करें तो शरीर स्वस्थ रहता है ऐसा क्यों? 82
75. तन की प्रसन्नता रोटी कपड़ा मकान, मन की प्रसन्नता प्रभु भक्ति, चेतन की प्रसन्नता ज्ञान, दर्शन, चारित्र है ऐसा क्यों? 83
76. परमात्मा की पूजन वन वे, आहार दान टू इन वन तथा गुरु की भक्ति थ्री इन वन है ऐसा क्यों? 84
77. जैन संतों को समाधि के पश्चात् अंतिम संस्कार के लिए डोली में बिठाकर ले जाते हैं ऐसा क्यों? 85
78. जो महिलाएँ व बालिकाएँ नेलपेंट व लिपिस्टिक लगाती हैं वे हिंसक पर्याय से आयी हैं अथवा हिंसक पर्याय में जाएगी ऐसा क्यों? 86
79. इंसान के पास अनेक शक्तियाँ हैं पर सबसे बड़ी संकल्प की शक्ति हैं ऐसा क्यों? 87
80. पूर्व व उत्तर दिशा की ओर मुख करके सोना चाहिए ऐसा क्यों? 88
81. किसी–किसी की स्मरण शक्ति, याददाश्त कमजोर अथवा पढ़ी हुई विद्या गायब हो जाती है ऐसा क्यों? 89
82. बड़े जनों के, माता–पिता के गुरु के, चरण स्पर्श करना चाहिए ऐसा क्यों? 90
83. हम संसारी प्राणियों को घर में रहते हुए सम्यक्त्व हो सकता है यदि होता है तो ऐसा क्यों? 91
84. जैन संतों की समाधि के पश्चात् पिच्छी कमंडल पेड़ पर लटकाते हैं ऐसा क्यों? 92
85. स्वर्गों के देवेन्द्र स्वर्ग में सुखी व खुश रहते हैं ऐसा क्यों? 93
86. शरीर श्मशान की अमानत है तथा आत्मा परमात्मा की ऐसा क्यों? 94
87. प्रभु की सच्ची भक्ति से सम्यक्त्व की युक्ति व संसार से विरक्ति से मनोवांछित रूप की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों? 95
88. इस संसार में कितने ही जीव हीनाधिक आंगोपांग वाले देखे जाते हैं ऐसे लोग धर्म कार्यों से वचिंत रहते हैं ऐसा क्यों 96

89.	बड़े बुजुर्गों से सुना है सरसों का तेल अमृत तुल्य है, गुणकारी है, हितकारी है अनेक रोगों की दवा है ऐसा क्यों?	97
90.	किसी–किसी स्त्री पर अधिक ध्यान देने के बावजूद भी गर्भपात हो जाता है तथा किन्हीं–किन्हीं स्त्री के गर्भ ठहरता नहीं है ऐसा क्यों?	98
91.	वर्तमान समय में भाई–भाई में परस्पर में बैर–विरोध अधिक देखा जाता है ऐसा क्यों?	99
92.	कोई जीव सिंह की पर्याय में जन्म लेता है तो कोई श्रृंगाल (गीदड़) की पर्याय में ऐसा क्यों?	100
93.	आपने बतलाया संसारी जीवों में चुम्बक की तरह कर्मों को आकर्षित करने की शक्ति है और कार्माण वर्गणाओं में आकर्षित होने की ऐसा क्यों?	101
94.	यह जीव अन्य जीवों के साथ अच्छा व्यवहार करता है फिर भी सभी जगह अनादर का पात्र बनता है ऐसा क्यों?	102
95.	संसार में अनेक जीव निर्धन, दुःखी, पीड़ित, परेशान, आकुल, व्याकुल परिणाम वाले दिखाई देते हैं ऐसा क्यों?	103
96.	सुना है मेडिटेशन (ध्यान) सर्वश्रेष्ठ औषधि है मेडिसिन नहीं ऐसा क्यों?	104
97.	कोई–कोई लोग देखने में अच्छे नहीं लगते, कुरुप दिखाई देते हैं, तथा कोई–कोई लोग सभी को अच्छे लगते हैं ऐसा क्यों?	105
98.	आपने बतलाया जैन साध्वी एक श्वेत साड़ी ही धारण करती है अर्थात् सवस्त्र दीक्षा होती है ऐसा क्यों?	106
99.	अधिकांश लोग रोगी होते हैं, असाध्य बीमारी के कारण मृत्यु भी हो जाती है ऐसा क्यों?	107
100.	प्राणायाम करने वाला मानव अथवा योगी अपनी आत्मा को जागृत कर लेता हैं, ऐसा क्यों?	109
101.	किन्हीं जीवों को दुःख देने वाला कुटुम्ब तथा किन्हीं को सुख देने वाला कुटुम्ब मिलता है ऐसा क्यों?	110
102.	ऐसा शास्त्रों में पढ़ा है यह जीव जिस गति में जन्मता है उस पर्याय में उसे अच्छा लगने लगता है ऐसा क्यों?	111
103.	आपने बतलाया शांति, संयम, ध्यान, ज्ञान प्राप्त करने के लिए हल्के रंग के वस्त्र पहनना चाहिए ऐसा क्यों?	112
104.	सुंदर पत्नि व श्रेष्ठ वस्तुओं के होने पर भी अनेक जीव उनका उपभोग नहीं कर पाते ऐसा क्यों?	113

105. लोग कहते हैं जिन्दगी बड़ी मंझली व छोटी होती है तथा कुछ लोगों को रात छोटी व कुछ लोगों को रात बड़ी लगती है ऐसा क्यों? 114
106. जो रात में भोजन करते हैं वे अगले जन्म में उल्लू, गिद्ध, कौआ, बिल्ली, सर्प, बिच्छू, चील, चमगादड़ आदि निंदनीय पर्यायों में जाते हैं ऐसा क्यों? 115
107. हमारे बुजुर्ग कहते हैं परमात्मा, गुरु, निमित्तज्ञानी, वैद्य व ज्योतिषी के पास कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए ऐसा क्यों? 116
108. शास्त्रों में सुना है पवित्र मन से किया गया परमात्मा का दर्शन अतिशय पुण्य संचय कराता है व अनंत उपवासों के फल की प्राप्ति कराता है ऐसा क्यों? 117
109. सुना है जो जिनेन्द्र भगवान की अंगुष्ठ प्रमाण मूर्ति बनवाता है वह अविनाशी अजर अमर पद अर्थात् परम्परा से मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है ऐसा क्यों? 118
110. लोग परमात्मा व गुरु के दर्शन करते समय कम से कम तीन परिक्रमा लगाते हैं अधिक से अधिक 108 व 1008 ऐसा क्यों? 119
111. भक्त लोग भगवान् के समक्ष पाँच पुंज, शास्त्र के समक्ष चार पुंज तथा गुरु के समक्ष तीन पुंज चावल चढ़ाते हैं ऐसा क्यों? 120
112. भव्य श्रावक देव–शास्त्र–गुरु के चरणों में अन्य सभी धान्यों में उत्तम धान्य चावल ही समर्पित करता है ऐसा क्यों? 121
113. परमात्मा व गुरु के समक्ष नमस्कार मुद्रा में ही (हाथ जोड़कर) दर्शन किया जाता है ऐसा क्यों? 123
114. पढ़ा है सुना है कि मंदिर में घंटा बजाना मंगल का, जागरण का प्रतीक है व विशुद्ध भावनाओं को प्रसारित करने के लिए वैज्ञानिक यंत्र है ऐसा क्यों? 124
115. आपने बतलाया णमोकार मंत्र खंडित भी होता है व अखंडित भी होता है अर्थात् णमोकार मंत्र के अविनय से नरक तथा प्रशंसा से स्वर्ग व मोक्ष होता है कृपया विस्तार से समझाइए ऐसा क्यों? 125
116. सुना है मंदिरों के शिखरों के ऊपर कलश व ध्वजा अवश्य होना चाहिये ऐसा क्यों? 127
117. कृष्ण पक्ष के अन्त को अमावस्या व शुक्ल पक्ष के अन्त को पूर्णिमा कहा जाता है ऐसा क्यों? 128

118. सुना है ढाई वर्ष में एक माह की वृद्धि होती है तथा युग का प्रारंभ व युग का समापन भी होता है? ऐसा क्यों? 129
119. कुछ लोग दीपक जलाने में हिंसा मानते हैं तथा कुछ लोग बड़े ही भक्ति भाव पूर्वक दीपक जलाकर पूजा व आरती करते हैं ऐसा क्यों? 130
120. कायोत्सर्ग में नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हैं कम या अधिक बार नहीं ऐसा क्यों? 131
121. मंदिरों के ऊपर शिखर होते हैं मकान, दुकान, महल आदि के ऊपर शिखर नहीं होते ऐसा क्यों? 132
122. ललाट पर चन्दन लगाया जाता है व महिलाएँ भी ललाट पर बिंदी लगाती है अन्य जगह नहीं ऐसा क्यों? 133
123. जाप (माला) में 108 दाने (मोती) होते हैं व ऊपर मेरु पर तीन दाने (मोती) होते हैं ऐसा क्यों? 134
124. आपकी वाणी में सुना, शास्त्रों में पढ़ा पर समझ में नहीं आया कि पुण्यात्मा स्त्री की कोख से पुण्यशाली संतान का जन्म होता है, पापात्मा संतान नहीं होती ऐसा क्यों? 135
125. कोई–कोई धर्मात्मा मरकर इन्द्र बनते हैं तथा कोई–कोई व्रती धर्मात्मा मरकर व्यंतर देव बनते हैं ऐसा क्यों? 136
126. आपने बतलाया चारों गतियों के जीवों में मात्र एक पुरुष ही एक ऐसा प्राणी है जो सप्तम नरक जाता है व मोक्ष भी ऐसा क्यों? 137
127. दिगम्बर जैन साधु दिन में एक बार खड़े होकर अन्न जल ग्रहण करते हैं अन्य साधु नहीं ऐसा क्यों? 138
128. सुना है मौनपूर्वक भोजन करना सर्वश्रेष्ठ है जो मौन धारण करता है उस पर सरस्वती प्रसन्न रहती है ऐसा क्यों? 139
129. शास्त्रों में पढ़ा है भोजन खड़े होकर नहीं, घूमते हुये नहीं, लेटे हुये नहीं, बैठकर करना चाहिये ऐसा क्यों? 140
130. सुना है सभी कर्मों में बलवान् सभी कर्मों का सरदार व कर्मों का राजा मोहनीय कर्म है–ऐसा क्यों? 141
131. कभी–कभी किसी को प्रिय व्यक्ति का वियोग होता है व कभी–कभी किसी को अप्रिय व्यक्ति का संयोग होता है ऐसा क्यों? 142
132. घर में, दुकान में, बाजार में, ऑफिस में, स्कूल में मोबाइल आदि में शांति नहीं मिलती है, शांति अपने अंदर ही है ऐसा क्यों? 143

133.	किसी–किसी का मन थोड़ा संतोषित होता है व किसी का मन पूर्ण संतोष को प्राप्त होता है तथा किसी किसी का मन सम्पूर्ण जीवन पर्यंत तक संतोष को प्राप्त नहीं होता है ऐसा क्यों?	144
134.	शादी के पश्चात् लड़की–लड़के के साथ उसके घर जाती है, लड़का–लड़की के यहाँ नहीं जाता ऐसा क्यों?	145
135.	बबूल के पेड़ में काँटे ही काँटे होते हैं, गुलाब में कुछ कम होते हैं ऐसा क्यों?	146
136.	श्रावक लोग दिन रात कमाते हैं, दोनों हाथों से कमाते हैं एक हाथ से खाते हैं, साधु कुछ भी नहीं कमाते और दोनों हाथों से खाते हैं ऐसा क्यों?	147
137.	आपने बतलाया गृहस्थों को, श्रावकों को मुख शुद्धि करके मंदिर में जाकर अभिषेक पूजन करना चाहिये ऐसा क्यों?	148
138.	नींद क्यों आती है तथा बिस्तर देखकर बहुत जल्दी निद्रा देवी प्रसन्न हो जाती है ऐसा क्यों?	149
139.	आपने बतलाया सामान्य लोग जल से शरीर की शुद्धि करते हैं तथा जैन साधु मंत्र से शरीर की शुद्धि करते हैं ऐसा क्यों?	150
140.	जैन साधु सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त नग्न रहते हैं तन पर धागा भी धारण नहीं करते ऐसा क्यों?	151
141.	शास्त्रों में पढ़ा है सूर्यास्त से पूर्व व सूर्योदय के पश्चात् भोजन करना हमारी भारतीय संस्कृति है ऐसा क्यों?	152
142.	विवाह के पूर्व सगाई होती है बीच में दो, चार, छह माह का गेफ होता है ऐसा क्यों?	153
143.	शोर–सूतक के बाद अथवा किसी भी कार्य की सफलता के लिए भव्य श्रावक अधिकांश शांतिनाथ विधान ही करते हैं ऐसा क्यों?	154
144.	आकर्षण कैसे बढ़ता है हम क्या करें जिससे सभी लोग आकर्षित हों तथा हमसे बार–बार मिलने तथा देखने की कोशिश करें।	155
145.	आपने बताया दूसरों को अपना श्रेय देने पर सभी हमारी प्रशंसा करते हैं ऐसा क्यों?	156
146.	ऐसा कहा जाता है शांतिधारा शुरू से अन्त तक अखण्ड रूप से होनी चाहिए ऐसा क्यों?	157
147.	सुनते हैं चरण आचरण के प्रतीक होते हैं ऐसा क्यों?	158

148. सुना है प्रायश्चित से, प्रतिक्रमण से व शास्त्र स्वाध्याय से मन का मैल मिटता है ऐसा क्यों? 160
149. सुना है ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, ईश्वर के आशीर्वाद के बिना कोई भी कार्य नहीं चलता ऐसा क्यों? 161
150. आपने बतलाया विनय मोक्ष का द्वार है अर्थात् विनय ही संसार सागर से तरने के लिए मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है ऐसा क्यों? 162
151. क्रोध अकाल मौत के लिए आमंत्रण कार्ड है तथा क्रोध कैंसर व अनेक रोगों का घर है ऐसा क्यों? 163
152. आपने बतलाया ब्रेक के बिना कार व्यर्थ है प्रतिमा के बिना मंदिर व्यर्थ है और अनुभव के बिना संयम व्यर्थ है ऐसा क्यों? 164
153. आपने बतलाया देने वाला देवता कहलाता है और लेने वाला राक्षस ऐसा क्यों? 165
154. जमाने को बदलने से पहले खुद को बदलिए तभी जीवन व जमाना बदलेगा ऐसा क्यों? 166
155. बीजाक्षर अत्यधिक शक्तिशाली व अत्यधिक प्रभावशाली होते हैं ऐसा क्यों? 167
156. तीर्थंकर बालक का सुमेरु पर्वत पर ही अभिषेक करते हैं ऐसा क्यों? 169
157. तीर्थंकर और संत की अकाल मृत्यु नहीं होती ऐसा क्यों? 170
158. पाप कार्यों से खोटी गति व पुण्य कार्यों से उच्च गति प्राप्त होती है ऐसा क्यों? 171
159. अंत भला तो सब भला ऐसा क्यों? 172
160. अक्ल बड़ी या भैंस या अक्ल बड़ी या वयस् ऐसा क्यों? 173
161. मन ही मानव जीवन में बंध व मोक्ष का कारण हैं ऐसा क्यों? 174
162. गुरु के पादमूल में ही समाधिमरण श्रेष्ठ होता है ऐसा क्यों? 175
163. वर्तमान समय में धन को ग्यारहवाँ व मोबाइल को बारहवां प्राण कहा है ऐसा क्यों 177
164. गुरु कृपा से 14 राजू की यात्रा भव्य जीवों की होती है ऐसा क्यों? 179
165. अशुद्ध आहार देने से मन, वचन, काय की शुद्धि नहीं रहती ऐसा क्यों? 181

1. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! स्त्रियों को ग्यारह अंग एवं पुरुषों को द्वादशांग का ज्ञान होता है पुरुषों को केवलज्ञान होता है स्त्रियों को नहीं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! वैज्ञानिकों के अनुसार पुरुषों के मस्तिष्क में सामान्यत: 23 अरब व महिलाओं के मस्तिष्क में 19 अरब कोशिकाएँ होती हैं। ये निर्मल परिणामों के द्वारा, परमात्मा की भक्ति, गुरुओं की सेवा से जागृत होती हैं। ध्यान के द्वारा सैल्स शीघ्र चार्ज होते हैं, वासना व अहं के परिणामों से तथा विषय कषायों के परिणामों से डिस्चार्ज हो जाते हैं।

पुरुषों के मस्तिष्क में 23 अरब कोशिकाएँ होती हैं वह सभी को ध्यान से जागृत करके केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। महिलाओं में 4 अरब कोशिकाएँ कम होती हैं यही कारण है कि स्त्री को न केवलज्ञान होता और न ही निर्वाण होता है क्योंकि संपूर्ण कोशिकाएँ जागृत होने पर ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है अत: स्त्रियों को अधिक से अधिक 11 अंग का ही ज्ञान हो पाता है।

हमारे अच्छे संस्कार कोशिकाओं को जागृत करते हैं, जब किसी शक्तिशाली (Powerful) व्यक्ति के पास जाकर उनके गुणों को पाने का विचार करते हैं, सबसे उत्तम सोच रखते हैं व बड़ों का आदर सम्मान व विनय करते हैं तब कोशिकाएँ जागृत होती हैं।

यदि ये मस्तिष्क की कोशिकाएँ विशेष पुरुषार्थ के द्वारा पूर्णत: जागृत हो जायें तो केवलज्ञान प्राप्त हो जाये इसे ही हम सभी भगवत्ता कहते हैं इस भगवत्ता की नींव दर्शन की भूमि पर रखी जाती है जैसे ही सभी विषय कषायों को तिलांजलि देकर हम शान्त अवस्था में आते हैं वैसे ही मस्तिष्क की कोशिकाएँ जागृत होने लगती हैं और धीरे-धीरे ज्ञान बढ़ने लगता है, ज्ञान बढ़ते ही चारित्र प्रस्फुटित होता है ज्यों ही वह ध्यान में बैठता है वह ध्यान के माध्यम से संपूर्ण अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त होता है और केवलज्ञान ही है जो मोक्ष तक पहुँचाता है।

यहाँ जीवन को जीने का कोई आधार पैदा कर, हो जिससे आत्मा शुद्धि वही व्यापार पैदा कर।
न तू संतान पैदा कर न तू संसार पैदा कर, अरे पैदा ही करना तो यहाँ निज सार पैदा कर।।

2. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जैनी लोग अधिक जीते हैं, अधिक श्रेष्ठ होते हैं, अधिक सौभाग्यशाली होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! जिन्होंने सर्व कर्मों को जीता है ऐसे जिनेन्द्र भगवान के जो भक्त हैं उनके बताये मार्ग पर जो चलते हैं, कर्त्तव्यों का पालन करते हुए श्रेष्ठ कार्य करते हैं, प्रतिदिन देवदर्शन करते हैं, रात्रिभोजन त्याग तथा छानकर पानी पीते हैं, गुरुओं की सेवा करते हैं, चारों प्रकार के पात्रों को दान देते हैं, बुद्धिमान व विवेकवान अधिक होते हैं, अभक्ष्य भक्षण नहीं करते, मर्यादित रहते हैं व मर्यादित भोजन करते हैं, व्यापार ईमानदारी से करते हैं, धन का संग्रह व निग्रह ठीक प्रकार से करते हैं, भगवान की भक्ति सुबह–शाम करते हैं इसलिए जैनी लोग श्रेष्ठ होते हैं।

अपने धन का सदुपयोग धार्मिक अनुष्ठानों में, माता–पिता की सेवा में, तीर्थ वंदना में, संतों के आहार–विहार आदि की व्यवस्था में तथा शास्त्र आदि के प्रकाशन में करते हैं। जैन लोग खोटे व्यापार नहीं करते, अपने भाग्य को सदा बढ़ाते हैं इसलिए जैनी लोग सौभाग्यशाली होते हैं इसलिए कहा है **जैन कुल में जन्म लेना भाग्य है सचमुच में जैन बनना सौभाग्य है** जैन लोग सात्विक व सीमित भोजन करते हैं, समयानुसार दिन में भोजन करते हैं, इसलिए जैनी लोग बीमार कम होते हैं व अधिक उम्र वाले होते हैं। जैनी लोग 15 दिन में व एक माह में एक उपवास करते हैं इससे शारीरिक संतुलन बना रहता है तथा व्रत संयम, तप, त्याग भी करते हैं, उपवास के दिन प्रभु की भक्ति, आराधना, शास्त्रों का पठन व आत्मस्वरूप का चिंतन करते हैं जिससे वे सौभाग्यशाली कहलाते हैं। जैनी लोग हिंसा आदि कार्य नहीं करते, **जियो व जीने दो** की भावना रखते हैं, न अधिक खाते हैं, न अधिक सोते हैं नियमित जीवन शैली से जीवनयापन करते हैं इसलिए जैनी लोग अधिक जीते हैं। अत: जैन लोग श्रेष्ठ, अधिक जीने वाले व सौभाग्यशाली होते हैं तथा दिलदार व दमदार होते हैं।

तप व त्याग में मिशाल हैं जैन, वीतरागता की शान हैं जैन।
अहिंसकों के पुजारी हैं जैन, सच्चे धर्म की जान हैं जैन।।

3. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! बहुत से स्त्री–पुरुषों की कुंडली में कालसर्प योग होता है जिससे वे अत्यधिक दुःखी दिखायी देते हैं, किसी–किसी की तो मौत भी हो जाती है ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! आपको मालूम है कि कालसर्प योग कैसे बनता है – राहु व केतु आकार में सबसे बड़े ग्रह हैं जिस प्रकार सूर्य के नीचे राहु ग्रह आये तो सूर्यग्रहण होता है, चन्द्रमा के नीचे केतु आ जाये तो चन्द्रग्रहण पड़ता है। राहु का स्वामी काल है, केतु का स्वामी सर्प है दोनों ग्रह काले हैं जब राहु व केतु के मध्य सारे ग्रह आ जाते हैं तब कालसर्प योग बनता है।

पूर्व में किन्ही पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने पर, उन्हें कष्ट पहुँचाने पर, मारने पर, बिना सोचे समझे एक साथ अनेक जीवों की हत्या करने पर, वाहन आदि के नीचे जीवों की मृत्यु हो जाने पर, सर्प आदि की हमारे द्वारा मृत्यु हो जाने पर अथवा दूसरों से मरवाने पर कालसर्प योग बन जाता है, कालसर्प योग कुंडली में आंशिक होने पर किसी भी कार्य में सफलता बड़ी मुश्किल से मिलती अथवा नहीं भी मिलती है व शरीर पर प्रभाव होने से अन्धे, लँगड़े लूले, बहरे, दिमाग से पागल तथा कोमा में चले जाते हैं, पूर्ण कालसर्प होने पर अकाल मरण भी हो जाता है।

जिस व्यक्ति की कुंडली में कालसर्प योग होता है उसका जीवन खतरे में होता है, पुरुषार्थ करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती, कितना भी अच्छा कार्य, अच्छा व्यवहार कर ले, अच्छा धन कमाए, बच्चों की अच्छी नौकरी लग जाये, परिवार में कलह न हो, शांति बनी रहे पर कालसर्प योग के कारण बाधा आ जाती है इसलिए काम नहीं हो पाता है। किसी व्यक्ति का एक्सीडेंट हो जाता है जिससे अकाल में ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है यह सब कालसर्प योग के कारण होता है।

कालसर्प योग निवारण के लिए कल्याण मंदिर विधान विधिपूर्वक करना चाहिए, पार्श्वनाथ भगवान की आराधना, भक्ति, पूजन, जाप करना चाहिए। यदि कोई दूसरा किसी गाय आदि को मार रहा है उसे खरीदकर गौशाला पहुँचाकर या उनको जीवनदान देना चाहिए, कम से कम पाँच जीवों को अभयदान देना चाहिए। यदि गर्भपात आदि कराया हो तो इसका प्रायश्चित गुरु से लेकर क्षमा याचना करना चाहिए। इन सभी कार्यों को करने से कालसर्प योग टल सकता है, अशुभ योग समाप्त हो जाता है, अकाल मृत्यु से बच जाते हैं।

4. जिज्ञासा– हे गुरुवर! कुंडली मंगली होने पर अधिक पुरुषार्थ करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! कुंडली पूर्व के विचारों व कृत्यों का दर्पण है–जैसे कार्य हम पूर्व में करते हैं वैसी किस्मत बनती है तथा वैसी ही कुंडली सामने बनकर तैयार हो जाती है। यदि किसी की कुंडली में मंगल ग्रह केन्द्र में है तो अधिक मेहनत करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती। जैसे विद्यार्थी अधिक पढ़ाई करता है फिर भी अच्छे अंकों से पास नहीं हो पाता, व्यापारी दिन भर मेहनत करता है फिर भी व्यापार में सफल नहीं हो पाता, पुरुषार्थ करने पर भी कार्य सफल नहीं होता इसका मात्र एक ही कारण है मंगल ग्रह लग्न में अथवा केन्द्र में है।

मंगल ग्रह के कारण शारीरिक परेशानी में पित्त का प्रकोप, शिरशूल, गुप्त रोग, मुख के रोग, उदर विकार, फोड़े फुन्सी, बबासीर, खुजली, अल्सर आदि की परेशानी होती हैं।

जो पूर्व में गुस्सैल स्वभाव के होते हैं तीव्र क्रोधी होते हैं, अहंकारी होते हैं, अपनी बात मनवाने में लगे रहते हैं, स्वच्छंदी होते हैं उनकी कुंडली में मंगल ग्रह केन्द्र में आ जाता है। मंगल तेज ग्रह है मंगल ग्रह की शांति के लिए, मंगल दोष निवारण के लिए लाल वस्त्र पहिनकर **ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः** की जाप करें इससे ग्रह शांत होगा। लड़का यदि मंगली है तो विवाह के लिए लड़की भी मंगली होना चाहिए यदि एक की कुंडली में मंगल है दूसरे के में नहीं तो विघ्न बाधाएँ आ जाती हैं, शादी होने में देरी होती है, संतानोत्पत्ति नहीं होती यदि होती भी तो लाभ नहीं होता, पति–पत्नि में से किसी एक की जल्दी मृत्यु हो जाती है, विवाह का सुख नहीं मिलता इसलिए लड़का की कुंडली में मंगल है तो लड़की भी मंगली देखते हैं।

✲ तेरी सज्दे में बना ले जो रिश्ता वह आदमी नहीं है कोई फरिश्ता।

✲ लहरों को खामोश देखकर ये नहीं समझना
कि समंदर में पानी नहीं है।
हम जब भी उठेंगे तूफान बनके उड़ेगे
बस अभी उठने की ठानी नहीं है।

5. जिज्ञासा–हे गुरुदेव! धन लक्ष्मी का आधारगृह लक्ष्मी है ऐसा क्यों?

समाधान – हे वत्स! जो व्यक्ति 1 से लेकर 100 रु. की व 100 रु. से लेकर करोड़ रु. कमाने की ताकत रखता है, जो धन को बढ़ाता हुआ ब्याज को भी मूलधन बनाता है, जो षट् कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ प्रभु की भक्ति, संतों की सेवा, चतुर्विध संघ को दान व गरीबों की सहायता करता है, जो अपने घर में संतों का आहार कराता है, सम्मान करता है लक्ष्मी का वास भी उस घर में ही होता है।

जो धार्मिक कार्यों के लिए धन का सदुपयोग हँसकर के करते हैं व भोग विषयों में धन का दुरुपयोग नहीं करते ऐसे जीव धनाढ्य होते हैं, जो आयी हुई लक्ष्मी का सम्मान करते हैं अर्थात् घर की बहु–बेटी का सम्मान करते हैं वहाँ निवास करते हैं क्योंकि हिन्दी साहित्यकारों ने कहा है–**"यत्र नारयस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता।"** यदि घर की बहु बेटी खुश है तो वहाँ पर धन बरसता है। धन बरसने का सूत्र है जिस घर की बहु बेटी धर्म करती है, अच्छे आचरण वाली हो, षट् कर्त्तव्यों का पालन करती हो, सास–ससुर, पति की सेवा करती हो, प्रातः जल्दी उठकर परमात्मा का स्मरण करती हो, नगर में यदि संत है तो अपने घर में संतों का चौका लगाकर नवधा भक्ति से आहार कराती हो, प्रतिदिन मंदिर जाती हो ऐसे घर में लक्ष्मी का वास हमेशा रहता है कहा भी है कि जहाँ परमात्मा का स्थान, संतों का सम्मान, कर्त्तव्यों पर ध्यान, एक दूसरे के प्रति वात्सल्य व बहुमान वहीं पर लक्ष्मी का आवास होता है अर्थात् ऐसे घरों में कभी दरिद्रता नहीं आती, अनेक जन्मों तक लक्ष्मी बनी रहती है तथा जिस परिवार के लोगों की वाणी में मिठास हो, अच्छा लिबास हो, सरल स्वभाव हो, मधुर व्यवहार हो, अतिथियों का सम्मान हो उस घर की देहरी से कभी लक्ष्मी नहीं जाती वह घर स्वर्ग के समान पूजा जाता है, उस घर की देहरी मंदिर के समान पवित्र है तथा जिस घर से अतिथि को खाली हाथ लौटा दिया जाता है उस घर से लक्ष्मी चली जाती है। जहाँ पर दान देने की परम्परा चलती रहती है तो लक्ष्मी का वास स्थायी बना रहता है।

जिनवाणी जिनकी माता है, परमेश्वर पिता, गुरुजन, अतिथि और भक्त भाई–बंधु हैं ऐसे लोग लक्ष्मी को सर्वप्रिय होते हैं।

6. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! दिगम्बर संत बिना शृंगार के सभी को आकर्षित करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! भक्ते सुंदर रूपं–परमात्मा की भक्ति करने से सुंदर रूप की प्राप्ति होती है। जो जितनी–जितनी भक्ति करता है उतने गुण प्राप्त कर लेता है और गुणों से ही सुंदर रूप हो जाता है व सम्पूर्ण शरीर निरोगी व रोग रहित हो जाता है।

साधु, संतों, भगवंतों के चेहरे पर तेज उनकी साधना, ज्ञान, ध्यान, आराधना, तपस्या का होता है वो कभी क्रीम पाउडर नहीं लगाते, साधु शृंगार से रहित होते हैं फिर भी सबसे अधिक चमकते हैं। जो लोग चेहरे पर क्रीम पाउडर आदि लगाकर मेकअप करते हैं उनका चेहरा काला पड़ जाता है, दाने आदि भी चेहरे पर हो जाते हैं, क्रीम पाउडर आदि जीवों को मारकर तैयार किया जाता है इससे बहुत हिंसा होती है और साधु संत हिंसा के त्यागी होते हैं। यदि आप संतों के चेहरे जैसा तेज चाहते हो तो थोड़ी सी तप साधना करें, प्रात: उठकर पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर ॐकार का ध्यान कर अपने दोनों हाथों को रगड़कर कम से कम तीन बार अपने चेहरे पर अवश्य लगायें जिससे आपके चेहरे में भी तेज व आकर्षण बढ़ेगा।

वीतरागता का स्वरूप सबसे सुंदर है इसलिए वीतरागता के परमाणु आते ही आकर्षण बढ़ने लगता है। वाणी से नहीं, व्यवहार से ही नहीं, ज्ञान से ही नहीं, साधु संत चेहरे से ही नहीं बल्कि सर्वांग से सुंदर होते हैं क्योंकि साधु सभी का भला चाहते हैं, जो उनके पास आता है उससे हित मित प्रिय वचन बोलते हैं, मधुर व्यवहार करते हैं सभी को ज्ञान बाँटते हैं, छोटा–बड़ा, अमीर–गरीब, शत्रु–मित्र सभी को समान रूप से आशीर्वाद प्रदान करते हैं जिससे सभी लोग उनसे आकर्षित होकर उनके पीछे भागते हैं।

वह तो चारित्र की खुशबू से, ज्ञान की रौशनी से, तप की अग्नि से, संयम की सरिता में अवगाहन करके आत्मा को सुंदर बनाते हैं, अन्तरंग व बहिरंग शुद्ध करते हैं जिससे संत, महंत, भगवंत सर्वांग से सुंदर होते हैं।

मेरे गुरु तो सर्वांग सुंदर हैं इसलिए तो दिगम्बर हैं।

7. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी वस्तु या व्यक्ति में विशेष आकर्षण होता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! आकर्षण क्या है? किसी वस्तु या व्यक्ति को बार-बार देखने व पाने का मन होना, नजर न हटना आकर्षण है। आकर्षण वस्तु में नहीं, व्यक्ति में नहीं आकर्षण गुणों में होता है।

पॉजिटिव एनर्जी से आकर्षण बढ़ता है, निगेटिव विचार से आकर्षण घटता है, परमात्मा मेरा है मैं परमात्मा का हूँ ऐसा विचार करना, निर्ग्रंथ गुरुओं की सेवा करना, सम्मान करना, बहुमान करना हमारा परम कर्त्तव्य है ऐसी सोच ही पॉजिटिव विचार है, अच्छी सोच, अच्छा विचार, अच्छे नजरिया से आकर्षण बढ़ता है। अच्छा खाने, रहने, पहनने, शृंगार करने व अच्छी वस्तुओं से आकर्षण नहीं बढ़ता, गुणों से आकर्षण बढ़ता है। भगवान महावीर के पास अनंत गुण हैं इसलिए उन्होंने सभी को आकर्षित किया। संतजन अपनी पॉजिटिव एनर्जी से दुनियाँ को आकर्षित करते हैं, लाखों लोग संतों के पास बैठते हैं, संतों की वाणी का रसपान करते हैं तथा आकर्षण के कारण ही संतों को दुनियाँ नमस्कार करती हैं।

ज्ञान व ध्यान से आकर्षण बढ़ता है। व्यक्ति यदि ज्ञानी है तो उसके ज्ञान को देखकर सभी आकर्षित होते हैं, सभी लोग ज्ञानी के पास बैठकर ज्ञान पाना चाहते हैं क्योंकि ज्ञान से बढ़कर कोई धन नहीं है सभी ताले ज्ञान की चाबी से ही खुलते हैं, सारा धन ज्ञान के द्वार से ही आता है, सूरज केवल दिन में ही उजाला देता है, चाँद सिर्फ रात में चमकता है पर ज्ञान वह है जो रात-दिन ही नहीं पूरे जीवन काल तक ही नहीं भवों भवों तक स्थायी बना रहता है, ज्ञान से ही ध्यान होता है, ध्यान से मोक्ष का मार्ग मिलता है इसलिए सभी लोग ज्ञानी की तरफ आकर्षित होते हैं। जिसके पास जो गुण मौजूद हैं उनकी प्रशंसा करने से आकर्षण आता है।

सुंदरता जहान में नहीं हमारे अंदर है,
सम्यक्त्व मंदिर में नहीं हमारे अंदर है।
आकर्षण बढ़ता है तप त्याग संयम से यारो।
वह ज्ञान परवस्तु में नहीं हमारे अंदर है।

8. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! दिगम्बर संत का कमंडल भूमंडल का अर्थशास्त्र है ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! दिगम्बर मुनि का कमंडल भूमंडल का सबसे बड़ा अर्थशास्त्र है, आय व्यय के सिद्धान्त को दर्शाता है। कमंडल में दो छिद्र होते हैं एक बड़ा व एक छोटा बड़े छिद्र द्वारा जल धारण किया जाता अर्थात् ग्रहण किया जाता है व छोटे छिद्र से जल का निसर्जन अर्थात् निर्गमन होता है। आगमन मार्ग बड़ा होने से अधिक ग्रहण करने की प्रेरणा मिलती है व निर्गमन मार्ग छोटा होने से व्यय कम करने की प्रेरणा मिलती है यह अर्थशास्त्र ही नहीं यह सम्पूर्ण लोक शास्त्र का विषय है।

शुचिता का उपकरण है कमंडल – दिगम्बर साधु कमंडल में जल पीने के लिए नहीं शौच लघुशंका व आहार से पहले शुद्धि हेतु रखते हैं। दिगम्बर संत 24 घंटे में मात्र 1 बार प्रात: 10 बजे चौका में शुद्ध प्रासुक जल ही लेते हैं इसलिए कमंडल में जल मात्र शुद्धि के लिए उपयोग में लेते हैं।

सभी सम्प्रदायों में संत-साधु हुआ करते हैं शुद्धि क्रिया हेतु धातु आदि का बरतन भी रखते हैं पर जैन साधु मल आदि की शुद्धि के लिए नारियल का उत्तम कमंडल अथवा मसाले आदि का कमंडल रखते हैं, जैन साधु अपरिग्रही होते हैं मात्र आवश्यक क्रिया हेतु उपकरण के रूप में कमंडल का प्रयोग करते हैं।

कमंडल में काई नहीं लगती, इसे मांजना नहीं पड़ता, पानी साफ करके सुखाते हैं जिससे सूक्ष्म जीवों की भी विराधना नहीं होती अत: कमंडल अहिंसा धर्म का पालन कराता है। अत: कमंडल जैन साधु की पहिचान है दीक्षा से लेकर मरण पर्यंत इसे साधु अपने पास ही रखते हैं।

पिच्छी कमंडल शास्त्र ये है संतों की पहिचान।
तप, त्याग, संयम ये है दिगम्बरत्व की शान।।

9. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! परमात्मा के द्वार पर तथा गुरु के दर पर जाओ तो पारम्परिक वस्त्र में जाओ, अन्य जीन्स पेंट आदि में नहीं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! यदि व्यापार की, पुलिस की, डॉ. की, स्कूल की ड्रेस पहनकर मंदिर जाओगे तो मंदिर में वैसे ही परिणाम होंगे भक्ति के परिणाम नहीं होंगे। इसलिए परमात्मा के विद्यालय में ड्रेस में आते हैं तो सातिशय पुण्य प्राप्त होता है।

यूनिफार्म का हमारे जीवन में बहुत प्रभाव पड़ता है जो जैसी ड्रेस में होता है जैसे सैनिक हरी ड्रेस में होता है तो जोश व ओज से भर जाता है, सादा ड्रेस में वह भी सामान्य व्यक्ति हो जाता है। दुनियाँ में हर जगह की, हर व्यक्ति की ड्रेस है पर जैन संत बिना ड्रेस व बिना एड्रेस के होते हैं उनकी कोई ड्रेस नहीं होती क्योंकि वह नग्न होते हैं, विदाउट ड्रेस वाले जैनमुनि होते है, जैन मुनि मोक्ष प्राप्त करने के लिए रत्नत्रय का पालन करते हैं मोक्ष जाने के लिए वस्त्रों की नहीं निर्वस्त्रों की आवश्यकता है, मोक्ष जाने के लिए कपड़े नहीं, लफड़े नहीं परमात्मा के गुणों की आवश्यकता है।

हर जगह पर जाने की ड्रेस होती है। शादी की ड्रेस, पार्टियों की ड्रेस, विद्यालय, वकील, डॉक्टर, पुलिस, मार्केट, होम ड्रेस तो फिर एक मंदिर जाने की भी ड्रेस अवश्य होना चाहिए। जब विद्यार्थी स्कूल जाता है तो यूनिफार्म में जाता है यदि वह यूनिफार्म में नहीं है तो सजा मिलती है अथवा स्कूल से वापिस भेज दिया जाता है इसी प्रकार जब हम परमात्मा के अथवा गुरु के विद्यालय में जायें और ड्रेस में नहीं जायें तो हमें उत्कृष्ट पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है। आप अनेक प्रकार के वस्त्रों को पहनकर परमात्मा के विद्यालय में जाकर प्रदर्शन करते हैं यह भी विचार नहीं करते है कि हम जो भी वस्त्र पहने हैं वे कैसे हैं, किससे बने हैं, हिंसात्मक तरीके से तो नहीं बने हैं, शुद्ध हैं या अशुद्ध, पहनने व दिखाने से मतलब देखो हमारे पास कितनी सुन्दर साड़ी है, सूट है, पेंट शर्ट है, जींस है आदि, अपने अहंकार की पुष्टि के लिए तथा गरीबों का दिल दुखाने के लिए अनेक प्रकार के वस्त्रों को पहनकर दिखाते हैं।

अत: मंदिर में महिलाओं को, बहिनों को कभी भी जींस आदि पहिनकर नहीं जाना चाहिए तथा परमात्मा व गुरु के सामने हमेशा सिर ढककर जाना चाहिए। पारम्परिक वस्त्रों को पहिनकर जाना चाहिए।

कहा है–**सिर ढके वो स्त्री मोर सी न ढके सो ढोर सी।**

10. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! अनेक प्रकार के मनुष्य व अनेक प्रकार के देव होते हैं लेकिन कुछ–कुछ मनुष्य व देव नीच जाति के होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! जो लोग पूर्व में नीच कार्य करते हैं, नीच कार्य करने वाले लोगों को देखकर खुश होते हैं, नीच मनुष्यों व देवों की प्रशंसा करते हैं उनका सम्मान करते हैं, नीच कार्यों की प्रशंसा करते हैं जो उत्तम कार्यों की निंदा करते हैं ऐसे लोग ही नीच मनुष्य व नीच जाति के देव बनते हैं।

जदि ते विसय कसाया पावत्ति परुविदा व सत्येसु।
कह ते पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति।।

जो सम्यक् श्रद्धान से, सच्चे ज्ञान से, चारित्र से शून्य हैं, विषय कषायों का सेवन करने वाले हैं, परमार्थ ज्ञान से शून्य हैं ऐसे गुरुओं की सेवा करना, भक्ति वैयावृत्ति करना, आहारादि देना इन क्रियाओं से जो पुण्य होता है ऐसे लोग खोटे पुण्य के कारण खोटी जाति के अर्थात् नीच जाति के देव व मनुष्य बनते हैं।

इस संसार में विषय व कषाय ये दोनों महापाप हैं, जो विषय कषाय करते हैं, स्वयं को गुरु बताते हैं, अपने भक्तों को पुण्यात्मा कहते हैं ऐसे पापी संसार में तारने वाले नहीं हो सकते वे स्वयं ही संसार में पतित होते हैं, जो स्वयं पतित हैं वे दूसरों को कभी भी पावन नहीं कर सकते ऐसे पतित, पापी, नीच कुल वाले लोग परभव में जाकर नीच जाति के मनुष्य व देव बनते हैं।

जो खोटे कार्य करके नीच गोत्र को बाँध लेते हैं वे परभव में नीच जाति के मनुष्य बनते हैं। जो पूर्व कर्मों के अनुसार पाप कार्य करते हैं, माँस, मदिरा आदि अनेक व्यसन करते हैं, कार्य–अकार्य का विवेक नहीं रखते हैं वे देवों में नीच जाति के देव, व्यंतर आदि बनते हैं जो पूर्व कर्मवशात् शत्रु बनकर लड़ते–लड़वाते रहते हैं। अत: नीच कार्यों के कारण यह जीव नीच मनुष्य व नीच जाति के देव बनते हैं।

समय गूँगा नहीं है बस मौन है वक्त पर बता देता है कि किसका कौन है।

11. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** **केसरिया वस्त्र पूजा करने की प्रेरणा देता है, ज्ञान, ध्यान को बढ़ाता है। ऐसा क्यों?**

समाधान–हे भव्यात्मन्! पीला, नारंगी रंग श्रेष्ठ रंग है, पीला रंग पीत लेश्या का प्रतीक है, पीत लेश्या धार्मिक विचारों को दर्शाती है, केसरिया वस्त्र हमें पूजा करने की प्रेरणा देता है, ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग, व्रत संयम में उत्कृष्टता प्रदान करता है पीला रंग सरलता, सहजता, प्रेम, वात्सल्य, समर्पण, प्रीति, एकता सहिष्णुता का प्रतीक है।

प्रभु व गुरु के भक्त पीले वस्त्र पहनकर भक्ति, आराधना, अभिषेक पूजन, विधान, आदि करते हैं, इन्द्र इन्द्राणी बनकर पीले व केशरिया पोशाक पहनकर बड़े-बड़े विधान, पंचकल्याणक आदि महोत्सव में प्रभु की आराधना करते हैं। अधिकांश धर्मों के झण्डे का रंग भी पीला है, पीला रंग सहनशक्ति का प्रतीक है, धार्मिकता का प्रतीक है, यह रंग भाईचारा सिखलाता है, कोई पुरुष, महिला, युवा पीले वस्त्र पहने दिखायी दे तो लगता है ये परमात्मा का भक्त है, धर्मात्मा है, सदाचार से युक्त है, सरल परिणामों वाला है। कहा है नाड़ी तंत्र की दुर्बलता को हटाने के लिए पीला रंग लाभदायक हैं जुकाम व लीवर की स्वस्थता के लिए पीले रंग का ध्यान करना चाहिए, आचार्य परमेष्ठी का ध्यान कीजिए क्योंकि पीला रंग आचार्य परमेष्ठी का प्रतीक है, इससे आचार्य भगवन्तों के महिर्षियों के सर्वगुणों का समावेश होने लगता है, पीले वस्त्र पहनकर पीले रंग की माला से जाप करने से ज्ञान में वृद्धि होती है, अधिकांश विद्यालयों की इमारतें पीले रंग से पोती जाती हैं जिस विद्यालय के बच्चों की पीली ड्रेस होती है वे प्रतिभासंपन्न तथा बहुत ज्ञानी बच्चे होते हैं। जब पेड़ से पत्ता पककर टूटता है तो पीला हो जाता है। जब आपके शरीर में कहीं चोट लग जाये तो घाव पकने लग जाता है उसी प्रकार जब हमारे शरीर पर पीले वस्त्र आ जायें तो समझना चाहिए भक्ति का रंग अब हमारे ऊपर चढ़ने लग गया है। शादी, विवाह अथवा रक्षाबंधन, दीपावली पर्व पर पीला तिलक माथे पर लगाते हैं ताकि, प्रेम, वात्सल्य, समर्पण बना रहे। अत: पीला रंग पूजा, भक्ति, ज्ञान, ध्यान, संयम, प्रेम, वात्सल्य व समर्पण का प्रतीक है।

12. जिज्ञासा–हे गुरुदेव! कोई लोग अत्यधिक क्रोधी होते हैं वे स्वयं भी जलते हैं तथा उनके सम्पर्क में आने वाले प्राणी भी जल जाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! अपेक्षा की उपेक्षा होने पर, इच्छाओं का दमन होने पर क्रोध आता है। क्रोधी मनुष्य अविवेक के कारण अनेक जीवों की हिंसा करता है, क्रोध के आवेश में प्राणी आत्महत्या जैसा महापाप भी कर लेता है, क्रोधी व्यक्ति नरक व निगोद की यात्रा करते हुए अनेक दु:खों को भोगता है। दो चार मनुष्यों को परस्पर क्रोध करते हुये देखकर वा लड़ते हुये देखकर जो संतुष्ट होते हैं, खुश होते हैं ऐसे लोग पूर्व संस्कार वशात् अत्यन्त क्रोधी होते हैं तथा अनेक महादु:खों को भोगा करते हैं। क्रोध सर्व पाप का कारण है, सर्व अनर्थों की जड़ है, क्रोध से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, क्रोध के कारण विभ्रम होता है, क्रोध एक जहर है जिसे पीकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं क्रोध एक कषाय है जो स्वयं को भी दु:ख देती और दूसरे प्राणियों को भी देती है, जो आत्मा के अन्तरंग बहिरंग गुणों का घात करती है।

जिस प्रकार आग का गोला स्वयं को जलाता है तथा जो भी उसके निकट आता है उसे भी जलाता है वैसे ही क्रोध रूपी आग का गोला व्यक्ति को स्वयं भी जलाता है व उसके पास जो जाता वह भी जल जाता है।

क्रोध वह बम है जो अपना पूरा घर उजाड़ सकता है। क्रोध पूर्वजन्मों में दिल में भरे कीचड़ की बदबू है, जिस प्रकार कीचड़ में कोई रहना नहीं चाहता ठीक वैसे ही क्रोधी व्यक्ति के पास कोई रहना नहीं चाहता है। क्रोध सल्फास की गोली है सल्फास की गोली तो एक जीवन को ही नष्ट करती है पर क्रोध का जहर कई जिंदगी को राख कर देता है। क्रोध करने पर 49 माँसपेशियों की ऊर्जा बर्बाद होती है जिससे दिल की धड़कन तीव्र हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है जिससे मस्तिष्क सोचने समझने में असमर्थ हो जाता है इस कारण क्रोधी अकाल मौत को निमंत्रण देता है इसलिए कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए।

क्रोध के कारण सर्व वंश, सर्व परिवार नष्ट हो जाता है, जीवन बर्बाद हो जाता है क्रोधी व्यक्ति पश्चाताप के ही आँसू बहाता रहता है। अत: क्रोध नहीं करना चाहिए।

13. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आदर सत्कार तो सभी व्यक्ति चाहते हैं किंतु प्राप्त नहीं होता ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! जो पुरुष पूर्व में अपनी विद्या के अभिमान से निर्ग्रंथ वीतराग साधु को नमस्कार नहीं करते, न स्तुति करते, न विनय करते और न उनकी सेवा करते हैं ऐसे पुरुष सत्कार व आदर को प्राप्त नहीं होते।

शब्द का बहुत ज्ञान आचरण हीन होवे, ऐसा ज्ञान आदमी में अभिमान लाएगा,
देखकर ज्ञानवान साधुओं को गाँव में भी, होशियारी अपनी वो साधु को बताएगा।
आचरण हीन ज्ञान कारगर नहीं यारो, ऐसा शब्द ज्ञानी डूबा गैरों को डुबाएगा,
ज्ञान गर आचरण सहित हो जीवन में, वही ज्ञान भगवान तुमको बनाएगा।।

आदर, सत्कार की इच्छा होने पर भी कोई भी पुरुष आदर-सत्कार नहीं करता। जो पुरुष धर्म के विरुद्ध प्रवृत्ति करता है, देव-शास्त्र-गुरु की विनय नहीं करता, व्यर्थ का अभिमान करता है वह मनुष्य मरकर नीच कुलीन होता है फिर सभी उसको नीच दृष्टि से देखते हैं उसका कोई भी सम्मान नहीं करता।

वो चाहते तो हैं सभी हमारा सम्मान करें, सभी हमें उच्च दृष्टि से देखें वर्तमान में वह अपने से बड़ों का सम्मान व आदर भी करते हैं तब भी कोई उनका सम्मान व आदर नहीं करता क्योंकि पूर्व कृत्य का परिणाम कभी न कभी तो भुगतना ही पड़ता है।

आचार्य समन्तभद्र जी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं–उच्चै र्गोत्रं प्रणते – साधुओं को प्रणाम करने से, आदर व सत्कार करने से उच्च गोत्र की प्राप्ति होती है। जैन साधु का आदर-सम्मान विनय करने से जैन कुल में जन्म मिलता है। भविष्य में यह आदर सम्मान का पात्र बनता है तथा साधुओं की निंदा करने से, अपमान करने से नीच गोत्र का बंध होता है।

इसलिए भव्य पुरुषों को कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए। देव शास्त्र, गुरु का कभी भी अविनय नहीं करना चाहिए जिससे सभी लोग हमारा आदर व सम्मान करें तथा सभी उच्च दृष्टि से देखें।

14. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कुछ लोग कमाते अधिक हैं और पैसा खर्च भी नहीं करते फिर भी पैसा ठहरता नहीं है ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्यात्मन्!

खुशी से दे दिया जिसने उसे खुश होके देता है।
जिसे देने में गम होता उसे गम देके देता है।।
नहीं देता यहाँ कुछ भी उसे कुछ भी नहीं देता।
जो देने को मना करता वो उसका छीन लेता है।।

जिस प्रकार प्रतिदिन कुएँ से पानी निकाला जाता है परन्तु कुएँ में पानी उतना ही बना रहता है, कम नहीं होता तथा जिस प्रकार टीचर विद्यादान प्रतिदिन छात्रों को देते हैं पर विद्या की व ज्ञान की कमी नहीं होती निरन्तर देने से वृद्धि को प्राप्त होता जाता है वैसे ही सुपात्रों को दान देने से, पुण्य कार्य में धर्म के कार्य में गरीबों की सेवा में, अनाथालय आदि में अपने धन के खर्च करने पर भी धन की वृद्धि होती रहती है। मंदिर आदि धर्म कार्यों में दान देने से धन कभी भी कम नहीं होता दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त होता जाता है।

कहा है– देने वाले ईश्वर व गुरु होते हैं ईश्वर व गुरु प्रत्येक प्राणी को देते ही रहते हैं चाहे कोई माँगे या न माँगे तब भी उसका काम है देना, भगवान भक्त को, गुरु शिष्य को इतना देते हैं कि देते देते एक दिन रत्नत्रय से पवित्र करके अपने सम बना लेते हैं तब कुछ भी शेष नहीं रहता। जैन दर्शन देना सिखाता है–त्याग सिखाता है इसलिए हमेशा देना चाहिए।

अस्त व्यस्त घर, अशोभनीय आचरण, अभक्ष्य भक्षण, रात्रि भोजन, झाड़ू उल्टी रखना, खड़े होकर भोजन करना, ऊपर मुँह करके बोतल व जग से पानी पीना इन सभी कार्यों के करने से घर में धन ठहरता नहीं है, लक्ष्मी चली जाती है अथवा आया हुआ धन भी ठहरता नहीं है।

अच्छी व सच्ची बात मिथ्यात्व में प्रवेश नहीं करती,
अहंकार अंदर के ज्ञान को मिटाता है।

15. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है तत्त्वों का श्रद्धान करने से सम्यग्दर्शन मजबूत होता है ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! संसार के कार्यों को छोड़कर, परमार्थ के लिए जो स्तुति, वंदना, पूजन करते हैं वह भक्ति है। माँ–बेटे पर, पति–पत्नि पर, पिता–पुत्र पर, सास–बहु पर पिता–पुत्री पर, भाई–भाई पर, बहिन–भाई पर विश्वास करता है श्रद्धा नहीं लेकिन शिष्य–गुरु पर, भक्त भगवान पर श्रद्धान करते–करते एक दिन वह स्वयं ही सात तत्त्व, छह द्रव्य, नौ पदार्थों पर श्रद्धान करने लगता है तथा जीवादि सात तत्त्वों का बार–बार चिंतन करने से, श्रद्धान में दृढ़ता आती है। वस्तु का स्वरूप इसी प्रकार है, ऐसा ही है, अन्य प्रकार नहीं है ऐसा तलवार की धार पर पानी की तरह अटल श्रद्धान होता है तो सम्यग्दर्शन होता है। जैसे– तलवार की धार का पानी हवा द्वारा चलायमान नहीं होता, वैसे ही जिस जीव को सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर सच्ची श्रद्धा होती है वह मिथ्यादृष्टियों के वचनरूपी हवा के द्वारा संशय को प्राप्त नहीं होता। रेवती रानी की परीक्षा हेतु देव ने आकर कहा 25वें तीर्थंकर का समवशरण आया है, नगरवासी सभी समवशरण की ओर भाग रहे हैं चलो हम सब भी समवशरण में चलकर प्रभु की वाणी का अमृतपान करें। रेवती रानी ने सुनकर कहा आप सभी जाइये मैं नहीं जाऊँगी क्योंकि तीनों कालों में भरत क्षेत्र में तीर्थंकर 24 ही होते हैं, 24 ही भविष्य में होंगे 25 तीर्थंकर कभी नहीं होते, देव रेवती रानी की दृढ़ श्रद्धा देखकर जय–जयकार करने लगा ऐसी होती है दृढ़ श्रद्धा।

दही को एक बार बिलौने से मक्खन नहीं निकलता, बार–बार बिलौने से मक्खन निकलता है, विद्यार्थी एक बार पढ़ने से प्रथम नहीं आता बार–बार पढ़ने से प्रथम आता है उसी प्रकार तत्त्व एक बार में समझ में नहीं आता बार–बार अभ्यास करने से तत्त्व समझ में आता है क्योंकि मिथ्यात्व का श्रद्धान अनादिकाल से है उन्हें तोड़ने के लिए श्रद्धान मजबूत होना चाहिए। श्रद्धान की मजबूती के लिए तत्त्वाभ्यास करना चाहिए।

करो कोशिश तो कश्ती डूबती भी पार हो जाये।
इसी दिल में मुझे महावीर का दीदार हो जाये।

16. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! भेद विज्ञान से, पुरुषार्थ से ज्ञान की ज्योति जलती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मैं मैं हूँ। शरीर से पृथक् हूँ। इस प्रकार की प्रतीति होना भेद विज्ञान है। शरीर तो आत्मा के रहने के लिए मकान है आत्मा उस मकान में रहती है, जिस प्रकार बाँसुरी अलग है, संगीत अलग है फिर भी बाँसुरी में से संगीत निकलता है यदि बाँसुरी को तोड़कर देखेंगे तो संगीत नहीं निकलेगा इसी प्रकार शरीर को खोलकर देखेंगे तो हाड़-माँस आदि अपवित्र पदार्थ तो दिखेंगे किन्तु आत्मा नहीं दिखेगी। जैसे बल्ब को प्रकाशित करने वाला करंट दिखता नहीं पकड़ में आता है उसी प्रकार आत्मा दिखती नहीं लेकिन शरीर में हलन-चलन की आधारशिला ही आत्मा है। संसारी जीव को आत्मा व शरीर में एकत्व के अभ्यास से स्वयं की प्रतीति नहीं होती लेकिन शरीर व आत्मा की भिन्नता से भेद विज्ञान रूपी बल्ब जलने लगता है।

जिनेन्द्र प्रभु द्वारा कथित, महर्षियों द्वारा रचित आगम प्रणीत ग्रंथों का अध्ययन करने से देव, शास्त्र, गुरु पर सच्चा श्रद्धान करने से, अध्ययन के द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव करने से श्रेणी आरोहण करने वाले मुनिराज को भेद विज्ञान हो जाता है तभी केवलज्ञान रूपी ज्योति जल जाती है जो कभी भी नहीं बुझती, मात्र एक भेद विज्ञान रूपी दीपक है जो हमेशा जलता रहता है।

जैसी सूखी माचिस शीघ्र जल जाती है पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता है परन्तु वर्षा ऋतु में गीली होने के कारण माचिस में आर्द्रता आ जाती है, जलाते हैं पर शीघ्र नहीं जलती है बहुत देर से जलती है जब घर्षण करते करते उष्णता आ जाती है तथा धूप में सुखा देते हैं तब जल पाती है ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा रूपी माचिस, मोह-राग-द्वेष रूपी जल से गीली हो गयी है। शीघ्र भेद विज्ञान की ज्योति जलती नहीं है लेकिन तत्त्व का चिंतन करते-करते या तत्त्वाभ्यास की धूप से सुखा दे तो शीघ्र ही भेद विज्ञान की ज्योतिरूपी माचिस जल जाती है।

ज्ञान का रंग, भक्ति का ढंग, श्रद्धा का संग हमें लक्ष्य की प्राप्ति कराता है।

17. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ब्रह्ममूहूर्त में प्रातः जल्दी उठने से शरीर स्वस्थ व मन प्रशस्त रहता है ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्य श्रावक! सोयी हुयी आत्मा को जागृत करने का सबसे उत्तम समय है ब्रह्ममुहूर्त। जैसे ही ब्रह्ममुहूर्त होता है ऊषा की प्रथम किरण सरोवर में पड़ती है तो सरोवर के कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार परमात्मा पर प्रथम दृष्टि पड़ती है तो हृदय रूपी कमल खिलने लगते हैं जिससे हमारा मन सरल, सहज, पवित्र, विशुद्ध व निर्मल होने लगता है।

आचार्यों ने कहा है ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए सूर्योदय से दो घड़ी पहिले उठ जाइये एक घड़ी चौबीस मिनिट की होती है अर्थात् 48 मिनिट पूर्व जाग जाना चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से हमारे अंदर का ब्रह्म (परमात्मा) भी उठने बैठने जागने का प्रयास करता है,

भव्यात्माओं को प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करना चाहिए। मैं कौन हूँ? मेरा धर्म क्या है? मेरा कौन है? यह सब विचार करना चाहिए। प्रात:काल जैसे ही सूर्य निकलता है चिड़ियाँ चहकने लगती हैं, गाय रँभाने लगती हैं, मुर्गा बाग देने लगता है, मंदिरों के घंटे बजने लगते हैं चारों तरफ का माहौल सुहावना लगने लगता है। प्रात:काल की खुले आकाश के नीचे की हवा दवा से ज्यादा काम करती है। व्यक्ति के शरीर के रोग उस स्वच्छ हवा से भाग जाते हैं, जो लोग ब्रह्म मुहूर्त में उठते हैं, उनकी दिनचर्या आनंदमय होती है, दिन भर आलस नहीं आता, दिन भर ताजापन महसूस करते हैं।

नीतिकारों ने कहा है प्रात: चार से पाँच बजे के बीच में उठने वाले व्यक्ति देवता के समान होते हैं, पाँच से छ: के बीच उठने वाले मनुष्य के समान हैं। छ: से सात के बीच उठने वाले जानवर के समान हैं तथा 7 से 8 के बीच उठने वाले व्यक्ति राक्षस के समान हैं 8 के बाद उठने वाले महाराक्षस के समान हैं। अत: ब्रह्ममुहूर्त में उठें और परम ब्रह्म को प्राप्त करें।

परमात्मा का रिश्ता पवित्रता से है पैसे नहीं

18. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** देवों के कारण दिन छोटे–बड़े होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! सूर्य को 16,000 देव खींचते हैं 4000 हाथी के आकार के देव, 4000 घोड़े के आकार के देव, 4000 बैल के आकार के देव, 4000 सिंह के आकार के आभियोग्य जाति के देव हुआ करते हैं। जब हाथी के आकार वाले देव सूर्य को खींचते हैं तब दिन सबसे बड़े होते हैं, जब बैल व घोड़े वाले देव सूर्य को खींचते हैं तब दिन थोड़े थोड़े घटने लगते हैं तब मौसम सम रहता है न अधिक गर्मी न अधिक सर्दी होती है जब सिंह वाले देव तेज गति से चलने वाले देव सूर्य को खींचते हैं तब रात बड़ी व दिन छोटे होते हैं तब सर्दी अधिक होती है।

जम्बूद्वीप की वेदी के पास 180 योजन की अभ्यन्तर वीथी में जब सूर्य भ्रमण करता है तब दिन 18 मुहूर्त (14 घंटा 24 मि.) का और रात्रि–12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मि.) की होती है किन्तु जब वही सूर्य लवण समुद्र की बाह्य परिधि में भ्रमण करता है तब दिन 12 मुहूर्त का व रात्रि 18 मुहूर्त की होती है।

जिस दिन सूर्य अभ्यन्तर वीथी में भ्रमण करता है, उस दिन 18 मुहूर्त का दिन होता है किन्तु जिस दिन दूसरी वीथी में भ्रमण करता है उस दिन 2/61 मुहूर्त घट जाता है तब 17 59/61 मुहूर्त का दिन होता है जब तीसरी वीथी में पहुँचता है तब 17 57/61 मुहूर्त का दिन होता है। इसी प्रकार प्रत्येक वीथी में 2/61 2/61 घटते–घटते 17 55/61, 17 53/61, 17 51/61 मुहूर्त का दिन होते–होते जिस दिन अंतिम वीथी में पहुँचता है उस दिन 12 मुहूर्त का दिन होता है इसी प्रकार अभ्यन्तर वीथी की ओर बढ़ते हुये प्रत्येक वीथी में 2/61 मुहूर्त बढ़ते हैं तब दिनमान 12 2/61, 12 4/61, 12 6/61, 12 8/61 क्रम से बढ़ते हुये अभ्यन्तर वीथी में 18 मुहूर्त का हो जाता है आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन 18 मुहूर्त का दिन व 12 मुहूर्त की रात्रि होती है। अत: श्रवण माह से पौष मास तक 183 दिन सूर्य दक्षिणायन का तथा भाद्र माह से आषाढ़ माह तक 183 दिन उत्तरायण का रहता है।

19. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, संयम को प्राप्त कराती है वह पॉजिटिव सोच है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! ऐसे विचार जो कुशल व्यवहार, मधुर वचन, बड़ों का सम्मान, छोटों से वात्सल्य व प्रेम, परमात्मा की भक्ति, गुरुओं की सेवा, आज्ञा व विनय करना तथा माता-पिता की सेवा व दीन दुखियों पर करुणा का भाव व सबकी प्रशंसा करने से तथा सभी जीवों के प्रति मित्रता का भाव पैदा करना वे ही सबसे उत्तम विचार कहलाते हैं जिन्हें अंग्रेजी में कहते हैं Positive thinking.

जिससे हमारा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, बुद्धि को प्राप्त हो, जो विचार सुख, शांति, आनन्द, धर्म व पुण्य को बढ़ाएँ वह Positive thinking है, ध्यान करने से सबसे अधिक पॉजिटिव एनर्जी मिलती है। Positive thinking ही सर्वश्रेष्ठ विचार बनाता है जो विचार तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट बंध करा देता है, जो विचार निर्ग्रंथ बनाकर, तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त कराके निर्वाण की प्राप्ति कराता है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कराता है वह सबसे उत्तम विचार है।

खानपान, नौकरी करना, वस्तुओं को प्राप्त करना, धन कमाना, इच्छाओं की पूर्ति करना, परिवार बनाना, बच्चे पैदा करना ये Positive thinking नहीं है ये Nigative thinking है। इन सभी कार्यों से दुख बढ़ता है, दुःख संसार का कारण है, संसार में आना, जन्म-मरण करना ये Nigative thinking है,

सही विचार पैदा करो, सही विचार से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, सम्यक् विचार ही Positive thinking है। हम सभी पॉजिटिव विचारों में जियें, पॉजिटिव विचारों में प्रभु की भक्ति व गुरुओं की सेवा करते करते अंतिम साँस छोड़ें तथा आत्मा का ध्यान करके शीघ्र ही स्वयं पॉजिटिव बने। जो मृत्यु की भी मृत्यु करा दे, स्वाधीन बनाये, शक्ति दिलाये, सुखी बनाये, आनंद दिलाए, ज्ञान बढ़ाये, सही दृष्टि बनाये वे सारे विचार पॉजिटिव हैं अन्य सभी निगेटिव हैं।

20. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ग्रहण की गयी विद्या, अथवा पढ़ी हुई विद्या अगले जन्म तक भी साथ जाती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! ज्ञान गुण की विनय करने से विद्या परभव तक साथ जाती है। जितनी-जितनी विनय होगी उतनी अधिक विद्या बढ़ेगी कहा भी है **विद्या ददाति विनयं** – विनय विद्या को देती है। जिसकी विनय करोगे अगले जन्म में वह साथ जायेगा, सम्यग्दर्शन की विनय करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान की विनय करने से सम्यग्ज्ञान, चारित्र की विनय करने से सम्यक्चारित्र, तप की विनय करने से तप में वृद्धि होती है जो परभव तक साथ में जाती हैं।

जैसे-मेमोरी कार्ड में कोई चीज डाली चार्ज करके इण्टरनल मैमोरी में डाटा डाल दिया तो वह डाटा हमेशा रहता है जब चाहो तब देख सकते हैं। मोबाइल चाहे अग्नि में जल गया हो, खराब हो गया हो, गुम हो गया हो तब भी मोबाइल का डाटा सुरक्षित रहता है वैसे ही वैनयिकी विद्या अगले जन्म तक डिलीट नहीं होती, उसे चोर लुटेरे भी नहीं लूट पाते, न ही वैनियकी विद्या कभी गुम होती है। वैनयिकी विद्या आत्मिक मैमोरी है जिस विद्या को आत्मसात् कर लिया तो चिता में जलने के बाद भी परभव में साथ रहती है। किसी को स्तोत्र, पाठ, विधान आदि जल्दी याद हो जाते हैं पूर्वजन्म के संस्कार व वैनयिकी विद्या के कारण स्मृति आ जाती है।

एक 9 वर्ष की बालिका जिसकी मधुर वाणी थी गाथा, शास्त्र स्तोत्र सभी कुछ याद था, विद्वानों की तरह प्रवचन करती थी, सभी लोग देखकर दंग रह जाते थे। इतनी छोटी बच्ची को इतना ज्ञान कैसे हुआ, बड़े-बड़े विद्वान भी उसकी तर्क शक्ति, वाद विवाद को देखकर कमजोर पड़ जाते थे उसके दिमाग की जाँच हुई शोध के माध्यम से पता चला पूर्वजन्म की ग्रहण की हुई विद्या वर्तमान में अथवा परभव में स्मरण में आती है।

हे प्रभु! आइना साफ किया तो मैं नजर आया।
मैं को साफ किया तो तू नजर आया।।

21. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया दुनियाँ में पुरुष सबसे सुंदर होते हैं स्त्री नहीं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! वास्तविक सुंदर यदि कोई है तो वह है पुरुष पुरुष नेचुरल सुंदर है, प्रकृति भी नेचुरल है, प्रकृति को वस्तुओं के द्वारा सुंदर बनाया नहीं जाता, प्रकृति को शृंगार आदि के द्वारा सजाया नहीं जाता, वह नेचुरल सजी धजी है वैसे ही पुरुष सर्वश्रेष्ठ रूपवान है स्त्री नहीं।

पक्षु पक्षियों पर दृष्टि डालिये, मोरनी से सुंदर मोर होता है अपने सुंदर पंखों को फैलाकर नृत्य दिखाकर सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है, नागिन से सुंदर नाग होता है जिसके मस्तिष्क में मणि विद्यमान होती है। हथिनी से सुंदर हाथी होता है जिसके मस्तक पर गजमुक्ता होता है, शेरनी से सुंदर शेर होता है जिसे जंगल का राजा कहा जाता है। अत: इससे सिद्ध होता है दुनियाँ में सबसे सुंदर पुरुष है स्त्री नहीं।

वीतरागता के परमाणु सबसे उत्कृष्ट होते हैं। पुरुष ही नग्नत्वता को धारण करके रत्नत्रय प्राप्त करके वीतरागता के परमाणुओं को प्राप्त करता है तथा 23 अरब सेल्स को संयम, तप, त्याग, ध्यान की अग्नि के द्वारा सभी सेल्सों को चार्ज करके कैवल्य को प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करता है अर्थात् पुरुषार्थ करके सबसे उत्कृष्ट मोक्ष पद को प्राप्त करता है इसलिए भी पुरुष सबसे सुंदर है। पुरुष सुंदर होते हैं दिखते नहीं, स्त्री सुंदर होती नहीं दिखती है, पुरुष छल कपट, मायाचारी से दूर सरल होते हैं इसलिए पुरुष सुंदर होते स्त्री मायाचार से सहित होती है सोचती कुछ करती कुछ, अंदर कुछ बाहर कुछ दिखावा अधिक करती है शृंगार व आभूषणों से सहित होती है। शरीर को सुंदर बनाने के लिए क्रीम, पाउडर, लिपिस्टिक आदि का प्रयोग करती है पर थोड़े समय के लिए सुंदर दिखती है, कुछ देर के बाद बदसूरत दिखने लगती है इसलिए महिला वास्तविक सुंदर नहीं है पुरुष ही वास्तविक सुंदर है, पुरुष के वास्तविक रूप को देखकर लज्जा नहीं आती, शर्म नहीं आती क्योंकि

वास्तविक रूप है नग्नता। जैन साधु नग्न होते हैं, स्वतन्त्र जीते हैं, रत्नत्रय से सहित होते हैं इसलिए उनकी नग्नता को देखकर देव भी नमन करते हैं तथा सभी प्राणी आकर्षित हो जाते हैं इसलिए भी पुरुष सुंदर है। महिला के वास्तविक रूप को देखकर लज्जा व शर्म से सिर नीचा हो जाता है। उसे अपने वीभत्स रूप को ढकने के लिए वस्त्रों का अवलंबन लेना पड़ता है इसलिए महिला सुंदर नहीं पुरुष ही सुंदर होता है।

कहना जिनकी आदत है कभी वो कह नहीं पाते,
कि गूँगे गीत जिस तरह कभी भी स्वर नहीं पाते।।
लिखा इतिहास में भगवान से बढ़कर गुरु होते,
गुरु निंदा जो करते हैं कभी वो तर नहीं पाते।।

***

गुरु की आंखे बोलती है मुख की क्या बात।
धन्य उसी का माथ है, जिस पर गुरु का हाथ।।

***

*** सुख और सफलता उन्हें प्राप्त होती है जो प्रत्येक कार्य को संकल्पपूर्वक पूरा करते हैं। जितना आत्मविश्वास दृढ़ व मजबूत होगा, सफलता भी उतनी अधिक प्राप्त होगी।**

***

*** हम वो करें जो सबको पसंद हो तो सभी हमें पसंद करेंगे**

22. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! प्राय: देखा जाता है बहुत से लोग सिर दर्द के कारण अत्यधिक दुखी व परेशान होते हैं, किसी भी कार्य में मन नहीं लगता ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! 100% लोगों में से 80% लोग ऐसे हैं जिनके सिर में दर्द रहता है, किसी के कम तथा किसी के अधिक क्योंकि उन्होंने दिमाग में राग–द्वेष, क्रोधादि कषायों का कचरा जमा कर लिया है जब तक कचरा समाप्त नहीं होगा तब तक सिर की पीड़ा बनी रहेगी तथा जो लोग कुटिल कार्य करते हैं, कुटिल विचार करते हैं, मायाचारी करते हैं, कथनी व करनी में अन्तर करते हैं, दूसरे लोगों को ठगते हैं, पूर्व में अन्य किसी के सिर दर्द को देखकर हँसी उड़ाते हैं, खुश होते हैं तथा अक्सर गलत विचार करने से क्रोध आदि आने से सिर में दर्द होता है। कहा है अपने दिमाग के आले में जमे हुये जाले को साफ कीजिये, चिंता, क्रोध, कुंठा की मकड़ियाँ इसमें रात दिन जाले बुनती रहती है, शांति, प्रेम, प्रसन्नता और आत्मविश्वास के गुलदस्तों से अपने मन को सजायें तथा सिर के दर्द को भगायें।

सिर का दर्द बाम विक्स लगाने से नहीं, दवा खाने से नहीं, कृत्रिम उपचार करने से नहीं, अच्छी सोच, श्रेष्ठ विचार, प्रशस्त मानसिकता, स्वस्थता की पदचाप, सरलता, सहजता, प्रभुभक्ति, श्रेष्ठ चिंतन व सुखी जीवन की भाप है।

श्रेष्ठ महापुरुषों का स्मरण करने से पंचपरमेष्ठी का गुणगान करने से, गुरुओं का चिंतन करने से सिर का दर्द ठीक होता है। हमारा दिमाग स्वर्णपात्र की तरह है इस स्वर्णपात्र को जिनवाणी व गुरुओं की वाणी से भरिये, श्रेष्ठ चिंतन से भरिये कचरे छाप बातों से नहीं, नगरपालिका का ट्रेक्टर मत बनाइए। आज्ञाचक्र का ध्यान कीजिये, नीले कलर का चिंतन करें, ॐ का उच्चारण करें तो आज्ञा चक्र ओम् के नाद से झंकृत होगा जिससे मानसिकता ठीक रहेगी तथा सिर सम्बन्धी सभी विकार दूर होंगे। भक्तामर के 23वें व 26वें छंद का स्मरण करें, जाप करें जिससे सिर संबंधी समस्त परेशानी समाप्त हो जाती है।

23. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! लोग कहते हैं कि शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखर का कण–कण पवित्र है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में अचलगिरि अक्षयगिरि नाम का ऐसा सिद्धक्षेत्र है जो शाश्वत है प्रलयकाल में भी इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता जो कि तीर्थराज सम्मेद शिखर के नाम से विश्व विख्यात है। इसका कभी विनाश न हुआ और न होगा क्योंकि सभी तीर्थंकर व अनंत भव्यात्मा इसी पावन पुनीत धरा से मुक्ति को प्राप्त हुये हैं तथा उनके निर्मल परमाणु वहीं बिखर गये हैं इसलिए यहाँ का एक एक कण पूजनीय है। ऐसे शाश्वत तीर्थराज की वंदना करने अनेक भव्य प्राणी आते हैं दर्शन करके वहाँ के अच्छे अच्छे परमाणुओं को ग्रहण करके वहाँ की रज को माथे से लगाते हैं तथा स्वयं को सौभाग्यशाली व महाभाग्यशाली समझते हैं। ऐसा तीर्थ विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है कहा जाता है इस पर्वत के नीचे रत्नों का खजाना है, अनेक रत्नत्रयधारी मोक्ष पधारे हैं ऐसे अनंत रत्नत्रयधारी मोक्षगामी सिद्ध भगवान व तीर्थंकर देव बहुमूल्य परमाणुओं को खजाने के रूप में पहाड़ के नीचे छोड़ गये हैं इसलिए इस भूमि को रत्नाकर भूमि भी कहा जाता है।

सम्मेद शिखर को शाश्वत भूमि, अचलगिरि, अक्षयगिरि भी कहा जाता है यह वह भूमि है जो शाश्वत है जिसका कभी भी विनाश नहीं होगा प्रलय काल की हवाओं में सब कुछ नष्ट हो जायेगा मात्र तीर्थंकरों की जन्म भूमि अयोध्या व निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर स्वस्तिक व सुपारी के रूप में बचेगी। इससे पता चलेगा कि यह शाश्वत भूमि सम्मेद शिखर है यहाँ से तीर्थंकर मोक्ष जाते हैं तथा जाते रहेंगे। ऐसी पावन पवित्र शाश्वत भूमि में वो विशुद्ध परमाणु आज भी विद्यमान है इसलिए देश विदेश से लाखों की संख्या में भव्य प्राणी इस शाश्वत भूमि पर आकर वो परमाणु प्राप्त करने के लिए दर्शन करते हैं। उनके चरण रज की वन्दना कर अपने माथे से रज कण को लगाते हैं। हमारे अन्तरंग में भी ऐसे ही विशुद्ध परमाणु आये जिससे हम भी अतिशीघ्र इन जैसे गुणों को प्राप्त करके इन जैसे बन जायें।

कहते हैं जो भव्य प्राणी शाश्वत सिद्ध भूमि की भावपूर्वक रात्रि में अन्न जल आदि का त्याग करके विधिपूर्वक एक बार वंदना करता है उस जीव को नरक व तिर्यंच गति नहीं मिलती। देवपत व खेवपत दोनों भाइयों ने श्रद्धा भक्तिपूर्वक तीर्थराज की वंदना पुलकित भावों से खुश होकर निर्मल परिणामों से भक्ति भावपूर्वक की जिससे ज्वार के दाने भक्ति के प्रभाव से बहुमूल्य रत्न बन गये अर्थात् जो भव्यात्मा भावपूर्वक सिर झुकाकर चरण रज को ग्रहण करता है उसे रत्नों का खजाना स्वयंमेव ही मिल जाता है तथा नरक व पशुगति नहीं मिलती है।

तीर्थंकर की शुद्ध वर्गणा इस पर्वत पर छाई है,
जिसकी महिमा ऋषि–मुनियों ने कई बार समझाई है।
जिसका वंदन करते–करते मिट जाते दुख आक्रंदन,
ऐसे गिरि सम्मेदशिखर को कोटि कोटि करता वंदन।

***

रुतबा है या गुरुर मुझे तो बस एक बात का है सरुर।
चाहे दुनियाँ वाले कुछ भी कहे हम तो प्रभु की भक्ति में है मशहूर ।।

***

* **सत्य का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से करोड़ो गुना अधिक व चमकदार है तथा अहिंसा की शक्ति सम्पूर्ण विश्व की शक्ति से भी महान है।**

***

* **हमारा ध्येय पुरुषार्थ पर हो, पदार्थ पर नहीं।**

24. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** देखा जाता है कि किसी स्त्री को भाग्यहीन तथा किसी को भाग्यवान पुत्र प्राप्त होता ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! पूर्व में जो माता अपने बच्चों को अच्छे संस्कार नहीं देती, बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाती, भाग्य के भरोसे बच्चे इधर-उधर घूमते रहते हैं, सही शिक्षा, सही आचरण न देकर भाग्यहीन बना देती है, ऐसी स्त्री के गर्भ से परभव में भाग्यहीन पुत्र का जन्म होता है तथा जो माता गर्भावस्था से ही बच्चों पर ध्यान देती है, अच्छे आचरण देकर सुसंस्कारित करती है परभव में ऐसी स्त्री की कोख से पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है। कोई पुत्र माता के गर्भ में आवे और उसके आते ही माता पर अनेक आपत्तियाँ आ जायें, पिता की बुद्धि विपरीत हो जाये, माता-पिता दोनों की बुद्धि अभक्ष्य भक्षण में लग जाये, बुरे विचारों, खोटे कार्यों में लग जाये तो समझ लेना चाहिए कि उसके गर्भ से भाग्यहीन पुत्र जन्म लेने वाला होता है।

गर्भ में जैसा पुत्र आता है माता-पिता के भाव भी वैसे ही हो जाते हैं गर्भ में सुपुत्र है धर्मात्मा है तो जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक, पूजन, गुणगान, मुनि दर्शन, आहार दान, तीर्थयात्रा आदि के श्रेष्ठ भाव होते हैं, स्वाध्याय के भाव होते हैं, बड़ों का सम्मान करने के भाव होते हैं, यदि गर्भ में वीरपुत्र है तो शत्रुओं से व कर्म शत्रुओं से विजय प्राप्त करने के भाव होते हैं यदि गर्भ में दुष्ट पुत्र है तो माता के दुष्टता के व किसी को मारने के भाव होते हैं, यदि गर्भ में दरिद्र पुत्र आता है तो माता के परिणाम भी निम्न हो जाते हैं, गलत कार्य, बुरे विचार, अभक्ष्य भोजन, फटे पुराने वस्त्र पहिनने के परिणाम होते हैं। गर्भ के समय में माता के जैसे परिणाम होते हैं उनसे ही गर्भ में आये हुये पुत्र का भाग्य जाना जा सकता है। अकृत पुण्य भाग्यहीन पुत्र था उसके जन्म लेते ही पिता की मृत्यु हो गयी, सारी सम्पत्ति समाप्त हो गयी। माँ बर्तन माँजकर पेट पालने लगी पूर्व पुण्य-पाप के फल से ऐसी ही संतान होती है, पूर्व में जैसा कर्म किया वैसा तो भोगना ही पड़ता है अकृत पुण्य के पूर्व भव के जीव ने

ढोंगी ब्रह्मचारी का रूप बनाकर जिनमंदिर से जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा तथा कीमती रत्नों को चुराकर बेच दिया तो तुरंत ही कोढ़ हो गया कष्टपूर्वक मरकर सातवें नरक गया, अनेक जन्मों तक नरक व तिर्यंचगति के दु:खों को भोगता रहा। निर्माल्य द्रव्य का भक्षण करने से अनंत भवों तक नरक व पशुगति के दु:खों को भोगना पड़ा वहाँ से निकलकर भाग्यहीन अकृत-पुण्य हुआ, करोड़पति रोड़पति हो गया, राज पुत्र भी दरिद्र पुत्र हो गया, चने भी अंगारे हो गये कर्मों की लीला बड़ी विचित्र है।

अमृत योग में क्रोध करने पर जिंदगी जहर, काल योग में अकाल मौत, उद्वेग योग में जिंदगी नरक, चल योग में भव में भ्रमण। शुभ योग में अशुभ कार्य, लाभ योग में हानि ही हानि होगी इसलिए कभी भी किसी भी समय क्रोध नहीं करना चाहिए।

***

अंध विश्वास से जाति पिछड़ जाती है।
अविश्वास से दोस्ती बिगड़ जाती है।
दुश्मनी के बीज न बोना समाज में।
ऐसे बीजों से समाज उजड़ जाती है।।

***

खानदान की खासियत धन मकान से नहीं
अच्छे संस्कारों से होती है।

25. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कई जीव एक ही समय में रोगी होते हैं और मरण को प्राप्त हो जाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! जो लोग प्रकृति के साथ खिलवाड़ करते हैं, एक साथ लाखों मूक पशुओं की हिंसा करते हैं, जंगल के जंगल एक साथ जलाकर नष्ट कर देते हैं, तथा अनेक रोगियों को देखकर उनका उपचारादि न करके हँसी करते हैं, माँस का व्यापार करते हैं ऐसे लोगों की अनुमोदना करके प्रसन्न होते हैं। यदि एक गाँव, नगर व अनेक देश राष्ट्र मिलकर सभी बुरे कार्य की सराहना करते हैं, तो एक साथ सम्पूर्ण नगर में महामारी आती है जिससे सभी लोग एक साथ रोगी हो जाते हैं तथा उपचारादि न होने पर एक साथ मरण को प्राप्त हो जाते हैं। पूर्व कृत्यों का परिणाम tit for tat के अनुसार मिला करता है। वर्तमान में कोरोना महामारी ने पूरे विश्व में अपना कोहराम मचाया है। बाल, युवा, बच्चे, अमीर, गरीब, सेठ, राजा सभी इस बीमारी के चंगुल में फँसकर मृत्यु के ग्रास बने हैं। अत: ऐसा पाप मत करो जिस कर्म के उदय से सभी एक साथ रोगी हो एक साथ मरण को प्राप्त हो। सदा सभी का भला करो, दूसरे जीवों पर दया करुणा करो तो न एक साथ रोग होगा, न एक साथ मृत्यु होगी।

अनेक जीव मिलकर निर्ग्रंथ, वीतरागी, सच्चे जैन मुनियों के शरीर को देखकर ग्लानि करते हैं, निंदा करते है, अपमान करके संतुष्ट होते हैं ऐसे जीव पाप कर्म के उदय से महापापी, दरिद्री, नीच कुलीन व रोगी होते हैं। वे मुनिराज जो परीषहों को हँसकर सहन करते हैं और चिंतन करते हुए मुनिराज शरीर को हेय समझते हैं ऐसे मुनिराज शरीर से मोह नहीं रखते, शुद्ध आत्मा को अपना समझते हैं, शरीर व आत्मा को भिन्न समझते हैं ऐसे मुनि को देखकर अनेक जीव उनकी निंदा करते हैं, अपमान करते हैं, विरोध करते हैं, आज्ञा का उल्लंघन करते हैं ऐसे अनेक जीव मरकर एक साथ रोगी हो जाते हैं सब जीवों ने एक साथ पाप का बंध किया इसलिए उनका सबका उदय भी एक साथ आता है। जैसे – श्रीपाल व उनके 700 साथियों ने पूर्व की पर्याय में मुनि की निंदा की उन्हें कोढ़ी कहा, समुद्र में डाल दिया कर्म जब उदय में आया तो श्रीपाल व 700 साथियों को एक साथ कोढ़ हुआ।

26. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! इस संसार के जीव हर्ष–विषाद व विकल्पों से युक्त देखे जाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक हर्ष विषाद होते रहते हैं, छोटे–छोटे बच्चों को देखते हैं वे छोटी–छोटी बातों में रोने लगते हैं जब पुचकार लेते हैं तो वे भूल जाते हैं आँसू टपकते रहते और हँसते रहते हैं समझाने वाले बड़े लोग सोचते हैं कि यह बच्चा कितना अच्छा है जो सब भूलकर हँसने लग गया।

हे भोले प्राणी! द्रव्य दृष्टि हो तो पर्यायों के संयोग–वियोग में हर्ष–विषाद नहीं हो सकता क्योंकि पर्याय का नियम है कि पूर्व पर्याय जाती है नई पर्याय आती है, आय के अनुसार ही व्यय होता है तथा व्यय के अनुसार ही आय होती है, आय यदि कम है तो व्यय भी कम होगा जितनी आमदनी उतना खर्च करो। द्रव्य स्वभाव को जानने से समता आती है इसलिए ज्ञानी समता भाव में रहते हैं उपयोग के परिवर्तन से भी विकल्पों की समाप्ति होती है मन को परिवर्तित करने की आवश्यकता है जो इस त्रैकालिक सत्य को जानता है वह घबराता नहीं वह समझता है यह सब पर्दे पर चल रही फिल्म के समान है। जैसे एक किताब में 300 पृष्ठ हैं पर किताब तो एक ही है जिसने मन लगाकर पढ़ लिया उसे कुछ कठिन नहीं लगता उसी प्रकार जिसने विकल्पों को छोड़कर सत्य तथ्य को जान लिया है वे लोग रोना धोना नहीं करते, वे लोग देखते हुये भी नहीं देखते, चलते हुये भी नहीं चलते, बोलते हुये भी नहीं बोलते जिस प्रकार स्लेट होती है उसमें लेमिनेशन का एक पेज होता है उसे ऊपर उठाओ तो सारा मिट जाता है उसमें पेंसिल की जरूरत नहीं, अँगुली से भी लिख सकते हैं उसी प्रकार अपने उपयोग को हटाते ही सब कुछ मिट जाता है ऐसे लोग मन में विकल्पों को कुछ रखते ही नहीं।

निर्विकल्पता में ही ध्यान, ध्यान से आत्मस्वभाव, आत्मस्वभाव से केवलज्ञान तथा केवलज्ञान से पूर्ण विकल्पों (अष्ट कर्मों) से निर्मुक्ति होती है अर्थात् निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

27. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कहीं वर्षा अधिक होती है तथा कहीं–कहीं वर्षा होती ही नहीं ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्यात्मन! जहाँ पर सर्दी (ठण्डी) अधिक होती है वहाँ पर मानसून जल्दी आता है तथा वर्षा अधिक होती है, जहाँ पर मौसम न गर्म हो न ठण्डा हो सम मौसम हो वहाँ पर बरसात न अधिक होती न कम होती, बराबर होती है तथा जहाँ पर गर्मी अधिक होती है वहाँ पर बरसात बहुत कम होती है। जिस देश में, नगर में, गाँव में धार्मिक लोग नहीं रहते, न साधु संतों का आवागमन होता हैं, जहाँ पर न देवों का सम्मान होता, न पूजा भक्ति होती, न देवालय होता, न पात्रदान होता है, जहाँ पर नीच, म्लेच्छ, पापी लोग निवास करते हैं ऐसे स्थानों पर वर्षा नहीं होती अशान्ति रहती है।

जिस देश में, नगर में, गाँव में धर्मात्मा, पुण्यवान, संत पुरुष महात्मा पुरुष जन्म लेते हैं प्रतिदिन परमात्मा की विधिपूर्वक अभिषेक पूजन भक्ति, आराधना होती है, जहाँ विधान, प्रतिष्ठाएँ, धार्मिक आयोजन होते रहते हैं, जहाँ पर साधुओं का सम्मान किया जाता है, जहाँ साधु चातुर्मास करते हैं, जहाँ पर प्रतिदिन साधुओं को आहारदान दिया जाता है, उपदेश सुना जाता है, उनकी सेवा की जाती है, जहाँ पर धर्म प्रभावना अधिक होती है, जहाँ पर साधर्मियों के साथ भी अच्छा व्यवहार किया जाता है, जहाँ पर सम्यक् आचरण होता है, जहाँ पर जिंदादिल लोग रहा करते हैं, जहाँ पर ऋषिगण जाप आदि ऋद्धि मंत्रों के द्वारा अनुष्ठान किया करते हैं, ऐसे स्थानों पर सदा काल समयानुसार वर्षा होती है जिससे खेती भी अच्छी होती है व देश धन–धान्यादि से भर जाता है। परन्तु जहाँ पर साधुओं का वास नहीं, आदर नहीं, सम्मान नहीं, जहाँ पर नीच, पापी, म्लेच्छ, हिंसक लोग रहते हैं ऐसे स्थानों पर वर्षा समय पर नहीं होती। उस देश में धन धान्यादि की समृद्धि नहीं होती, कभी भी शांति नहीं रहती।

न होते सूर्य और चंदा, न ज्योतिष मंत्र ही होते,
नहीं ब्रह्माण्ड ये होता, न भौतिक यंत्र भी होते।
समन्दर सूख ही जाता, जमाना जल चुका होता,
अगर धरती पे इन जैसे दिगम्बर संत न होते।।

28. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया आधि, व्याधि व उपाधि से रहित होती है समाधि ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जीवन में जब तक सम्यक्त्व व सत्य की उपलब्धि नहीं होगी तब तक जीव समाधि की ओर कदम नहीं बढ़ा सकता है। समाधि ही व्यक्ति को व्यक्तित्व विकास की प्रेरणा देती है, समाधि संत जीवन की साधना का उत्कृष्ट फल है। सर्व परिग्रह का त्याग करके अंत समय में चारों प्रकार के आहार जल का त्याग करके कषायों का शमन करते हुए समता परिणामों से प्राणों को छोड़ना मृत्यु का वरण करना समाधि है। समाधि संयम, तप, त्याग रुपी जीवन मंदिर का वह शिखर है जिस पर चढ़कर हमें सारा विश्व हथेली पर रखी वस्तु की तरह स्पष्ट दिखायी देता है, यदि संत, समाधि नहीं करते तो परमात्मा का रूप प्राप्त नहीं कर पाते। दुनियाँ में प्रत्येक प्राणी चाहता है कि हमारा अंतिम मरण अच्छे से हो, समाधिपूर्वक मरण हो यदि समाधि को उपलब्ध करना है तो हमें आज से ही अपने जीवन को संयम, तप, त्याग के द्वारा अपनी जिंदगी जीवन्त बनाना चाहिए। यदि कोई कुछ विचार करे कि अभी मौज कर ले, आनंद मना ले तो यह उसकी भूल है। समाधि को उपलब्ध होने के लिए सम्पूर्ण जिंदगी दाँव पर लगानी पड़ती है जीवन भर अभ्यास करना पड़ता है इसके लिये आधि, व्याधि, उपाधि, ख्याति से दूर रहकर स्वयं को पहिचान कर स्वयं में लीन होना पड़ता है।

आधि वह है जो मन को विचलित करती है, सांसारिक इच्छा भोग–विषय आदि टेंशन पैदा करती है, आधि हमेशा उपाधि के कारण होती है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्री, डॉ., वकील, आदि उपाधि है ये उपाधि इंसान को जब नहीं मिलती तो टेंशन में आ जाता है तब यह पापाचार करने लगता है, बुरे परिणामों से पापकर्म अर्जित होते हैं, फिर शरीर में उदय होने पर व्याधि उत्पन्न करते हैं जिससे अनेक रोग हो जाते हैं, केंसर, ब्लड प्रेशर आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ शरीर में हो जाती हैं तब आदमी समाधि को भूल बैठता है। अत: आधि मन में, व्याधि तन में, उपाधि वतन में तथा समाधि चेतन में होती है। समाधि वह है जो चेतन को स्वयं से मिलाकर परमात्मा का स्वरूप दिखा देती है।

29. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! यह जीव लम्बी आयु पाकर भी महादुःखी होता है? ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! जो बिना कारण वृक्षों को काटता है, छोटे-छोटे पौधों को काटता है, बिना कारण पृथ्वी को खोदता है तथा त्रस व स्थावर जीवों को दुःख पहुँचाता है ऐसा मनुष्य मरकर दीर्घ आयु पाकर के भी दुःखी होता है तथा नरकों के दुःखों को अथवा तिर्यंचों के दुःखों को भी भोगता है।

संसार में मनुष्य की लम्बी आयु का प्राप्त होना अच्छा समझते हैं पर लम्बी उम्र वाला भी दुःखी हो सकता है जब कोई रोग आ जाता है तथा व्यंतर आदि की परेशानी आ जाती है व दरिद्रता आ जाती है, भोजन भी नसीब नहीं होता, रहने को मकान, पहनने को वस्त्र, खाने को भोजन नहीं मिलता व पुत्र-पुत्री आदि के न होने के कारण अधिक उम्र वाले महादुःखी देखे जाते हैं, आयु अधिक होने के कारण इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर कमजोर हो जाता है, शक्ति क्षीण हो जाती है, सभी कार्यों से बेकार हो जाते हैं ऐसी अवस्था में यदि पुत्र, पुत्री, बहु, पत्नि निष्ठुर वचन कहते हैं, सभी तिरस्कार करते हैं, भोजन-पानी भी नहीं पाते हैं और किसी प्रकार का कोई कष्ट हो, नींद नहीं आती हो तो फिर बड़ी आयु का काटना अत्यन्त कठिन हो जाता है। लम्बी उम्र पाकर वह स्वयं दुःखी हो जाते हैं ऐसे मनुष्य कहते हैं इससे तो मर जाते तो अच्छा था ऐसे दिन देखने को नहीं मिलते। दूसरे लोग भी उसकी दीन-हीन स्थिति देखकर कहते हैं 'अब तो यह शीघ्र ही मर जाय तो अच्छा' परन्तु महादुःखी होता हुआ भी मनुष्य पूर्ण आयु किए बिना नहीं मर सकता। पूर्व में जो मनुष्य अपने बुजुर्गों को परेशान करते हैं, बीमार व रोगी की सेवा नहीं करते, लम्बी आयु वाले मनुष्यों को देखकर, वृद्ध लोग को देखकर हँसी उड़ाते हैं ऐसे मनुष्य लम्बी आयु प्राप्त करके महादुःखी होते हैं।

पूर्व में जो लम्बी आयु का अनुबंध तो कर ले पर यह जरूरी नहीं कि लम्बी आयु वाला जीव दुःखी न हो, नारकी जीवों की उत्कृष्ट उम्र 33 सागर की प्राप्त होती है पर अत्यधिक घोर दुःखों को भोगना पड़ता है तथा स्वर्ग में भी 33 सागर की लम्बी आयु का अनुबंध करके स्वर्गों के अत्यधिक सुखों को प्राप्त करता है यह जीव के अच्छे-बुरे कर्मों से पता चलता है कि दुःख की लम्बी उम्र मिली है या सुख की।

30. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! चाय पीने में मीठी लगती है जो लोग पीते है उनका मानना है चाय पीने से सिर का दर्द दूर हो जाता है व नींद अच्छी आती है पर हमारे संत महंत कहते हैं चाय मीठा जहर है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! चाय एक मीठा जहर है जिसे हम बड़े ही प्रेम से पीते है, चाय की चाह बुरी चाह है एक बार जिसे भी लत पड़ जाये तो छोड़ना अति मुश्किल हो जाता है। वो मानते हैं चाय पीने से नींद अच्छी आती है, माइग्रेन का दर्द नहीं होता पर ऐसी धारणा उचित नहीं है ऐसे लोग प्रात:काल बिस्तर से बाद में उतरते हैं पहले चाय माँगते हैं। कहते हैं Bed Tea अर्थात् बुरी चाय। बेड टी नहीं God Tea पीयो। Bed Tea अर्थात् पलंग की चाय। God Tea अर्थात् परमात्मा की चाह। **"जहाँ चाह है वहाँ राह है"** इसलिए हमें प्रात:काल चाय की नहीं परमात्मा की चाह करना चाहिए।

चाय एक मीठा जहर है जिसे हम बड़ी चुस्कियाँ लेकर प्रेम से आनंदपूर्वक पीते हैं, आजकल सभी जगह घरों में प्रत्येक व्यक्ति चाय को पंसद करता है, मेहमानों का स्वागत सत्कार चायपान के बिना अधूरा है। हमारी संस्कृति मेहमान को दूध, दही मलाई खिलाने की है चाय पिलाने की नहीं क्योंकि चाय अशुद्ध है, दूध, मलाई शुद्ध है।

जिस चाय को आप बड़े प्रेम से पीते हैं उसमें गंध प्रदान करने के लिए पशुजन्य हिंसक पदार्थ मिलाया जाता है आप अपने आपको अहिंसक भले ही कहते रहें लेकिन यदि आप चाय पीते हैं तो आप हिंसक हैं अहिंसक नहीं हैं, चाय में अनेक प्रकार के विजातीय तत्त्व मिलाये जाते हैं वह तत्त्व मानव के स्वास्थ्य के लिए अति हानिकारक व घातक सिद्ध होते हैं, चाय की इन पत्तियों को जिन रंगों से रंगा जाता है उसमें कैंसर को जन्म देने वाले रसायन पाये गये हैं।

चाय में कई प्रकार के जहर भी हैं। जैसे कैफिन, टैनिन, कैफीन थैरिन, निकोटिन आदि जो बीमारियों को जन्म देते हैं, भूख व पाचन क्रिया को कमजोर करते हैं, गैस के रोग व पेट में घाव हो जाते हैं, अनिद्रा, गठिया, नकसीर अधिक, विटामिन बी का अभाव, हृदय रोग, बालों का असमय में सफेद होना, फेफड़े खराब होना आदि। अत: चाय हमारी उम्र को कम करती है, चाय को छोड़कर दूध पियें, पूरी उम्र जिये तथा अपनी भारतीय संस्कृति चिरस्थायी बनायें।

31. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई–कोई लोग सर्वश्रेष्ठ कार्य करने पर भी लोक में निंदा के पात्र बनते हैं ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! अयशकीर्ति नामकर्म के कारण श्रेष्ठ व उत्तम कार्य करने पर भी निंदा होती है। पूर्व में जो लोग सत्कार्य करने वालों की निंदा करते हैं, धर्मकार्यों की निंदा करते हैं, जिनेन्द्र प्रभु के वचनों को झूठा कहते हैं, जो परनिंदा में लगे रहते हैं, नीच कुल के लोगों से शास्त्र व देव का स्पर्श कराते हैं, स्वयं अवमानना करते हैं, नीति विरुद्ध, धर्म विरुद्ध कार्य करते रहते हैं, जो विधान, पूजा आदि अनुष्ठानों की निंदा करते हैं ऐसे लोग परलोक में जाकर श्रेष्ठ कार्य भी करते हैं तब भी निंदा के पात्र बनते हैं उन्हें पूर्व कर्मों की सजा मिलती है तब हम कहते हैं ऐसा पूर्व में हमने क्या किया था जो ऐसी सजा मिल रही है।

जो लोग पूर्व में गुणवानों की आलोचना करते हैं, माता–पिता व बड़े जनों का आदर सम्मान व प्रशंसा नहीं करते जो छोटे लोगों के अच्छे कार्यों को देखकर खुश नहीं होते बुरी नजर से देखते हैं, जो दान, धर्म, कर्त्तव्य, सेवा करने वालों की झूठी प्रशंसा भी नहीं करते ऐसे लोग परभव में जाकर अथवा उसी भव में कर्मों के उदय आने पर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कार्य करते हैं फिर भी सभी की निंदा के पात्र बनते हैं।

सती सीता के पूर्वभव के जीव ने मुनि आर्यिका को कुशलक्षेम पूछता देखकर दोष लगाया, निंदा की, अपवाद किया, सभी लोगों को बताया मुनि–आर्यिका एकांत में बात करते हैं पता नहीं क्या कारण है यद्यपि वे दोनों साधु–साध्वी भाई–बहिन थे तब भी अन्य जगह निंदा की इसलिए सीता के भव में धोबी ने सीता पर कलंक लगाया कि रावण के घर रही शील की रक्षा कैसे की होगी तब रामचन्द्र जी ने राजा होने के कारण वन में भेज दिया था पूरे लोक में सर्वत्र निंदा फैल गयी जिस कारण सीता की अग्निपरीक्षा हुई।

अत: कहा जाता है पूर्व के अच्छे बुरे कार्य वर्तमान में दिखते हैं इसलिए वर्तमान में श्रेष्ठ कार्य करने पर भी निंदा होती है। कहा भी है जैसी करनी वैसी भरनी।

32. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कुछ लोगों से मिलने पर आत्मिक शांति मिलती है तथा कुछ लोगों के मिलने पर मन खराब होता है, पास में बैठने का भी मन नहीं होता ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! इसका मुख्य कारण है व्यक्ति का आभामण्डल और हमारा पूर्व का संबंध क्योंकि कुछ लोगों से मिलकर हमें ऐसा महसूस होता है कि इन लोगों के पास ही बैठे रहें, उन्हें ही देखते रहें, उनसे बार-बार बात करने का भी मन होता है तो समझिए उन व्यक्तियों का ओरा (आभामण्डल) आपके ओरा के समान है। विचार करें कि अरबों, करोड़ों व्यक्तियों में से हम किसी एक के प्रति ही क्यों आकर्षित हुये क्योंकि उसका और हमारा आभामण्डल समानता को लिये हुये है इसलिए उनके विचार, उनकी सोच व हमारी सोच समान है इसलिए एक दूसरे के प्रति प्रेम, स्नेह, वात्सल्य उमड़ रहा है तथा एक दूसरे के प्रति अधिक आकर्षण बढ़ रहा है।

जिन लोगों के अन्दर नकारात्मक ऊर्जा (Negative think) होती है, उनसे एक बार मिलने के पश्चात् दुबारा नहीं मिलना चाहते' यदि ऐसे लोग हमारे पास बैठ जायें जिनका आभामण्डल खराब हो, बुरे विचारों में हो, क्रोध आदि के परिणाम, राग द्वेष के परिणाम, बैर भाव के परिणामों में हो तो वह व्यक्ति जब तक नहीं जाता तब तक बेचैनी बनी रहती है। बार-बार मन में विचार आते हैं कि यह यहाँ से चला जाये क्योंकि उस समय उसका आभामण्डल मारने का था पूर्व के बैर के कारण कुलषित परिणामों के कारण खराब ओरा बन रहा था इसलिए उससे मिलकर शांति नहीं मिल रही थी, उससे दूर जाने का भाव बन रहा था अथवा भक्ति में मन नहीं लग रहा था। अतः अपनी-अपनी सोच को समान बनायें जिससे एक दूसरे का ओरा समान बने, जिससे सभी जन एक दूसरे को देखकर आकर्षित हो जिसमें सभी के अंदर आत्मिक शांति का प्रादुर्भाव हो।

सौ सुत से एक सुता अच्छी, जो जिन दीक्षा धारण करती।
जग को सन्मार्ग दिखा करके, अपने कर्मों का क्षय करती।।

33. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया कि ध्यान, सामायिक सेवा भाव से और त्याग करने से आभामण्डल प्रभावशाली होता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! यह सत्य है ध्यान, सामायिक व चिंतन से आभामण्डल प्रभावशाली होता है, आभामण्डल को ही जैन जगत में लेश्या कहा है। हमारा ओरा सबसे अधिक प्रभावशाली तब बनता है जब हम किसी की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करते हैं तथा छोटे–बड़े सभी जीवों के प्रति करुणा व दया का भाव रखते हैं ऐसा करने पर हमारे अंदर एक नई ऊर्जा का संचार होता है जो हमारे आभामंडल को प्रभावशाली बनाता है।

हमारे परिणामों के अनुसार ही आभामण्डल बनता है जैसे हमारे विचार होते हैं वैसा ही ओरा हमारे शरीर से लगभग तिगुनी दूरी तक रहता है जो भी हमारे ओरा के सम्पर्क में आता है वह उससे प्रभावित हो जाता है जैसे – जब हम अपने से मजबूत आभामण्डल वाले व्यक्ति से मिलते हैं तो उसके सामने बोलने से हमारी जबान लड़खड़ाने लगती है तथा हमारी बोली बंद हो जाती है हम समझ नहीं पाते हमें क्या बोलना है आदि अनेक घटनाएँ होती हैं।

इन सबका एक ही कारण हमारी संकल्प शक्ति कमजोर होना, संकल्प शक्ति कमजोर होने से हम अपना प्रभाव किसी पर नहीं छोड़ सकते। त्याग के परिणाम से संकल्प शक्ति मजबूत होती है जैसे किसी ने नियम लिया मैं जमीकंद नहीं खाऊँगा कितनी भी परेशानी आये तब भी नियम नहीं तोड़ूँगा, प्राण चले जाये तब भी व्रत का संकल्प पूर्वक आजीवन पालन करूँगा। ऐसा संकल्प ही मजबूत बनाता है यदि अपनी संकल्प शक्ति को मजबूत बनाना है तो हमेशा अपने आपको शक्तिशाली समझें। मैं भगवान भी बन सकता हूँ, मुझमें भगवान बनने की शक्ति है ऐसे Positive विचार से आभामण्डल मजबूत होता है। Positive थिंकिंग आने पर हमारे अंदर समता भाव, आत्म उत्थान का भाव जागृत होता है यही भाव हमारे अंदर Positive एनर्जी पैदा करता है जो शुभ लेश्या व मजबूत आभामण्डल के रूप में चारों ओर फैली रहती है वो ही हमारे शरीर से तिगुनी दूरी तक चारों ओर एक सुरक्षा कवच का कार्य करती है।

34. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी किसी की वाणी सुनकर सभी उनके पास बैठना चाहते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो मनुष्य जिनवाणी माता की सदाकाल सेवा किया करते हैं, जो मीठे-मीठे गीत गाकर परमात्मा की भक्ति किया करते हैं और जो प्रिय भाषण बोलने का हमेशा प्रयास करते हैं उनकी वाणी परलोक में जाकर कोयल के समान मिष्ट और प्रिय होती है हर शब्द हीरे मोती की तरह बहुमूल्य हैं शब्दों को पहले मिठास व मर्यादा के तराजू पर तौलिये, फिर धीरे से बोलिये वरना जीभ तो बोलकर अंदर चली जायेगी गाली हमें खानी पड़ेगी। इज्जत, सम्मान, आदर की भाषा बोलने से स्वर मीठा व सुरीला होता है।

जो हमेशा सभी से हित, मित, प्रिय वचन बोलते हैं सभी लोग उसके पास बैठकर सुनना चाहते हैं जैसे कोई भगवान की पूजा, भक्ति मधुर आवाज में तन्मय होकर करते हैं उनकी आवाज सुनकर के जो भी दर्शन करने आते हैं वे सभी कर्णप्रिय, मधुर आवाज सुनकर बैठ जाते हैं जैसे-कोयल के गान को सुनकर बसंत ऋतु में आम की बौरें भी आकर्षित होने लगती हैं। सुस्वर नामकर्म के कारण आवाज मधुर, व स्वर कोयल की तरह सुरीला होता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाता है, व्यवहार में विनम्रता व बोली में मधुरता (शरबत की तरह) लाता है उसके पास सभी बैठना चाहते हैं तथा सभी उसकी वाणी का रसपान करके मन मुग्ध होते हैं।

जो भगवान की भक्ति, गुणगान, स्तुति अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर स्तोत्रों के द्वारा करता है। अनेक प्रकार की सुंदर गद्य, पद्यमय कविता, भजन स्वयं लिखकर जिनेन्द्र प्रभु का गुणगान करता है तथा जो जिनेन्द्र प्रभु की वाणी का पठन-पाठन करता है व मंदिरों में लिखकर, छपवाकर समर्पित करता है तथा मुनि, आर्यिका, क्षु. क्षुल्लिका इन चारों प्रकार के संघ को समर्पण करता है व गुरुजनों को भेंट करता है, शास्त्रों पर सुंदर कवर चढ़ाकर रखता है, पुराने शास्त्रों की सुरक्षा करता है, अनेक जीवों के अध्ययन हेतु पाठन की व्यवस्था करता है व प्रेरणा देता है ऐसे लोग परलोक में जाकर अत्यन्त मिष्ट स्वर को प्राप्त करते हैं।

35. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया नम्रता, विनम्रता, समर्पण भाव, श्रद्धाभाव जहाँ है वहीं ईश्वर मिलता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! विनम्रता से विवेक का जन्म होता है और विवेक से सत्य का सत्य में प्रभु का निवास है और प्रभुता वहीं है जहाँ जीव में विवेक और विनम्रता है, विनम्रता को ग्लिसरीन की तरह अपनाइये जिससे मन मुटाव फटे हुये संबंधों की त्वचा पुनः स्वस्थ, सुंदर व सुकोमल बने यदि आप ईश्वर को चाहते हैं तो अपना व्यवहार सर्वश्रेष्ठ बनायें, अच्छा और विनम्र व्यवहार ही परमात्मा के द्वार पर लाकर मिलन करायेगा।

जीवन में झुकना सीखिये क्योंकि जो झुकता है उसे सब कुछ मिलता है पर जो अकड़ता है, अहंकार में खड़ा रहता है वह टूट जाता है छोटे-छोटे पौधे विनम्रता के कारण आँधी तूफान आने पर झुक जाते हैं पर टूटते नहीं हैं लेकिन जो बड़े-बड़े वृक्ष अहंकार में खड़े रहते हैं एक हवा के झोंके के साथ सम्पूर्ण वृक्ष टूटकर धराशायी हो जाते हैं इसलिए तो कहा है–

अकड़ खास मुर्दे की पहिचान है, झुकता वही है जिसके अंदर जान है।

जो झुकता है वही भरता है – नल के नीचे घड़ा रख दो तो घड़ा भर जाता है क्योंकि घड़ा नल के नीचे झुका हुआ है इसलिए पानी से भरा हुआ है। इसी प्रकार जो शिष्य गुरु चरणों में झुकता है लघु व सरल बनकर उनकी आज्ञा व अनुशासन में रहता है वही शिष्य एक दिन गुरु के समान बन जाता है तथा जो भक्त भगवान की भक्ति व गुरु की सेवा विनम्र भाव से व समर्पित हृदय से श्रद्धापूर्वक करता है वह एक दिन प्रभु जैसे गुणों को प्राप्त करके स्वयं ही प्रभु बन जाता है इसलिए तो कहा है–

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभुईश।
चींटी शक्कर ले चली, हाथी के सिर धूर।।

अर्थात् लघु बनिये, सरल बनिये, विनम्र बनिये जो लकड़ी सीधी होती है वह राष्ट्रध्वज को लहराने का गौरव प्राप्त करती है वैसे ही जो लघु होता है, विनम्र होता है उसे ही प्रभु बनने का गौरव प्राप्त होता है। अतः नम्रता, विनम्रता, लघुता को जीवन में जीने के लिए कड़वी बात का और मिठास से जवाब दीजिये, क्रोध आने पर चुप रहिये तभी जीवन लघु, कोमल व विनम्र होगा और प्रभुता की प्राप्ति होगी।

36. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई कोई जीव इस संसार में अन्धे होते हैं व किसी–किसी की छोटी उम्र में ही आँखें कमजोर हो जाती हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! दर्शन पर आवरण डालने पर, नेत्रहीन की निंदा करने पर, अधिक टी.वी. देखने से, कम्प्यूटर पर काम करने से, मोबाइल का अधिक उपयोग करने से, कम रौशनी में अध्ययन करने से, अन्धे की सेवा न करने से अथवा कोई नेत्र से कमजोर है उस पर ध्यान न देने से अथवा परमात्मा व गुरुओं के दर्शन न करने से अथवा पूर्वकर्मोदय के कारण व्यक्ति अन्धा होता है या नेत्र कमजोर हो जाते हैं आँख जाने पर जीवन का कोई मूल्य नहीं होता तथा आँख कमजोर होने पर चश्में का जीवन पर्यन्त सहारा लेना पड़ता है।

जो लोग बलपूर्वक दूसरे के नेत्रों को फोड़ देते हैं तथा जो दूसरे की सुंदर स्त्रियों का हरण कर लेते हैं व धन आदि को चुराते हैं व मिथ्या–अभिमान से अन्धों का अपमान करते हैं ऐसे लोग अगले जन्म में अन्धे होते हैं।

मानव शरीर में मुख व मस्तिष्क उत्तम अंग हैं उस मुख में दो नेत्र सर्वोत्तम कहलाते हैं। नेत्रों के बिना न श्रावक व्रतों को ठीक तरह पालन कर पाते, न प्रभु व गुरु का दर्शन कर सकते हैं, न ही मुनिव्रत को धारण कर सकते, न जीवों की रक्षा कर सकते हैं, शास्त्र स्वाध्याय, अभिषेक, पूजन, तीर्थ वंदना आदि नहीं कर सकते, प्रभु व गुरुओं के दर्शन में विघ्न डालने से भी अन्धे होते हैं– जैसे कोई दर्शन करने आया, मंदिर के दरवाजे बंद कर देना, कोई जा रहा है मना कर देना, क्या होता है दर्शन करने से, दर्शन में आवरण डालना भी अन्धेपन में कारण है ऐसे ही पापकर्म के उदय से यह जीव अन्धा होता है।

अल्प आयु में प्रायः आँख कमजोर हो जाती है क्योंकि बच्चा जब पढ़ने के साथ स्मरण करने लगता है तो एक साथ दो काम करता है तो आँखों पर असर पड़ता है, एक साथ जानने व देखने से आँख कमजोर व दिमाग कमजोर होता है। भगवान एक साथ जानते व देखते हैं क्योंकि उन्होंने ज्ञानावरण,

दर्शनावरण आदि कर्मों को नष्ट किया है हम छद्मस्थ हैं पहले देखते हैं फिर जानते हैं, पिक्चर पहले देखते हैं फिर जानते हैं इसलिए हम छद्मस्थों को एक साथ दो कर्म नहीं करना चाहिए जिससे आँख व दिमाग कमजोर हो।

अत: प्रतिदिन एकटक होकर परमात्मा के दर्शन करने से नेत्रों की ज्योति वापस आ जाती है व वंदना आदि करने से, गुरु के दर्शन करने से नेत्रों की ज्योति वापिस आ जाती है।

मिथ्यात्व हटाने के लिए सम्यक्त्व चाहिए।
ज्ञान बढ़ाने के लिए गुरु का उपदेश चाहिए।
आत्मा का दर्शन गृहस्थ को नहीं हो सकता।
आत्मा के दर्शन के लिए दिगम्बर मुद्रा चाहिए।

***

* **खूब परिश्रम करने से, आलस्य को छोड़ने से, कम भोजन करने से, ज्ञानी जनों की संगति से, चिंतन-मनन करने से, ब्रह्मचर्य का पालन करने से विद्याभाषी बनते हैं।**

***

* **शुद्ध भोजन से शरीर का और संयम तप से आत्मा का बल बलिष्ठ होता है।**

37. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया बाह्य दो नेत्रों से सत्य नहीं दिखता सत्य देखने के लिए आगम नेत्र (तीसरी आँख) की आवश्यकता होती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! तीसरी आँख दिव्य दृष्टि ही नहीं द्रव्य दृष्टि भी है, दोनों आँखें पर्यायों को साक्षात्कार कर पाती हैं। दिव्य व द्रव्य दृष्टि में अनंत संसार नजर आता है दुनियाँ में एक सत्य है जो अमिट है, अमिट सत्य ही परम है, अविनाशी है मिटता हुआ सत्य पत्थर की आँखों के लिए है।

सत्य देखने के लिए चर्म की दो आँखें ही नहीं परमात्मा की एक आँख होना जरूरी है बाहर की आँखें वस्तु को देख सकती हैं परन्तु वस्तु के तत्त्व को नहीं, तत्त्व की हर जगह कीमत होती है। तीसरी आँख को खोलने के लिए बुद्ध बनकर नहीं बुद्धु बनकर जीना पड़ता है तीसरी आँख विवेक की आँख है जो सत्य ज्ञान की ज्योति से प्रादुर्भूत होती है।

अत: हम सभी अमिट सत्य को पाने के लिए अपनी शक्ति का सदुपयोग करें तभी हम तीसरी आँख को खोलकर वास्तविक सत्य से परिचित होकर अपना जीवन सत्यमय कर सकते हैं, दो नेत्रों के माध्यम से हम दुनियाँ की सभी बहिरंग वस्तुओं को देख सकते हैं जिसके कारण अनेक प्रकार के राग, द्वेष, मोह, कषाय, मिथ्यात्व, हर्ष, विषाद के परिणाम व अनेक विकल्पों का जन्म होता है। नेत्र को दृष्टि भी कहा है अर्थात् जैसी हमारी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि दिखने लगती है। जैसे यदि पुरुषों की दृष्टि यदि किसी स्त्री पर पड़ती है तो कामवासना के विचार उत्पन्न होने लगते हैं, स्त्री की दृष्टि यदि पुरुष पर पड़े तो वैसे ही विचार होते हैं, संत की ओर दृष्टि पड़े तो संत बनने के विचार होने लगते हैं। कहने का तात्पर्य है आँखों को जिस ओर मोड़ते हैं वैसा ही नजर आता है।

बाहर की ये दो आँखें बाहर की वस्तु देख पाती हैं अन्तरंग वस्तु को नहीं देख पाती, अन्तरंग आत्मा को देखने के लिए आगम का ज्ञान अति आवश्यक है। आगम के ज्ञान से हित, अहित, सत्य, असत्य, गुण, दोष का पता चलता

है, सही सोच बनती है सही आचरण, संस्कार व सम्यक्त्व पैदा होता है, सम्यक्त्व से श्रुत ज्ञान होता है, श्रुत ज्ञान से ध्यान होता है जिससे सम्पूर्ण द्वादशांग के पाठी होते हैं, केवलज्ञान की ज्योति जलने लगती है, सम्पूर्ण ज्ञान ही मोक्षपद को प्राप्त कराता है।

इसलिए आगम को तीसरा नेत्र कहा है, तीसरा नेत्र खुलने पर ही बुद्धि व विवेक का विकास होता है, ध्यान के द्वारा, तप के द्वारा तीसरा नेत्र पूर्ण खुल जाता है तभी सम्पूर्ण द्वादशांग के पाठी का केवलज्ञान रूपी दीप जल जाता है तथा अनंत ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

वो आँखें हैं नहीं आँखें खुदा जिसमें न दिखता हो।
वो दिल काबिल नहीं जिसमें खुदा कुछ भी न लिखता हो।
नजर जिस पर न हो रब की नहीं वो काम अच्छा है।
उसी को चाहता दिल से खुदा दिल में जो रखता हो।

***

सफेद मन के बनो काले मन के नहीं क्योंकि काले रंग पर कोई भी रंग नहीं चढ़ता किंतु सफेद रंग पर हर एक रंग चढ़ जाता है। अतः सबसे मिलने वाले बनो।

***

अहंकार साँप है जो 99 से 9 पर पटकता है।
विनम्रता सीढ़ी है जो 8 से 98 पर ले जाती है।।

38. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया विश्वास से दुनियाँ चलती है व श्रद्धा से धर्म ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! हमें विश्वास है कि भोजन से ही क्षुधा शमन होगी इसलिये भोजन करते हैं, पानी से ही प्यास बुझेगी इसलिये पानी पीते हैं। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु विश्वास पर ही टिकी हुई है। विश्वास है कि ऑक्सीजन से हमारी साँसें चलती हैं विश्वास वह नींव का पत्थर है जिस पर खड़े मकान कभी ढहते नहीं हैं, चाहे जितनी मंजिलें खड़ी करते जायें उनका बाल भी बाँका नहीं होगा।

जीवन के प्रत्येक रिश्ते में विश्वास अनिवार्य है। यदि कोई रिश्ता हो और विश्वास न हो तो रिश्ता अधिक समय तक नहीं चलेगा जिस प्रकार यदि बीज न बोया जाये तो फूल, फल, पत्ते व जड़ मजबूत नहीं होगी वृक्ष रूप में फलीभूत नहीं होगा उसी प्रकार हमारे जीवन में विश्वास नहीं हो तो कितना भी घनिष्ठ सम्बन्ध हो वह अधिक समय तक नहीं चलता। चाहे भाई–भाई का सम्बन्ध हो, माँ–बेटे का, पिता–पुत्र का, सास–बहू का, माँ–बेटी का, भाई–बहिन का, मित्र–मित्र का, पति–पत्नि का कितना भी मजबूत रिश्ता हो पर विश्वास के बिना कोई भी रिश्ता अधिक देर तक नहीं टिकता, विश्वास है तो सब कुछ है जिस दिन विश्वास चला जाता है रिश्तों में खटास आने लगती हैं साथ में वास करने वालों के विचारों में विष घुल जाता है क्योंकि विश्वास वह शक्ति है जो सम्बन्धों में मिठास लाती है। जैसे विश्वास है पानी में नींबू शक्कर मिलाने पर शिकंजी बन जाती है जो गर्मी को शांत करती है। पशु पक्षियों के भी सारे रिश्ते विश्वास पर टिके हैं। मानव जीवन विश्वास का पुतला कहा जाता है यदि विश्वास नहीं तो माँ के हाथ का बना भोजन भी नहीं कर सकते।

बाहर की शंका, भ्रान्ति, कानाफूसी विश्वास के दीपक को बुझा देती है। इसलिये अपने विश्वास रूपी दीपक पर विवेक की चिमनी अवश्य ढक लें, क्योंकि विवेक रूपी चिमनी से ढका विश्वास का दीपक विपत्ति रूपी तूफानी हवाओं के आने पर भी कभी बुझता नहीं है। संसार में हर कार्य विश्वास पर होता है पर मोक्षमार्ग में श्रद्धा की बात करते हैं। शिष्य की गुरु पर, भक्त की भगवान पर अटूट श्रद्धा होती है इसी श्रद्धा गुण के कारण भक्त भी एक दिन सम्यक्त्व को प्राप्त करके भगवान् बन जाता है। अतः विश्वास में दुनियाँ तो चल सकती है पर धर्म नहीं।

39. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है व्यक्ति का अहं वहम् और नकारात्मक सोच जीवन को नरक बनाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – Negative think is hell - हमारी नकारात्मक सोच ही नरक है। नकारात्मक (Negative thought) विपरीतता का दिग्दर्शक है जहाँ हमारे विचार विपरीत दिशा में गमन करते हैं तो हमारी सोच नकारात्मक हो जाती है, हम जिस दिशा में गमन कर रहे हैं यदि तूफानी हवाएँ उससे विपरीत दिशा में चले तो हम अपने मार्ग पर गतिशील नहीं हो पाते हैं क्योंकि तूफानी हवा बाधा खड़ी कर रही है, नकारात्मक विचार वाला व्यक्ति स्वयं काँटे बिछाता है जब वे काँटे चुभते हैं तो चीखता–चिल्लाता है तथा अपना दोष पर के माथे पर रख देता है, नकारात्मक सोच वाला व्यक्ति हमेशा गलत विचार करता है तथा दूसरों को भी गलत सलाह देता है, सदा विपरीत ही सोचता है, किसी के समझाने पर भी नहीं समझता, हमेशा तनाव में रहता है, कभी प्रसन्न नहीं रहता, मन की शांति भंग हो जाती है, बीमारियाँ हो जाती हैं, असंतोष बढ़ जाता है, नकारात्मक सोच से असमय में अकाल मौत हो जाती है, तथा नकारात्मक सोच से जीवन नरक बनता है, परिवार की शांति भंग हो जाती है, रिश्ते टूटने लगते हैं, प्रेम, विश्वास, संगठन, एकता, मधुरता समाप्त होने लगती है, प्रात:कालीन सुप्रभात भी महाभारत से होता है तथा दोपहर, शाम व रात में भी मारधाड़ होती रहती है ऐसा लगता है जैसे साक्षात् नरक में आ गये हों इसलिये घर को नरक कह दिया जाता है।

ध्यान रखें–पैर की मोच और छोटी सोच कभी भी जीवन में प्रसन्नता नहीं आने देती। अपनों के बीच अहम् और अपनों में वहम् दोनों ही बुरी आदत हैं। अगर बुरी आदत समय पर न बदली जाये तो वही बुरी आदत हमारा समय बदल देती है अर्थात् खुशहाल जीवन को नरक बना देती है। एक बात हमें हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि–

जरा सी रंजिश पर न छोड़ किसी अपने का दामन।
जिदंगी बीत जाती है अपनों को अपना बनाने में।।

अर्थात् ऐसी संगत से भी किनारा करना चाहिए जिससे हमारे मन में नकारात्मक सोच अहं और वहम् की उत्पत्ति हो कहा है–

संग राजा का न करो जाने कब जंजीर पहना दे।
संग संत का करो न जाने कब महावीर से मिला दे।।

40. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई जीव पूर्ण आंगोपांग से सहित होते हैं तथा किन्हीं जीवों के आंगोपांग हीनाधिक होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो लोग हमेशा अपनी आत्मा के समान अन्य जीवों के अंग व उपांगों को पुष्ट करने के लिए जो सदाकाल प्रयत्न करता है, अंग उपांग से रहित जीवों की सेवा करता है, उन्हें खुश करता है, आनंदित करता है ऐसा जीव परलोक में जाकर सभी अंग और उपांगों से सुशोभित होता है, जो अपने अंग व उपांगों का धर्म कार्यों में प्रयोग करता है हाथों से निरन्तर अभिषेक, शांतिधारा, पूजन करता है, संतों को आहारदान देता है, नेत्रों से प्रभु व गुरु का दर्शन व वंदन करता है, जुवान से प्रभु के व गुरुओं के गीत गाता है, गुणगान करता है, पैरों से प्रभु के दर, गुरु के दर व तीर्थ वंदना के लिए जाता है, दिमाग से हमेशा ज्ञान की बात करता है, धर्म की बात करता है, मन में हमेशा अपनी आत्मा का ध्यान करता है, परमात्मा का स्मरण करता है तथा अन्य अंग-उपांगों से भी सदाकाल अच्छे-अच्छे कार्य करता है, ऐसे लोग परभव में व उसी भव में भी पुण्य के योग से व अच्छे कर्मों के फल से अंग व उपांगों से सहित होते हैं।

इसके विपरीत जो दूसरों को दुःख दिया करते हैं वे स्वयं दुःखी होते हैं तथा दूसरों को भी दुःखी करते हैं तथा जो दूसरों के अंग-उपांगों को काटते हैं तथा मुँह में हँसी-हँसी में कपड़ा आदि लगा देते हैं अथवा कान नाक छेदन-भेदन कर देते हैं, जो काने, बहरे, लूले, लँगड़े हैं उन्हें देखकर संतुष्ट होते हैं अथवा उनका मजाक करते हैं, हँसी करते हैं वे भविष्य में आंगोंपांग से हीन होते हैं। तब विचार करते हैं ऐसा कौन सा कर्म किया था जिससे यह सजा मिल रही है तब कर्म सिद्धान्त कहता है जैसे कर्म करोगे वैसा फल जीव को भोगना पड़ता है। (जैसी करनी वैसी भरनी)

अतः जो दूसरों के हीन अंगोपांग देखकर करुणा का भाव रखते हैं तथा ठीक करने का विचार बनाते हैं, दूसरों का लालन-पालन करते हैं, छेदन-भेदन को रोकते हैं वे पुरुष परलोक में जाकर अपने अंग उपांगों को पूर्ण रूप से प्राप्त करते हैं तथा सभी अंग उपांग से पूर्ण होते हैं, बलिष्ठ व सुंदर होते हैं।

41. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! पत्नि को गृहलक्ष्मी व धर्मपत्नि कहा जाता है लेकिन पुरुष को धर्मपति नहीं कहते। ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! श्रद्धा, विनय, समर्पण ये धर्म के रुप हैं ओर एक स्त्री में यह गुण विद्यमान होते हैं इन्हीं गुणों के कारण वह दो कुलों की परम्परा को खुशी–खुशी निभाती है। पत्नि को विनय, समर्पण, लघुता गुणों के कारण गृहलक्ष्मी व धर्मपत्नि कहा जाता है, पति अहंकारी होता है, सम्मान चाहता है, स्वभाव में कठोर होता है इसलिए पति को धर्मपति नहीं कहते, पत्नि घर में निवास करती, घर के कार्य व्यवस्थित करती, परिवार के सभी लोगों को खुश करके रखती है, सभी के भोजन के बाद भोजन करती, सभी के सोने के बाद सोती, सास, ससुर, पति की सेवा करती, बड़ों की आज्ञा का पालन करती है इसलिये पत्नि को गृहलक्ष्मी कहा जाता है।

पति–पत्नि भी परस्पर में कर्त्तव्यों का निर्वाह करें, बिना कर्त्तव्य का जीवन सुवास रहित पुष्प की तरह होता है। सुभद्रा जब चक्रवर्ती भरत को भोजन परोस रही थी तब खीर गरम थी जिसे वह ठण्डा करने लगी भरत ध्यानमग्न हो गये, पहले भरत सुभद्रा को देख रहे थे, सुभद्रा कितनी तल्लीनता से खीर ठण्डी कर रही थी फिर सुभद्रा भरत की ध्यान मुद्रा को निहारती है कि स्वामी भोजन की थाली पर बैठ किसका ध्यान कर रहे हैं सुभद्रा बड़े स्नेह से खीर परोसती है उस समय माता की तरह है। नीतिकारों ने कहा है जब पति विपत्ति में हो तो पत्नि मंत्री बनकर उचित सलाह देती है, वचनों में दास वृत्ति होती है जब भोजन परोसे तो माता बन जाती है क्योंकि माता के हाथ का रुखा सूखा भोजन भी अमृत तुल्य लगता है, पत्नि पति को भोजन कराते समय ऐसे हितकारी वचन बोले जिससे पति–पत्नि में हमेशा मधुर सम्बन्ध बने रहें।

गृहलक्ष्मी प्रसन्न है तो धनलक्ष्मी भी प्रसन्न है, यदि गृहलक्ष्मी रुष्ट है तो धन लक्ष्मक्ष्मी भी रुष्ट है जिससे विपत्तियाँ आती है। पति को चाहिए पत्नि के धार्मिक कार्यों में सहयोग करें, पत्नि मात्र पत्नि ही नहीं धर्मपत्नि है वह चाहती

है कि घर का हर सदस्य धार्मिक हो, इसलिए साधु-सन्तों को माध्यम बनाती है, पति को मंदिर ले जाती है, अभिषेक पूजन आदि स्वयं भी करती व पति को भी धर्म कार्य में लगाती है, परिवार के सभी लोगों को धर्म मार्ग में लगाती है इसलिये पत्नि को धर्मपत्नि कहा जाता है। पति को नहीं क्योंकि पति में इस प्रकार के धार्मिक गुण व प्रेम वात्सल्य, समर्पण के भाव नहीं होते इसलिए पति को धर्मपत्नि नहीं कहते।

आज नहीं दिख पाया है तो, दिख जायेगा तुझको कल।
अच्छे कर्म का अच्छा फल है, बुरे कर्म का बुरा है फल।।

***

न आपस में जो रमते हैं, न रखते प्रेम को दिल में,
नहीं ब्राह्माण्ड देखा है रहा करते है जो बिल में
सभी कुछ प्राप्त करने की रखें ख्वाहिश मरें उसमें,
तो ऐसे लोग अगले जन्म जाते नर्क के बिल में।

42. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! वीतरागता से निर्विकल्प समाधि होती है सरागता में नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! वीतराग नकारात्मक शब्द है जिसके पास राग नहीं वह वीतरागी है। चेतन व अचेतन द्रव्यों में मेरा–तेरा, अच्छा–बुरा आदि संकल्प–विकल्प संसारी जीवों के होते हैं उसी के माध्यम से राग–द्वेष होते हैं और राग–द्वेष दूर होते ही निर्विकल्प दशा आती है यही अध्यात्म है।

मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं अमीर हूँ, मैं गरीब हूँ इत्यादि कुछ न कुछ संकल्प–विकल्प चलते रहते हैं इन विकल्पों के कारण ऊपर नहीं उठ सकते, ये विकल्प भी परिग्रह हैं, कुछ लोग आते हैं महाराज आशीर्वाद दे दो मेरी दुकान चलने लगे और दूसरी बात यह है कि दूसरे की दुकान न चले यदि दूसरे की चलने लगेगी तो हमें विकल्प होगा। जब तक अहंकार, ममकार रूप विकार रहेंगे तब तक कभी भी निर्विकल्पता नहीं होगी वीतरागी बने बिना आर्त्त–रौद्र परिणाम नहीं छूटते, राग–द्वेष–मोह के हेतु से संकल्प–विकल्प होते हैं, वीतरागी को नहीं होते।

वीतरागी हुये बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होती यही आत्मा का स्वरूप है भेद विज्ञान तो बहुत लोगों को हो जाता है पर वीतराग ज्ञान विरलों को ही होता है, जब सब दोषों का अभाव हो जाता है तभी वीतराग विशेषण लगता है।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परणति न जाय।
रागादि प्रकट ये दुख दैन तिनही को सेवत गिनत चैन।।

आत्मा का हितकारी वीतराग विज्ञान है, वीतरागता कारण है और निर्विकल्प समाधि कार्यरूप है ज्ञानार्णव में भी यही कहा है– पहले वीतरागी हो जाओ फिर एकाग्रता तो निश्चय से आ ही जायेगी जैसे ही एकाग्रता होगी वैसे ही निर्विकल्प समाधि भी संभव है।

वीतराग भाव, वीतराग क्रिया से ही निर्विकल्प समाधि संभव है, सराग के भाव, राग–द्वेष की क्रिया से निर्विकल्प समाधि नहीं होती है राग सहित क्रिया से कभी भी निर्विकल्पता संभव नहीं है।

43. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! परस्पर में बहुत से लोगों में तो शांति बनी रहती है तथा बहुत से लोगों में अशांति रहती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो लोग वीतराग निर्ग्रंथ गुरुओं के उपदेश रूपी अमृत के पान से सदाकाल तृप्त रहते हैं तथा जो अपने आत्मा का कल्याण करने में तथा अन्य जीवों के कल्याण करने में सदाकाल चतुर रहते हैं, जिनका स्वभाव शांत चित्त है, जो परस्पर में कलह नहीं करते, जो संतोष धारण करते हैं ऐसे मोक्ष की इच्छा करने वाले जीवों को इस लोक में शांति रहती है तथा परलोक में भी सदाकाल शांति रहती है।

जो आत्मा के स्वभाव को समझते हैं वह कहीं भी रहे चाहे घर में, दुकान में, मंदिर में तथा जंगल में शांत रहते हैं ऐसे लोग दूसरों को भी समझाकर शांत कर देते हैं, ऐसे जीव पंचपरमेष्ठी की भक्ति किया करते हैं, सदाकाल उनकी पूजा, अर्चना, स्तुति करते हैं, गुरुओं की आज्ञा का पालन करते हैं, उनके उपदेश से स्वयं को तृप्त करते हैं, अधिकांश समय धार्मिक कार्य करते रहते हैं।

ऐसे लोग आकुलता नहीं करते, निराकुलता पूर्वक जीवन जीना चाहते हैं क्योंकि निराकुलता में ही शांति है ऐसे लोग विकल्पों का त्याग करके निर्विकल्प होना चाहते हैं, जो जितना विकल्प में रहता है उतना अशांत रहता है इसलिए शांत होने के लिए बहिरंग व अन्तरंग विकल्पों को छोड़ देना चाहिए ऐसे लोग श्रेष्ठ लोगों की, साधु-संतों की संगति में रहते हैं उनके रूप को देखकर उन जैसा ही बनने का प्रयास करके शांतपने को प्राप्त होते हैं। शांति अन्तरंग गुणों से आती है नाम आदि से नहीं। एक व्यक्ति का नाम था शांतिलाल पर नाम के अनुसार काम नहीं था बात-बात पर गुस्सा होना, स्वभाव बना लिया था इसलिए नाम मात्र से कोई महान् नहीं होता, नाम मात्र से कोई शांत नहीं होता, अन्तरंग भावों से, विचारों से शांति प्रकट होती है इसलिए हमेशा आपस में मेलजोल बनाकर रहें जिससे परस्पर में शांति बनी रहे। जो शांत है वही संत है, महंत है, भावी अरहंत व सिद्ध है भगवान बनने के लिए शांत रहिये यही प्रथम सूत्र है शांति का।

44. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! माँ जिनवाणी कहती है कि– सबसे अच्छा दिन आज है तथा सबसे अच्छा समय अभी का है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! सबसे अच्छा दिन आज का है क्योंकि आज का दिन बाकी सभी दिनों से अलग है, क्योंकि इसे हमने पहले कभी नहीं जिया और न आज के अलावा जी सकते हैं बीता हुआ कल आज की यादें हैं और आने वाला कल आज का सपना हम सभी आज का दिन ऐसे जियें जैसा आज तक पहले कभी नहीं जिया हो। प्राणीमात्र के प्रति दया करुणा का भाव, मित्रता का भाव तथा दिन का प्रारंभ व अंत परमात्मा व गुरुओं के नाम से हो तथा हम भी प्रभु जैसे गुणों को प्राप्त करें ऐसी सकारात्मक सोच से ही सबसे अच्छे दिन का प्रारम्भ होता है। आज का अच्छा दिन ऐसा हो (न भूतो न भविष्यति) न पूर्व में ऐसा दिन आया न भविष्य में आयेगा, हर रोज अच्छा दिन बनायें।

सबसे अच्छा समय अभी का है जो वर्तमान में चल रहा है उस समय को ही सबसे सुंदर समय बनाये ऐसा विचार करें आने वाला समय कैसा होगा, दु:ख का या सुख का इसलिये वर्तमान समय में दिन में जो काम करने का भाव जगे उसे शुरू करने का सबसे अच्छा मुहूर्त वही समय होता है, हमारा भाग्य न अतीत में है, न भविष्य में। हमारा कर्त्तव्य, भाग्य-पुरुषार्थ, सम्मान-पुरस्कार तीनों ही वर्तमान क्षण में मौजूद है, हम प्रभु दरबार की तरफ कदम बढ़ाएँ, गुरु के आदेश व आज्ञा का हर समय पालन करें, हर समय सबसे अच्छा व सबसे बढ़िया दिन होगा क्योंकि हर समय प्रभु व गुरु का आशीर्वाद हमारे साथ है। कहा भी है– गुरु का आशीर्वाद सम्पदा की तिजोरी है। Blassing are precepter value of wealth.

अत: हम सभी को प्रतिदिन प्रतिसमय ऐसे अच्छे कार्य करना चाहिए जिन कार्यों को करने से प्रत्येक आने वाला दिन व प्रत्येक आने वाला समय सबसे अच्छा व सबसे सुंदर बन सके।

जिस तरह वक्त का खास होना जरूरी है
उसी तरह खास के लिए वक्त देना जरूरी है।
जीवन को खुशहाल बनाओ कुछ नजरअंदाज से,
कुछ नये अंदाज से।

45. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुनते हैं कि–मानव के जीवन में सबसे बड़ी जरूरत ज्ञान है तथा सबसे बड़ी भूल समय का अपव्यय है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मानव के जीवन में सबसे बड़ी जरूरत ज्ञान है, ज्ञान के बिना मानव अज्ञानी है, मूर्ख है, ज्ञान से बढ़कर कोई धन नहीं, ज्ञान ही मानव जीवन का सार है, धन भी ज्ञान के द्वार से ही आता है जीवन भर का कमाया धन परभव में साथ नहीं जाता, अगर कुछ साथ जाता है तो जीवनभर की पूँजी ज्ञान धन ही परभव में साथ जाता है। पूर्व के पढ़े हुये ज्ञान के कारण अन्य भवों में स्मरण शक्ति तथा जल्दी याद करने की बुद्धि प्राप्त होती है। सूरज केवल दिन में उजाला देता है तथा चाँद सिर्फ रात में पर ज्ञान स्वयं ही हमेशा प्रकाशमान है जो दिन रात पूरे जीवन को प्रकाशित करता है। जो ज्ञानी की शरण में जाता है वह भी प्रकाशमान हो जाता है इसलिये सबसे बड़ा साथी, सबसे बड़ा धन, सबसे बड़ी जरूरत ज्ञान ही है।

जो समय की कीमत नहीं करता समय भी उसकी कीमत नहीं करता। मानव की सबसे बड़ी भूल है समय का अपव्यय इससे जीवन का अपव्यय होता है, समय बहुत कीमती है, हमारे पास जितना समय है उतना ही समय संतों के पास है आपके पास भी 24 घण्टे का समय है, संतों के पास भी 24 घण्टे का समय है 1 मिनिट का समय भी संत अपव्यय नहीं करते। यदि संत अन्तर्मुहूर्त के लिए ध्यान योग साधना में बैठ जायें तो अपनी सबसे बड़ी जरूरत, सबसे बड़ा धन सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके सभी कर्म प्रकृतियों की निर्जरा करके सिद्धत्व को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् थोड़े से समय का सदुपयोग करके सबसे उच्च पद को प्राप्त कर लेते हैं और हम लोग उसी समय का दुरुपयोग करके भोगादिक कार्य करके, हिंसा आदि पाप कार्यों को करके सबसे नीचे नरक, निगोद के दुःखों को भोगते रहते हैं।

अतः मानव की सबसे बड़ी भूल है समय का अपव्यय। भूल सुधारना है तो समय को पहचानो, जानो, समझो एक समय की कीमत समझकर हर समय को अच्छा बनाओ, हर समय को यादगार बनाओ, व्यर्थ में समय बरबाद मत करो क्योंकि कहा है जो समय को बर्बाद करता है समय उसे बर्बाद कर देता है इसलिए प्रभु आराधना व गुरुओं की सेवा में समय का सदुपयोग करो जिससे परभव भी सुंदर हो और आने वाला कल भी सुनहरा हो।

46. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया सबसे बुरी भावना ईर्ष्या व दूसरों को नीचा गिराने की होती है तथा सबसे अच्छी भावना दूसरों की भलाई करना है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मानव अनेक प्रकार की भावनाएँ करता है। भोजन की, विवाह की, पुत्र-पुत्री की, नौकरी की, वस्तुओं की, व्यापार की, धन की, विद्या प्राप्त करने की आदि अनेक-अनेक भावनाओं को करता हैं। इन सभी भावनाओं में सबसे अच्छी भावना है दूसरों की भलाई, दूसरों की सेवा कहा भी है, **दूध का सार मलाई, इंसान का सार पढ़ाई तथा जीवन का सार भलाई है।** यदि आप किसी का भला करते हैं तो वही पलटकर आपके लिए चार गुना लाभ के रूप में लौट आयेगा। यदि हम दूसरों के भले की जगह अपना भला करने का विचार करते हैं तो आपकी श्रेणी दुर्योधन की होगी। यदि आप प्राणीमात्र की भलाई के विषय में सोचते हैं तो आपकी श्रेणी महावीर की, कृष्ण की होगी इसलिए महावीर बनने के लिए, युधिष्ठिर बनने के लिए सबसे अच्छी भावना करें क्योंकि सबसे अच्छी भावना ही हमें महान बनाती है।

दुनियाँ में सबसे बुरी भावना है ईर्ष्या जैसे कोई पढ़ाई में आगे निकल गया अथवा व्यापार आदि में आगे निकल गया उसके प्रति ईर्ष्या होना ठीक नहीं है प्रतिस्पर्धा करना ठीक है पर ईर्ष्या करना मूर्खता है। ईर्ष्या दूसरों को नहीं स्वयं को जलाती है और प्रतिस्पर्धा दूसरों को भी बढ़ाती है तथा स्वयं को भी बढ़ाती है। जैसे किसी व्यक्ति ने प्रतिदिन मंदिर जाने का नियम लिया तो उसके मित्र ने नियम लिया मैं भी मंदिर जाऊँगा यह प्रतिस्पर्धा है यदि हम दूसरों को सुखी देखकर खुश नहीं हो सकते तो कम से कम दूसरों को खुश देखकर स्वयं को ईर्ष्या की आग में न जलायें।

अत: ईर्ष्या को छोड़कर हमेशा दूसरों की भलाई करना चाहिए यही सर्वश्रेष्ठ भावना है, यही भावना महानता पैदा करती है।

47. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! अपने कार्य में संलग्न भाग्यशाली एवं उत्साह हीन दरिद्री होता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! संसार में अनेक प्रकार के प्राणी हैं। कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते हैं कुछ भी करना नहीं चाहते, आलस व प्रमाद से भरे रहते हैं ऐसे लोग निराशावादी व दु:खी रहते हैं, वे लोग सबसे अच्छे हैं जो भाग्यशाली हैं, जो आशाओं के साथ जीते हुये कार्यरत हैं कहा है– जो करेगा वही फलेगा। खोदते–खोदते जमीन से भी पानी निकल आता है और चढ़ते–चढ़ते एवरेस्ट की चढ़ाई भी चढ़ जाता है। एक छोटी चींटी भी पुरुषार्थ करके अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच जाती है इसलिये उद्यमशील बनो, पुरुषार्थी बनो, हमेशा कार्य करते रहो, उत्साहित रहो, मन का संकल्प और शरीर का पराक्रम यदि एक साथ लगा दिये जायें तो निश्चित ही सफलता प्राप्त होगी।

दुनियाँ में अनेक कार्य किये जाते हैं उन सभी कार्यों में सबसे बड़ी दरिद्रता है उत्साह हीनता। उत्साह भाग्यशाली का पैमाना है तो उत्साह हीनता दरिद्रता का। उत्साह हीन लोग कहते हैं कोई कार्य करने से पूर्व कि यह कार्य नहीं हो सकता जबकि उत्साह जगाने का सबसे बड़ा मंत्र है Imposible में से I. M. अलग कर दें तो सूत्र बनेगा–आई. एम. पॉसिबल I am posible जो उत्साही है वह बड़े से बड़े कार्य को करते समय यही कहता है can do it यह कार्य संभव है जल्दी ही पूरा होगा इसलिये सभी को उत्साही होना चाहिये तभी कार्य पूर्ण होगा, अनुत्साही लोग छोटे से छोटे कार्य भी नहीं कर पाते क्योंकि वह पहले ही हार जाते हैं यह कार्य हम नहीं कर सकते। हारना नहीं है हमेशा जीतने के लिए मन को उत्साहित करते रहना चाहिए। कोशिश करोगे तो कभी भी हार न होगी।

कशिश ऐसी करो पैदा कि कोशिश काम आ जाये।
वही कुव्वत करो पैदा कि मंजिल पास आ जाये।।

अत: भाग्यशाली बनने के लिए हमेशा उद्यमशील रहो, कार्यरत रहो तथा दरिद्रता को समाप्त करने के लिए अनुत्साहित मन को उत्साहित करो।

48. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है कि स्वास्थ्य सुख की कुंजी है, सौन्दर्य हमारा वैभव और सौम्यता हमारी ताकत है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! कहा भी है "पहला सुख निरोगी काया" यदि मानव निरोगी है तो हर कार्य उत्साह व लगन के साथ कर सकता है। शरीर स्वस्थ है तो मन प्रशस्त रहता है, मन प्रशस्त रहने से बड़े से बड़े कार्य पूर्ण हो जाते हैं, स्वस्थ रहने के लिए स्वयं को सकारात्मक रखें। उत्साह से भरपूर रहें, जीवन में सदा मुस्कराते व खिलखिलाते रहें, मुस्कान व सकारात्मक सोच से आप स्वस्थ होंगे व सुखी होंगे यदि आप अस्वस्थ हैं तो सुबह जल्दी उठिये, योग कीजिये, घूमने जाइये, संतुलित व पौष्टिक आहार लीजिये, स्वयं को प्रसन्न व तनाव मुक्त रखिये, दूसरों की निंदा से बचिये हमेशा अच्छे विचार कीजिये। हम स्वस्थ हैं इसी विचारधारा से आप शीघ्र ही स्वस्थ होंगे व प्रभावशील व्यक्तित्व के मालिक बन जायेंगे अपने व्यक्तित्व को निखारने के लिए अच्छा व श्रेष्ठ बनाने के लिए सर्वप्रथम स्वयं को स्वस्थ, सुंदर और सौम्य बनाइये क्योंकि स्वास्थ्य सुख की कुंजी है, संसार का सारा सुख मनुष्य के स्वस्थ शरीर में समाया है।

कहा है सौन्दर्य हमारा वैभव है – वास्तविक सौन्दर्य ही हमारा वैभव है। जैसे प्रकृति में हर पदार्थ सुन्दर है, जैसे जल नेचुरल सौन्दर्यता को लिये हुये हैं स्वभाव से शीतल है गर्म करने पर भी अपनी शीतलता को नहीं छोड़ता वैसे ही मानव के गुण ही मानव का सौन्दर्य, वैभव व ताकत है।

सौम्यता हमारी ताकत है जो प्राणी कठिनाइयों के आने पर भी, उपसर्गों के आने पर भी चेहरा नहीं बिगाड़ता, समता से सहन करता हुआ चेहरे पर हमेशा सौम्यता रखता है, जिसके अंदर समता धन है वही मजबूत व ताकतवर है। यदि हमारे पास स्वास्थ्य, सौन्दर्य व सौम्यता ये तीनों गुण हैं तो ही हम गुलाब हैं नहीं तो गुड़हल हैं, हम गुलाब बने, गुड़हल नहीं।

जीवित वो नहीं जो जी रहा है, जीवित वह है
जिसके नाम से मृतक भी जिंदा हो जाता है।

49. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई–कोई जीव चांडाल व दुष्ट मनुष्यों के द्वारा मारा जाता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो लोग अनेक जीवों को महादुःख देने वाले, हिंसा करने वाले कार्य करते हैं तथा पशुओं के प्राणरूपी धन को हरण किया करते हैं तथा जो मद्य, माँस, मधु का सेवन किया करते हैं, निरन्तर पाप किया करते हैं, बुरी आदतों में रत रहते हैं, ऐसे पापी, नीच, दुर्जन मनुष्य चांडाल के हाथ से मारे जाते हैं।

चांडाल के हाथ से मरना अत्यधिक निंदनीय माना गया है। महान पापकर्म के उदय से ऐसा समय आता है जो प्रत्येक प्राणी को पीड़ा देने का भाव बनाते हैं, कत्लखानों का व्यापार करते हैं, जो पशु पक्षियों को अनेक प्रकार के दुःख देते हैं, जो राजा व सेठ होकर भी अपने कर्त्तव्यों का पालन न करते हुये व्यसनों में मस्त रहते हैं, बुरे कार्यों को अच्छा समझते हैं, गलत कार्यों में प्रसन्न होते हैं, उसी में रुचि रखते हैं, नीच कुल वाले चांडाल आदि की निंदा करते हैं, चांडाल आदि के कार्यों को देखकर संतुष्ट होते हैं ऐसे जीव चांडाल, भील आदि के हाथ से मारे जाते हैं और फिर परलोक में नरक, निगोद आदि के दुःखों को भोगते रहते हैं।

जो लोग राजाज्ञा, न्यायालय आदि की आज्ञा का पालन करते हुये माँस खाते हैं, शिकार खेलते हैं, चोरी करते हैं, परस्त्री सेवन करते हैं, शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, अधिक संग्रह करते हैं, एक साथ अनेक जीवों को मारते हैं ऐसे जीव चांडाल आदि मनुष्यों के कारण मारे जाते हैं अत्यधिक दुःखों को प्राप्त करते हैं तथा दुष्ट मनुष्य छेदन भेदन करते हुये अनेक कष्ट देते हुये मारते हैं, वध कर देते हैं। ऐसे जीव परभव में या उसी भव में चाण्डाल व दुष्ट मनुष्यों के द्वारा मारे जाते हैं।

कहा है– जो अच्छा पढ़ते हैं वह अच्छे है जो अच्छा सुनते हैं वो बहुत अच्छे हैं, जो अच्छा करते हैं वो सबसे अच्छे हैं इसलिए जो भी करो अच्छा करो।

50. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जब किसी व्यक्ति को कुछ भी याद नहीं रहता तब उसको गधा कहते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! दुनियाँ में अनेक प्रकार के प्राणी हैं स्त्री, पुरुष, बच्चे, अमीर, गरीब, राजा, सेठ, मालिक, नौकर, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, शेर, नेवला, सर्प आदि अनेक प्राणियों को सब कुछ याद रहता है स्मृति अच्छी रहती है, अपना या दूसरे का घर याद रहता है, पक्षी आदि भी अपना घोंसला बनाकर रहते हैं, मकड़ी भी अपना जाल बनाती हैं, चिड़िया चूहा आदि भी अपना घर बनाकर रहते हैं, अनेक जगह सैर करते हैं, घूमते हैं, खाते–पीते हैं और समय पर शाम तक अपने घर वापिस आ जाते हैं किसी को भी नहीं बताना पड़ता तुम्हारा घर यह है, अपने घर जाओ पर गधा ही एक ऐसा प्राणी है जो 10 वर्ष भी अपने घर पर रह ले बाद में घर छोड़कर कहीं और खाने–पीने घूमने आदि जाये तो अपने घर स्वयं वापिस नहीं आता धोबी पकड़कर उसे घर का रास्ता दिखाता है। गधा को जब अपना घर ही याद नहीं रहता तो क्या याद रहेगा अर्थात् कुछ भी याद नहीं रहता। जब किसी पुरुष, स्त्री को कुछ भी याद नहीं रहता, काम करते–करते भी भूल जाते हैं, अपनी रखी हुई वस्तु भी भूल जाते हैं, याद किया गया विषय भी भूल जाते हैं तब सामान्य भाषा में अन्य लोग उसे 'गधा' कहकर पुकारते हैं।

अत: पढ़ी हुई, रखी हुई, याद की हुई वस्तु हमेशा स्मरण रहे, घर परिवार आदि कुछ भी विस्मृत न हो जिससे कोई हमें गधा कहकर नहीं पुकारे। जो पूर्व में बोझा ढोने वालों पर अधिक हँसते हैं, अन्य लोगों को गधा कहकर सम्बोधन करते हैं, बच्चों के साथ गधों का खेल करते हैं तथा जो हित–अहित, सत्य–असत्य का विचार नहीं करते तथा जो गधे की तरह कार्य करते हैं ऐसे लोग मरकर परभव में गधा बनते हैं तथा गधा बनकर अपने ही घर से विस्मृत हो जाते हैं तथा दूसरों के आश्रित रहते हैं इसलिये जिसको कुछ याद नहीं रहता है उसी को गधा कहते हैं।

किस्मत तभी रोती है जब मेहनत नहीं होती है।

51. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! चौका ही साधुओं के मन व इन्द्रियों के निरोध का सबसे बड़ा परीक्षालय है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! साधुओं के इन्द्रिय जय का सबसे बड़ा साधन रसोईघर है। साधु को अन्य स्थानों के अलावा पाँचों इन्द्रियों के विषय चौके में ही उपलब्ध होते हैं, पंचेन्द्रिय पर जय करने में हम कितने सफल हैं, कितने समर्थ हैं, कितनी इंद्रिय विषयों की आसक्ति है यह सब चौके में हो जाती है, यदि हम चौके में सफल हो गये तो परीक्षा फिर किसी भी स्थान पर इन्द्रिय विजयी हो सकते हैं पाँचों इन्द्रिय व मन को उदाहरण से समझते हैं– कटोरी में दाल आयी उसमें हल्दी नहीं डाली अच्छी नहीं दिख रही है दाल का गुण उसका रूप उसमें नहीं दिख रहा चक्षु इन्द्रिय जय चली गयी। अच्छे-अच्छे नाम वाले व्यंजन अच्छे लगते हैं, यह क्या है? दाल अत: कर्णेन्द्रिय चली गयी। बरसात या सर्दी का मौसम है, दाल ठण्डी है, खायी नहीं जा रही, हटा दी तो स्पर्शेन्द्रिय चली गयी, मुख तक गयी नहीं घ्राणेन्द्रिय ने भी अपना कार्य शुरू कर दिया यह तो जली है बदबू आ रही है अब कैसे खायें घ्राण इन्द्रिय भी चली गयी, मुख में लिया यह दाल है नमक का तो स्वाद ही नहीं है तो रसना इन्द्रिय चली गई पता नहीं कैसे बनायी मन में अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उठने लगे तो मन इन्द्रिय भी चली गई। अत: साधु भी साधना व संयम की परीक्षा देने में असफल हो गये। चौके में कैसी भी परिस्थिति हो साधु को हर स्थिति में समता में रहकर हर्षित दिल से जैसा मिले वैसा आहार करना चाहिए क्योंकि यही परीक्षा का सबसे बड़ा स्थान है।

साधु रसों में चटक-मटक नहीं करते। यह अच्छा है, बढ़िया है, नमक-मीठा पर्याप्त है ऐसा कहना तो दूर ऐसा मन में भाव आ जाना ही गुणस्थान से गिरना है तथा आहार करते समय साधु विचार कर रहा है साधु के लिए क्या अच्छा क्या बुरा, आहार करना पड़ रहा है करना नहीं चाहते। साधना में वृद्धि हो, ज्ञान चारित्र में वृद्धि हो इसलिये कर रहे हैं ऐसा विचार ही परीक्षा में पास करायेगा अत: चेहरे पर प्रसन्नता तथा भावों में समता हो।

52. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! पर की पीड़ा में तथा दूसरों के दुःख को अपना समझने में अपनी करुणा दिखती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! प्रत्येक जीव को अपने जैसा समझो चाहे छोटा जीव हो या बड़ा, चाहे चींटी हो या हाथी सभी में प्राण है सभी जीव सुख दुःख का अनुभव करते हैं एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव सुख चाहते हैं तथा दुःख से डरते हैं इसलिये भगवान महावीर कहते हैं कि पर की पीड़ा में ही अपनी करुणा, दया दिखती है यदि कोई जीव मर रहा है तो वेदन करना इसे कितनी पीड़ा हो रही होगी, कितना कष्ट हो रहा होगा, यदि किसी जीव के ऊपर पैर रख दिया वह जीव घायल हो गया तब विचार करना। उसके पास जाकर कहना – प्रमाद के कारण अनजाने में मेरा पैर रखा गया इस कारण आज तुम्हें इतना कष्ट हो रहा है क्षमा याचना करते हुये करुणापूर्वक उसके शरीर को सहलाना, उपचार करना, स्वस्थ करना तथा यदि मर रहा हो तो विचार करना मेरे निमित्त से इसकी मृत्यु हो रही है तब सम्बोधन करना, यह आपका संबोधन उस जीव को जिसके ऊपर पैर रखा गया था वही संक्लेशता रहित परिणामों से मरकर उत्तम जाति का देव होगा। यही पर की पीड़ा में अपनी करुणा की परीक्षा है। कहा है– यदि किसी जीव को जीवनदान नहीं दे सकते तो किसी को प्राण दण्ड भी मत देना, यदि किसी के आँसू नहीं पोंछ सकते तो किसी की मुस्कान भी मत लेना, यदि किसी को पेड़ा नहीं दे सकते तो किसी को पीड़ा भी मत देना यही हमारी करुणा की परीक्षा है।

यदि भला किसी का कर ना सको तो बुरा किसी का मत करना।
पुष्प नहीं बन सकते हो तो काँटे बन कर मत चुभना।।

यदि कोई जीव सामर्थ्यवान् है तो दूसरों की सेवा करो, औषधि आदि दान करो, यदि कोई मरणासन्न अवस्था में है अथवा अन्धा, बहरा, लूला, काना आदि आंगोपांग से रहित है, अनाथ है, मूक पशु है, पक्षी है तो उसका उपचार करो, यथायोग्य सेवा करो जिससे वह स्वस्थ हो। यदि आप कमजोर हैं तो स्वयं की सेवा करो, अपने आप पर ध्यान दो क्योंकि जब तक स्वयं

शक्तिशाली नहीं होंगे तब तक दूसरों पर भी करुणा नहीं कर पायेंगे। कहा है जिसके पास दया करुणा अहिंसा नहीं वो कहीं भी चला जाये तीर्थंकरों की शरण में भी चला जाये तो भी कुछ मिलने वाला नहीं है पर जिसके हृदय में पर की पीड़ा के प्रति दया-करुणा है वह कहीं भी रहे सब कुछ प्राप्त कर लेता है। अत: पर की पीड़ा ही अपनी करुणा की परीक्षा है।

महल कुटिया की पीड़ा से रोने लगें, तो समझना वहीं पर महावीर है।
फूल की सेज में शूल चुभने लगें, तो समझना वहीं पर महावीर हैं।।

***

मानव

आश्रय देने पर सिर पर चढ़ जाता है।
उपदेश देने पर मुड़कर बैठता है।
आदर करने पर खुशामद समझता है।

***

जो संत के पास नहीं जाते, न ही सेवा करते
वे संतानहीन होते है।

***

रात्रि में भोजन, शराब, सिगरेट, तंबाकू, क्रोध, माँस खाना
ये सभी अकाल मौत को निमंत्रण देते हैं।

53. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! बुजुर्ग लोग कहते हैं कि नये वस्त्रों को रविवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को पहिनना चाहिए ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! बुजुर्गों ने जो वस्त्रों के विषय में कहा है उस पर ध्यान देना चाहिए तथा जो भी कहा है उसको अमल करना चाहिए क्योंकि बड़े लोग व संत-महंत हमेशा अनुभव की बात करते हैं यदि हम सोमवार को नये वस्त्र पहनते हैं तो चूहा आदि के कतरने का भय बना रहता है, कटने का डर रहता है, लड़ाई, झगड़े में फटने का डर रहता है, यदि हम मंगलवार को नये वस्त्र पहनते हैं तो चोरी का डर रहता है, शनिवार को नये वस्त्र पहनने से जलने का डर रहता है। कभी-कभी वस्त्रों के साथ हम जल जाते हैं इसलिये सोमवार, मंगलवार, शनिवार को नये वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। रविवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार को नये-नये वस्त्र पहनना शुभ माने गये हैं इससे हमारे वस्त्र शीघ्र फटते, जलते, चोरी आदि नहीं होते हैं।

जब हम वस्त्र पहने तो हमारा मुख उत्तरमुखी होना चाहिये क्योंकि उत्तर दिशा में कुबेर का खजाना तथा विदेह क्षेत्र उत्तर दिशा में है यदि धन चाहिये तो कुबेर महाराज के खजाने से प्राप्त हो सकता है तथा वैराग्य चाहिये तो विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों का स्मरण करना।

विवाहोत्सव में, राज्योत्सव में, राज्य सम्मान में, प्रतिष्ठोत्सव में, गुरु के दर्शन करते समय, तीर्थ स्थान की वंदना को जाते समय नये वस्त्र पहनते हैं। इनमें कोई भी दिन हो कोई भी फर्क नहीं पड़ता है।

ज्योतिषाचार्यों ने वस्त्र धारण करने के नक्षत्रों का फल बतलाया है। अलग-अलग नक्षत्रों के, दिनों के अलग-अलग वस्त्र पहनने से अलग-अलग फल होता है। अश्विनी नक्षत्र में वस्त्र पहनने से बहुत से वस्त्र मिलेंगे। भरणी नक्षत्र में वस्त्र पहनने से अर्थ सम्पदा की प्राप्ति होगी। इस प्रकार अलग-अलग नक्षत्रों का अलग-अलग फल प्राप्त होता है।

54. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! अनंत निगोदिया जीव एक साथ रहते हैं फिर भी कर्मबंध पृथक्–पृथक् करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! यह सत्य है एक निगोद शरीर में अनन्त जीव रहते हैं किन्तु सबके बंध, उदय, सत्त्व की व्यवस्था पृथक्–पृथक् होती है। यदि एक की आयु बँधती है तो सबकी आयु बँधती है किसी की तिर्यंच की तो किसी की मनुष्य की अपने–अपने कर्मानुसार आयु बँधती है लेकिन एक आहार करता है तो सभी आहार करते हैं, एक श्वासोच्छ्वास लेता है तो अनंत जीव श्वासोच्छ्वास लेते हैं किन्तु कर्मबंध की व्यवस्था सबकी अलग–अलग है यदि असंख्यात जीवों ने मनुष्यायु बाँधी है तो वे ही मनुष्य भव का अनुभव करेंगे सभी नहीं। हम स्वयं विचार करें कि हम भी अनंतकाल निगोद में रहे और अपने अनंत निगोद के साथियों को छोड़कर यहाँ आये हैं इसी से स्पष्ट होता है कि हर प्राणी की कर्मबंध की व्यवस्था अपने–अपने कर्म के अनुसार स्वतंत्र है। कर्म के अनुसार, देह के बराबर छोटे–बड़े शरीर में फैल जाता है। त्रिकाल संबंधी अनंत द्रव्य व उनकी गुण व पर्याय के युगपत् प्रकाशन की सामर्थ्य शुद्ध जीवास्तिकाय में है उससे विपरीत मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से उपार्जित शरीर नामकर्म से उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अवगाहना के अनुसार संकोच विस्तार होता है।

जैसे– एक ट्रक में 200 व्यक्ति किसी कार्यक्रम में जा रहे थे सुनकर ही आश्चर्य हुआ कि इतने लोग कैसे बैठ गये? ट्रक तेजी में था और पलट गया, पलटते ही तुरंत 100 व्यक्तियों का मरण हो गया 100 बच गये। इसी प्रकार निगोदिया जीवों के भी सबका कर्म समान नहीं बँधता यद्यपि श्वास, आहार की क्रिया एक साथ होती है जैसे– लाइट आयेगी तो सबको समान रौशनी मिलेगी, आठ दिन में एक बार नल आये तो सबको पानी मिलेगा, राशन की दुकान में केरोसिन राशनकार्ड के अनुसार समान रूप से मिल जाता है ऐसे ही कर्मानुसार व्यवस्था होती है।

अत: निगोदिया जीव एक साथ रहते हुये भी कर्मबंध पृथक्–पृथक् करते हैं।

55. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कहते हैं कि सुख परवस्तु से नहीं, रत्नों से नहीं, भौतिक साधनों से नहीं मात्र ज्ञान से मिलता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! प्रत्येक प्राणी सुख की चाह में इधर-उधर भ्रमण करता है, कभी पत्नी में, कभी बच्चों में, कभी मित्रों में, कभी माता-पिता में, कभी परिवार में, कभी घूमने में, कभी मंदिर में, कभी बाजार में, कभी टी.वी. में, कभी मोबाइल में अर्थात् संसारी प्राणी वस्तुओं में सुख मानते हैं पर सुख वस्तुओं में नहीं, सुख तो अन्तरंग ज्ञान में मिलता है। कहा है-**ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण** जो वस्तुओं में सुख मानते हैं वह सुख नहीं है सुखाभास है।

इन पर वस्तुओं से ही जो प्रीति करता तथा काम, भोग, बंध को ही सुख मानता है अनादि काल से इनसे परिचित है ये सभी उसे सुलभ है लेकिन एकत्व विभक्त की कथा सुलभ नहीं है पर यथार्थ में सुख की परिभाषा नहीं जानते। आत्मा की निराकुलता में ही सच्चा सुख है।

सम्पूर्ण जीवन निकल जाता है पर सच्चे सुख को हासिल नहीं कर पाते क्योंकि जिस कार्य पद्धति (प्रोसिस) से सुख की उपलब्धि होती है उस पद्धति (Process) को नहीं किया। एक बार सही तरीके से Process करने पर अनंत सुख की प्राप्ति होती है जैसे ही भेद विज्ञान करते हैं ध्यानाग्नि के द्वारा कर्मों को नष्ट करते हैं वैसे ही मोहनीय कर्म नष्ट होता है, कर्म नष्ट होते ही अनंत सुख प्राप्त होता है। ध्यान रहे-इंसान की खोपड़ी वस्तुओं से नहीं पूर्ण ज्ञान से भर सकती है ज्ञान एक ऐसी वस्तु है जो हर पात्र को भर सकता है लेकिन अज्ञानता के कारण मानव खाने-पीने, पहनने, रहने, मौज उड़ाने की वस्तुओं को पाकर आनंदित होता हुआ मन को भरता है किंतु जैसे ही थोड़ा सा विवेक ज्ञान जाग्रत होता है तब पश्चाताप करता है तब वह सिर फोड़कर पछताने के अलावा क्या कर सकता है।

तब सही दिशा की ओर भागता है। वस्तुओं का त्याग करके संयम धारण करके तपस्या करता है जैसे ही ध्यान के द्वारा सारी कोशिकाएँ सक्रिय होती हैं

वैसे ही केवलज्ञान प्रकट हो जाता है लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कोशिकाएँ जाग्रत तभी होती हैं जब कोई व्यक्ति अपने मन को ध्यान व ज्ञान के आधार पर वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानकर अनुभूत करता है अत: मानव की खोपड़ी वस्तु से नहीं ज्ञान से ही भरती है और ज्ञान ही सच्चे सुख का साधन है।

अपने मन की कषायों का शमन करता हूँ ,
पाँचों इन्द्रियों के विषयों का दमन करता हूँ।
पाने अपने ही दिले ईश्वर को,
वीतरागी प्रभु को मैं नमन करता हूँ।।

***

हो नरकों में या स्वर्गो में कही भी जन्म हो मेरा।
मनुष्यों में या पशुओं में कही भी आगमन मेरा।।
सिर्फ ईश्वर से मेरी चाह है तो एक इतनी सी।
मिले भक्ति दो चरणों की हमेशा साथ हो तेरा।।

***

If you are a garden,
the flower in an ever lasting happiness.

***

आप गुलिश्तां है तो खुशबू है शाश्वत आनंद।

56. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है जो भव्य प्राणी रात्रि में चारों प्रकार के आहार जल का त्याग करता है उसे एक वर्ष में छह माह के उपवास का फल मिलता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! आ. श्री रविषेण जी महाराज पद्म पुराण में कहते हैं जो व्यक्ति रात्रि में चारों प्रकार के आहार जल का त्याग करता है उसे एक वर्ष में 6 माह के उपवास का फल मिलता है, जो व्यक्ति तीन पहर (9 घंटे) रात्रि में भोजन का त्याग करता है उसे एक वर्ष में साढ़े चार माह उपवास का फल मिलता है, जो व्यक्ति दो पहर (6) घंटे रात्रि भोजन का त्याग करता है उसे एक वर्ष में 3 माह के उपवास का फल मिलता है तथा जो व्यक्ति 1 पहर (3 घंटे) भी रात्रि भोजन का त्याग करता है उसे एक वर्ष में डेढ़ माह उपवास का फल मिलता है।

संसार में कोई भी प्राणी रात भर भोजन नहीं करता लेकिन त्याग भी नहीं करता क्योंकि आज का मानव त्याग के नाम से डरता है इसलिये रात भर भोजन करने का आस्रव करता रहता है यदि हम समय-समय पर रात्रि के भोजन की प्रतिज्ञा कर लें तो अनर्थ के पापों से बच सकते हैं। एक तिर्यंच प्राणी भी रात्रि में आहार नहीं करता पर वर्तमान में आज इंसान का कोई नियम नहीं है न रात देखते न दिन देखते जब देखो तब चरते रहते हैं विवेक-बुद्धि होते हुये भी विवेक का परिचय नहीं देते इन इंसानों से ज्यादा तो वे जानवर समझदार हैं जो दिन में भोजन और रात्रि में जुगाली करते हैं। रात्रि भोजन के त्याग से एक सिंह मोक्ष प्राप्ति का साधन बन गया। सिंह रात्रि भोजन त्याग के फल से मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके घोर तपस्या कर मोक्ष गया। रात्रि भोजन का त्याग धर्म की पहली सीढ़ी है तथा रात्रि भोजन करने वाले को नरक का द्वार खुला है। महाभारत में कहा है– **चत्वारि नरकद्वाराणां प्रथमं रात्रि भोजनं।**

जो व्यक्ति रात्रि में भोजन के आरम्भ का त्याग करता है बाद में इच्छा नहीं करता, प्रतिकूल परिस्थिति में भी रात में भोजन के भाव नहीं बनाता, चारों प्रकार के आहार का त्याग भावपूर्वक करता है ऐसा प्राणी एक वर्ष में छह माह के उपवास का फल प्राप्त करता है।

57. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया जब साधु की समाधि हो जाती है तब उल्टी पिच्छी–कमंडल रखते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! दिगम्बर साधु की समाधि के पश्चात् पिच्छी व कमंडल उल्टा रखते हैं शवयात्रा के समय भी पिच्छी का चँदोवा आगे की तरफ व डंडी पीछे की ओर रखी जाती है तथा कमंडल की टोटी जहाँ से पानी निष्काशित होता है उस हिस्से को आगे की तरफ करते हैं क्योंकि **उल्टी पिच्छी कमंडल रखना अशुभ का प्रतीक है।**

जो साधु जीवित अवस्था में प्रमाद के कारण, भूल के कारण गलत आदत के कारण पिच्छी व कमंडल उल्टे रख देते हैं अथवा उल्टे लेकर चलने लगते हैं ऐसे साधु प्रायश्चित के भागीदार होते हैं ऐसे साधुओं को गुरु के निकट जाकर प्रायश्चित लेकर स्वयं को शुद्ध कर लेना चाहिए वरना आचार्य भगवंतों ने यहाँ तक कहा है उल्टी पिच्छी कमंडल सल्लेखना समाधि का प्रतीक है।

दिगम्बर साधुओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कोई भव्य श्रावक कमंडल का मुख आगे लेकर न चले क्योंकि उसे जानकारी नहीं है इसलिये जानकारी अवश्य देना चाहिये कि कभी भी कमंडल उल्टा लेकर नहीं चलें वरना स्वयं की व साधु की मृत्यु शीघ्र हो सकती है जिससे विधिपूर्वक सल्लेखना समाधि नहीं हो पायेगी। महर्षियों ने यहाँ तक कहा जो साधु बड़ी गलती करते हैं प्रायश्चित रूप में उल्टी पिच्छी रखने का विधान है जिससे अन्य लोग समझ जाये इन्हें प्रायश्चित मिला है।

अत: समाधि के पश्चात् पिच्छी व कमंडल उल्टा रखा जाता है अथवा भूल के कारण उल्टी पिच्छी साधु रखते हैं इसलिए भूलकर भी जीवित अवस्था में साधुओं को उल्टा कमंडल व पिच्छी नहीं रखना चाहिये।

नये जो संस्कारों से नया जीवन बनाएगा।
चमन की जिंदगी पाकर वही तो खिल खिलाएगा।।

58. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शास्त्र आदि में मिलता है कि प्राचीन समय में आहार के समय साधु नगर में उल्टा कमंडल लेकर चलते थे ऐसा क्यों?

समाधान – हे मनीषी आत्मन्! दिगम्बर संतों का शुद्धि का उपकरण कमंडल होता है। शौच, लघुशंका, आहार आदि की शुद्धि हेतु श्रावक कमंडल में कुएँ का शुद्ध प्रासुक जल भरते थे जिससे साधु को कहना न पड़े कि पानी की आवश्यकता है कुछ वर्ष पहले देखा जाता था साधु कमंडल को सुखाकर उल्टा रख देते थे, बुद्धिमान, विवेकवान श्रावक कमंडल को उल्टा देखकर अपने घर से शुद्ध प्रासुक जल लेकर उसमें भर देते थे, साधुओं को इशारा भी नहीं करना पड़ता था आजकल साधु कमंडल उल्टा करके भी रख देते हैं तब भी श्रावक नहीं समझ पाता कमंडल उल्टा क्यों रखा हैं कभी-कभी तो साधु उल्टा कमंडल लेकर चलने लगते हैं जिससे श्रावक देख ले समझ जाये अपने विवेक, बुद्धि का परिचय दे और तत्काल ही कमंडल सीधा करके पानी भर दे।

श्रावकों को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि साधु के कमंडल में पानी है या नहीं, उल्टा है या सीधा है, साधु सीधा कमंडल लेकर चल रहे या उल्टा यदि आपने ध्यान नहीं दिया तो आप अपने कर्त्तव्यों से वंचित रह जाऐंगे, संत की सेवा व वैयावृत्ति से दूर हो जायेंगे जिससे उचित फल भी प्राप्त नहीं हो पाएगा, प्रेम व्यवहार की कमी हो जायेगी यदि साधु के कमंडल में पानी नहीं है तो साधु शुद्धि नहीं कर पायेंगे क्योंकि संत स्वयं न पानी माँग सकते, न याचना कर सकते, न स्वयं पानी गर्म कर सकते हैं इसलिये न साधु आहार करने जा पायेंगे, न लघुशंका, न शौच आदि की परेशानी दूर हो पायेगी इसलिये श्रावक को उल्टा कमंडल देखकर सीधा करके जल भरकर सेवा करते रहना चाहिये। समयानुसार कमंडल में शुद्ध प्रासुक जल भरना भी वैय्यावृत्ति के अंतर्गत आता है।

अत: श्रावक जल भर दे इसलिये पहिचान के लिए उल्टा कमंडल करके रख देते हैं अथवा कभी-कभी कमंडल लेकर उल्टा चलते हैं।

59. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया एक मात्र मनुष्य गति के उत्तम कुल वाले पुरुष स्त्री ही दिगम्बर संतों को आहारादि दे सकते हैं अन्य तीन गति वाले नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे वत्स! कर्मभूमि के उच्च कुलीन स्त्री पुरुष ही आहार दे सकते हैं। सांगोपांग हो, असहनीय रोग से पीड़ित न हो, धर्म, भक्ति और त्याग के संस्कार उनके अंदर हो, नवधा भक्ति से युक्त हो, दाता के सात गुण से सुसज्जित हो, नरक आयु का बंधक न हो, मद्य, माँस, मधु आदि अभक्ष्य भक्षण का त्यागी हो ऐसा प्राणी ही दिगम्बर साधु को आहार दे सकता है अन्य नहीं। जिसे नरक आयु का बंध हो चुका है ऐसे लोगों से कोई कितना भी कहेगा सामने सारे निमित्त होंगे, घर पर चौका लगेगा, साधु का आहार होगा पर देगा नहीं देखेगा पर देने के परिणाम नहीं होंगे।

एक व्यक्ति जो अजैन था अपने मित्र के साथ प्रतिदिन भक्तामर शिविर में आता, याद करके सुनाता, धीरे-धीरे आस्था बढ़ती गयी, अपना व्यापार छोड़कर साधु सेवा में लग गया, एक दिन बोला आपको आहार देना है। उसके लिये आप जो भी कहो करने को तैयार हैं आप जो कहोगे वह छोड़ देंगे पर एक बार आहार देने का अवसर दे दीजिये। हमने कहा आप आहार देने के योग्य नहीं हैं, देखने के योग्य हैं इसलिये जब साधु के आहार हो तो भक्तिपूर्वक देखिये इतना पुण्य बढ़ाइये कि भविष्य में अगली पर्याय में उच्च कुल में जन्म लेकर आहार दान के पात्र बन सको। अतः उच्च कुलीन, कर्मभूमि के स्त्री-पुरुष ही नवधा भक्तिपूर्वक दिगम्बर साधु को आहार दान के पात्र कहे गये हैं अन्य नहीं। संतों की सेवा के लिए तो स्वर्ग का देव भी तरसता है इसलिये मनुष्य पर्याय व उत्तम कुल को व्यर्थ न गँवायें। साधु की सेवा करके चारों प्रकार का दानादि देकर अपनी मानव पर्याय को सफल व उन्नत बनायें।

चारों प्रकार की शुद्धि का ध्यान रखते हुए नवधा भक्ति पूर्वक अन्य तीन गतियों के जीवों की आहार दान की व्यवस्था नहीं है ऐसा जिनेन्द्र प्रभु ने कहा है।

60. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है कि चारों गतियों में सबसे श्रेष्ठ सबसे उत्तम मनुष्य गति है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मनुष्य गति को ही श्रेष्ठ क्यों कहा क्या आपने कभी विचार किया? क्योंकि मनुष्य के पास बहुत सारा ज्ञान हो सकता है इसलिये नहीं, देवों के पास व नारकियों के पास मति, श्रुत व अवधिज्ञान होता है हमारे पास तो दो ही ज्ञान है व पूर्ण श्रुतज्ञान भी नहीं है, सर्वार्थ सिद्धि के देव द्वादशांग के पाठी होते हैं तुम तो एक भी अंग के पाठी नहीं हो इसलिये ज्ञान की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है, गाड़ी, बंगला, धन, वैभव अपार है जो ऐसा कहते हैं कोई भी कमी नहीं तो बताइये देवों के पास कौन सी कमी है, देवों के पास इतने रत्न हैं कि जब भगवान गर्भ में आते हैं तब 15 माह तक रत्नों की वर्षा करते हैं फिर भी कोई कमी नहीं आती इसलिये मानव धन वैभव से भी श्रेष्ठ नहीं है, यदि मानव कहे कि मैं भारत, अमेरिका, लंका, कनाडा, पाकिस्तान आदि सभी देशों में भ्रमण करता हूँ तो देव भी नंदीश्वर द्वीप, पंचमेरु, विदेह क्षेत्र, मध्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं इसलिये मनुष्य इस अपेक्षा से भी श्रेष्ठ नहीं है। यदि कहें सौन्दर्य की अपेक्षा से श्रेष्ठ है तो देव देवांगनाओं की अपेक्षा स्त्री पुरुष सुन्दर नहीं होते, मनुष्यनी का सौन्दर्य क्षण-क्षण में विलीन होता है परन्तु देवियों का सौन्दर्य जन्म लेने से मृत्यु के 6 महीने पूर्व तक ज्यों का त्यों रहता है कहीं भी सिकुड़न नहीं आती, रोग नहीं आता इसलिये सौन्दर्य की अपेक्षा भी मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है इन सभी बातों से मनुष्य श्रेष्ठ नहीं होता। स्वर्ग के देव, तिर्यंच व नारकियों से यदि मनुष्य श्रेष्ठ है तो वह है संयम के कारण। स्वर्ग का देव भी संयम के लिए तरसता है पर वह अणुव्रतों व महाव्रतों को ग्रहण नहीं कर पाता।

जब तीर्थंकर भगवान की वैराग्य पालकी उठाने का समय आता है तब सौधर्म इन्द्र कहता है मेरा सारा वैभव ले लो सब कुछ ले लो पर एक बार तीर्थंकर भगवान की पालकी मुझे उठाने दो तब निर्णय होता है कि सर्वप्रथम सात पग मनुष्य तीर्थंकर भगवान की दीक्षा पालकी को आगे बढ़ायेगा क्योंकि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो संयम धारण करके महाव्रतों का पालन करके तीर्थंकरत्व जैसे महान पद को प्राप्त कर सकता है, तिर्यंचादि जीव पूर्ण संयमी नहीं बन पाते तथा नारकी जीव भी संयम धारण नहीं कर पाते इसलिये चारों गतियों में मात्र मनुष्य गति ही सर्वश्रेष्ठ है अन्य नहीं।

61. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया संयम के बिना मानव का जीवन बिना ब्रेक की कार जैसा है, ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! अच्छी, सुन्दर कार मर्सिडीज है, नयी–नयी है, ए.सी. है, सीट भी एडजस्टेबल हैं, सब कुछ अच्छा है पर कार में ब्रेक नहीं है तो कार बेकार है, पाँच मंजिल का सुंदर मकान है किसी प्रकार की कोई भी कमी नहीं है आवश्यकता की सारी वस्तु मौजूद है पर मकान में दरवाजा नहीं है इसलिये मकान बेकार है, मंदिर विशाल है, शास्त्रोक्त है, शिखर भी उच्च है, सुंदर है, वेदी भी स्वर्णमय है पर वेदी में प्रतिमा नहीं है तो आलीशान मंदिर भी बेकार है, बढ़िया स्कूल है, Classes भी अच्छी हैं पर विद्यार्थी नहीं है तो स्कूल भी बेकार है उसी प्रकार जिसके जीवन में संयम नहीं है तो उस प्राणी का जीवन बेकार है, अधूरा है, अंधकारमय है।

सुख की, ज्ञान की अनुभूति मात्र संयम से होती है, विषयभोगों से धन आदि से संयम की अनुभूति नहीं होती, कितना भी ज्ञान हो पर संयम नहीं है तो सारा ज्ञान बेकार है।

समतापूर्वक आजीवन नियम पालन करना संयम है, संयम लोहे के चने चबाना है, संयम एवरेस्ट की चढ़ाई है, संयम स्वयं के कन्धे पर खड़ा होना है। संयम एक ऐसी तलवार है जो इस आत्मा में पैदा होती है, जो आत्मा संयमी हो जाती है वह ऐसी तलवार बन जाती है कि आत्मा के ही द्वारा बाँधे गये कर्मों को काट देती है, क्षय कर देती है। संयम के बिना इस आत्मा से कर्मों को नहीं हटाया जा सकता, संयम ब्रेक है जिसके बिना जीवन रूपी गाड़ी नहीं चलती, अंधकारमय जीवन में संयम सूर्य के समान है जिसके उदित होते ही असंयम का अंधकार नष्ट हो जाता है। अत: मानव जीवन में संयम आवश्यक है ज्ञान हो या न हो यदि संयम है तो ज्ञान व चारित्र हो जायेगा। अत: मानव का जीवन ब्रेक सहित कार के समान संयमित है संयमित जीवन में ही आनंद के फूल खिलते हैं।

संयमी कोई फरिश्ता है ये उसी को होता है
जिसका प्रभु व गुरु से रिश्ता है।

62. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! अन्य सम्प्रदाय के लोग बहुत अधिक देखने को मिलते हैं पर जैन लोग अल्पसंख्यक हैं अर्थात् सबसे कम हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जैनों की संख्या इसलिये सबसे कम है क्योंकि जैन दर्शन का, भगवान महावीर का अनुसरण करने वाले लोग कम हैं क्योंकि जैन दर्शन त्याग सिखाता है, संसारी प्राणी राग, द्वेष, मोह में जीना चाहता है यदि किसी से त्याग की बात कहो तो त्याग करने से डरता है, किसी से कहो आलू छोड़ दो, जमीकंद का त्याग कर दो तो त्याग करना नहीं चाहता ग्रहण करना चाहता है, किसी से कहो लो ये पैन ले लो तो कहेगा लाओ, किसी से कहो तुम अपना पैन इसे दे दो तो कहेगा क्यों दे ये तो हमारा है लेने के लिये सभी तैयार हो जाते हैं पर देने के लिये नहीं क्योंकि अनादिकाल से प्रत्येक संसारी प्राणी के ग्रहण करने के संस्कार हैं छोड़ने के संस्कार नहीं हैं। ऐसे विरले जीव होते हैं जो छोड़ने की बात सोचें छोटे-छोटे बच्चे भी टॉफी, बिस्कुट, पैसे देने पर मुट्ठी बंद कर लेते हैं, छोड़ते नहीं हैं, बच्चों के अंदर भी संग्रह का भाव पाया जाता है। संसार का प्रत्येक प्राणी आसक्ति, संग्रहवृत्ति को थोड़ा कम करे तो जैन दर्शन अपने जीवन में फलित हो जायेगा जबकि आसक्ति के कम न होने पर जैन दर्शन का वृक्ष आपकी आत्मा में फल नहीं दे सकेगा इसलिये जैन दर्शन को पाने के लिए इच्छाओं को कम करके त्याग धर्म को अपनाएँ तथा महावीर के सिद्धान्त का अमृत पान करें।

अत: भगवान महावीर के सिद्धान्तों को जीवन में लाने वाला व्यक्ति अत्यन्त साहसी, आस्थावान, परिश्रमी एवं समर्पित हृदय वाला होना चाहिए जो अहिंसा धर्म का रक्षक है वही जैन धर्म का पालक है तथा दुनियाँ में अच्छे काम करने वाले लोग कम हैं जो अच्छा व श्रेष्ठ कार्य करते हैं, सम्मान व स्वाभिमान रखते हैं वह जैन होते हैं यही कारण हैं कि जैन लोग अल्पसंख्यक कहे जाते हैं।

*** प्रयास करो महान् बनने का नहीं, एक अच्छे इंसान बनने का क्योंकि जहाँ एक अच्छे इंसान का निर्माण होता है वही से महान् बनना प्रारंभ होता है इसलिए पहले शिष्ट बनें विशिष्ट नहीं।**

63. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! यह जीव मरकर कीड़े मकोड़े की अनेक पर्यायों में जन्म लेता है तथा अनेक दुःखों को भोगता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! छोटे-छोटे कीड़े बिना कारण के भी मर जाते हैं। कोई-कोई जीव घास, गोबर आदि में दबकर मर जाते हैं व कोई पानी में बहकर मर जाते हैं जो लोग छोटे-छोटे जीवों की रक्षा नहीं करते सब जीवों को अपना जैसा नहीं समझते, जमीन आदि देखकर नहीं चलते या देख शोध करके न वस्तु को उठाते हैं, न रखते हैं तथा जो मलमूत्र भी देखकर व शोधकर नहीं करते तथा प्रमाद के कारण छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े का घात करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं, परेशान करते हैं ऐसे लोग मरकर अगले जन्म में छोटे-छोटे कीड़े बनते हैं जिन्हें सभी लोग सहज ही मार देते हैं इसी प्रकार जो जीव देव शास्त्र गुरु के दर्शन नहीं करते, न उनका उपदेश सुनते हैं, न उन पर श्रद्धा करते हैं तथा जो दीन दरिद्री मनुष्यों को कभी संतुष्ट नहीं करते, कभी भोजन भी दान में नहीं देते, सदाकाल धन के मद में उन्मत्त रहते हैं, कीड़े मकोड़े को पैरों तले कुचल देते हैं ऐसे मनुष्य मरकर छोटे-छोटे कीड़े होते हैं बार-बार जन्म-मरण के दुःखों को भोगते हैं।

जो सहज रूप से कीड़े मकोड़ों को नहीं मारते, दुःख नहीं देते हैं, अपने समान समझते है कि मेरे जैसे ये भी जीव हैं, ये भी सुख दुःख का अनुभव करते हैं, पूर्व में ये हमारे सगे सम्बन्धी माता-पिता, भाई-बन्धु थे जो ऐसा विचार करते हैं वे कीड़े-मकोड़ों को नहीं मारते जिससे वे अनंत दुःखों को नहीं भोगते।

अत: छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों की रक्षा करते रहना चाहिये तथा दीन, दरिद्री, कमजोर लोगों को कुछ न कुछ दान अवश्य करते रहना चाहिए तथा सभी प्राणियों को अपने जैसा समझना चाहिए।

सभी को दो यहाँ खुशियाँ खुशी को चाहते गर हो।
बहुत ही दुक्ख पाओगे अगर तुम चाहते पर हो।।

64. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** थोड़े ज्ञान के लिए पुण्य उससे अधिक ज्ञान के लिए धर्म तथा सम्पूर्ण ज्ञान के लिए ध्यान की आवश्यकता होती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! थोड़ा ज्ञान करना ज्ञान नहीं है जानकारी है, यदि मात्र जानकारी चाहते हैं तो पुण्य के कार्य कीजिये, दानादि दीजिये, गरीबों को भोजन कराइये, रोगी की सेवा कीजिये, धर्म कार्यों में व गुरु की सेवा में मन लगाइए। पढ़ने तक ही मात्र सीमित रहे, न दोहराया, न अभ्यास किया, न चिंतन किया, न चार लोगों को सुनाया तो मात्र जानकारी हो गयी अनुभव में नहीं आया– जैसे पढ़ा, आँख के डॉक्टर, दाँत के डॉ. हृदय के डॉ. जानकारी हुई पर अनुभूत नहीं किया तो थोड़ा ज्ञान हुआ पर जो अधिक ज्ञान पाना चाहते हैं वो अधिक ज्ञानी के पास बैठते हैं, ज्ञानी की प्रशंसा करते हैं, गुणों का सम्मान करते हैं, यशगान करते हैं तथा पढ़कर रिपीट करते हैं, अनुभव करते हैं जो डॉ. की पढ़ाई के साथ अनुभूत भी करते हैं इसलिये उन्हें विशेषज्ञ कहा जाता है वैसे ही जो पढ़ने के साथ धर्म कार्य करते-करते अनुभूत करते हैं उन्हें अधिक ज्ञान होता है तथा जो सभी आरम्भ परिग्रह का, सभी प्रकार के विकल्पों का त्याग करके आत्मध्यान करता है, आत्मा व शरीर का भेद विज्ञान करता है वह ध्यानाग्नि के द्वारा कर्मों को जलाकर सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है।

सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्या करें जिससे सही दिशा प्राप्त हो। जिस प्रोसिस से ज्ञान की प्राप्ति होती है वैसा ही प्रोसिस करने से सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है। जैसे दूध को तपाकर पानी को सुखाकर शुद्ध तत्त्व घी की प्राप्ति होती है फिर वह कभी भी दूध नहीं बनता वैसे ही शरीर को ध्यानाग्नि के द्वारा तपाकर शुद्ध आत्मतत्त्व सिद्धत्व को प्राप्त करते हैं वहाँ पर कभी भी दूसरे शरीर की प्राप्ति नहीं होगी।

अत: सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके सिद्धत्व को प्राप्त करो

नई अक्सीर ला करके नया तु ज्ञान पैदा कर।
तुझे तेरा नजर आये ऐसा तू ध्यान पैदा कर।।

65. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! संसार में अनंत जीव हैं कुछ पुरुष कुछ स्त्री तथा कुछ जीव नपुंसक वेदी होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जिनकी इच्छा पुरुषों के साथ रमण करने की होती है उसे स्त्रीवेद कहते हैं तथा जिनकी इच्छा स्त्री के साथ रमण करने की होती है उसे पुरुषवेद कहते हैं तथा जिनकी इच्छा पुरुष व स्त्री दोनों के साथ रमण करने की होती है उसे नपुंसक वेद कहते हैं, नपुंसकों के हृदय में काम सेवन की तीव्र लालसा होती है, नपुंसक जीवों की काम वासना अग्नि के समान होती है जो बहुत समय तक जलती रहती है इसलिये यह नपुंसक पर्याय अत्यधिक निंदनीय मानी जाती है। जो पुरुष काम सेवन के अंगों को छोड़कर अन्यत्र क्रीड़ा करते हैं तथा जो कुशील सेवन करने के लिए पर स्त्री को वश में करने के लिये तथा पर पुरुषों को वश में करने का उद्यम किया करते हैं ऐसे लोग मरकर अवश्य ही नपुंसक होते हैं। इसलिये भव्य जीवों को इस निंदनीय पर्याय से बचने के लिये निरन्तर अपने हृदय को शांत करना चाहिये तथा काम सेवन की लालसा कभी नहीं करना चाहिये।

जो अति आरंभ व अति परिग्रह की इच्छा करते हैं वे जीव नपुंसकों में जन्म लेते हैं। जो अत्यधिक छलकपट मायाचारी करते हैं, दूसरों को ठगने में लगे रहते हैं ऐसे लोग स्त्री पर्याय में जन्म लेते हैं तथा जो लोग आरंभ परिग्रह की इच्छा बहुत कम करते हैं जो श्रेष्ठ कार्य करने का उद्यम किया करते हैं, कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, महापुरुषों की प्रशंसा करते हैं, देव–शास्त्र–गुरु की भक्ति करते हैं ऐसे लोग पुरुष पर्याय में जन्म लेते हैं।

अत: अपने अपने पुण्य व पाप कर्मफल के अनुसार ही जीव स्त्री, पुरुष व नपुंसकों में जन्म लेते हैं।

*** जिस घर में बेटियाँ नहीं होती, बुढ़ापे में वहाँ रोटियाँ नहीं होती।**

*** उम्र भर हमेशा यही भूल करते रहे, धूल चेहरे पे थी आइना साफ करते रहे।**

*** जल से शीतल चंदन है, चंदन से शीतल गुरु वंदन है।**

66. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! भाषा का निर्माण केवल मानव करता है अन्य पशु–पक्षी, देव, नारकी नहीं तथा भाषा का जन्म पहले होता है व्याकरण का बाद में ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! जिस प्रकार माता–पिता का निर्माण पहले होता है बाद में संतान का जन्म होता है, जैसे फूल का जन्म पहले होता है बाद में फल का, गुरु का जन्म पहले होता शिष्य का बाद में, मंदिर का निर्माण पहले होता है बाद में मूर्ति का उसी प्रकार भाषा हमारी जननी है भाषा का निर्माण पहले होता है व्याकरण का बाद में क्योंकि व्याकरण भाषा की ही संतान है, भाषा सरिता, नदी, समुद्र की तरह प्रवाहमान है, भाषा जो भी ग्रहण करता है वह ज्ञानी, विवेकी, मिष्टभाषी व भाषा का जानकार हो जाता है। व्याकरण भाषा को बाँधने के लिये सहायक है, व्याकरण के आधार से सही शब्द व अर्थ का ज्ञान होता है। जैसे–संतान के बिना माता–पिता, गुरु के बिना शिष्य, सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र अपूर्ण हैं, अधूरे हैं वैसे ही व्याकरण के बिना भाषा अपूर्ण है, अधूरी है, शून्य है। भाषा के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व व कृतित्व का पता चलता है। व्यक्ति की बुद्धि, विवेक, ज्ञान, प्रतिभा, मेधा का पता चलता है, भाषा के द्वारा ही प्राणी आदर व सम्मान का पात्र बनता है।

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो भाषा का निर्माण कर सकता हैं, मनुष्य के कण्ठ में तालू पाया जाता है जिसे जनमान्य भाषा में कागला कहते हैं वह ही सारे अक्षरों का निर्माण करता है अन्य पशु–पक्षी भाषा का निर्माण नहीं करते क्योंकि उनके कण्ठ में तालू नहीं होता इसलिये उनको भाषा का ज्ञान नहीं हो पाता। मानव अक्षरी भाषा बोलते हैं जो भाषा अ + क्षर अर्थात् जो शब्द द्वारा प्राप्त हो वह अक्षरी भाषा है पशु–पक्षी अनक्षरी भाषा बोलते हैं। उनकी भाषा शब्दमय नहीं होती वे बोल तो सकते हैं परन्तु भाषा का निर्माण मनुष्य ही करते हैं। नारकी, देव व मनुष्य की अक्षरी भाषा होती है शेष जीवों की अनक्षरी भाषा होती है।

67. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! लोग कहते हैं कि संत पुरुष जीवन्त शास्त्र हैं मृत नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! संत महात्मा ही है जो बतलाते हैं, समझाते हैं शास्त्र में क्या लिखा है। यदि हम स्वयं ही शास्त्रों का अवलोकन करते हैं तो हम शास्त्रों की बातों को समझ नहीं पाते हैं क्योंकि हम छद्मस्थ हैं, अज्ञानी हैं, क्षयोपशम ज्ञानी है हमारे संत-महंतों ने जीवन को जिया और जीवन की बात को शब्दों में लिपिबद्ध कर दिया वे ही बातें शास्त्र बन गई, संतों की वाणी हित, मित, प्रिय होती हैं इन्हीं मनीषियों, ऋषियों की बातों को जब जीवन में संत उतार लेता है उन्हें आचरण बना लेता है तो संत का जीवन ही जीवंत शास्त्र बन जाता है सच्चे संत की चर्या देखकर लगता है कि शास्त्रों में ऐसा ही लिखा होगा, संत सूरज की तरह प्रकाश देते हैं, चाँद की तरह शीतलता देते हैं, संत के पास बैठने पर उसकी सुवास हमें महसूस होती है, फूल के पास जब हम जाते हैं तो खुश्बू महसूस होती है वैसे ही संत महकता हुआ गुलाब है, संत को देखकर कई शास्त्रों का ज्ञान सहज ही हो जाता है, संत के अभाव में सम्यक्त्व रूपी वाणी निर्जीव है।

जैसे एक वृद्ध व्यक्ति के जीवन में अनुभवों का अद्वितीय भण्डार होता है उसके जीवन में जिंदगी के अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव आते हैं ठीक इसी प्रकार एक संत के जीवन में अनेक विलक्षण लक्षण होते हैं जिन्हें समझना हमारे बस की बात नहीं है अर्थात् जो जैसा होता है उसे उसकी बात समझ में जल्दी आती है, डॉ. को डॉ. की बात समझ में आती है, संत को संत की बात समझ में आती है, श्रावक को श्रावक की बात समझ में आती है, जिससे हम अधिक परिचित होते हैं वही उसकी भाषा समझ सकता है। अत: शास्त्र का अंतिम निचोड़ संत ही बता सकता है ऐसे संत को पाकर हम शास्त्र को समझें और अपने जीवन को जीवंत बनायें।

जो मन के मतानुसार चलते हैं अक्सर वे रास्ते में अकेले पड़ जाते हैं लेकिन जो गुरु के मतानुसार चलते हैं उनके साथ सभी होते हैं।

68. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! गुणवान् व्यक्ति के सभी करीब रहना चाहते हैं अवगुणी से किनारा चाहते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! गुणों के बिना मानव का जीवन टूटे हुये वृक्ष के समान है, उजड़े हुये वन के समान है। गुणवान् व्यक्ति हरे भरे फलदार वृक्ष के समान है, गुणों से ही व्यक्ति की कद्र होती है, सम्मान होता है गुणवान व्यक्ति की सभी जगह पूजा होती है यदि कोई व्यक्ति रूप रंग से तो सुंदर है पर आचरण से, व्यक्तित्व से, कृतित्व से सुंदर नहीं है तो उसे सभी लोग नहीं चाहते लेकिन जो रूपवान् नहीं गुणवान् है तो वह सभी को अच्छा लगता है। जैसे जब तक रसगुल्ला नहीं खाया तब तक ही पेड़ा बरफी बहुत अच्छे लगते हैं ठीक वैसे ही जिसका गुणवान् पुरुष से परिचय हो गया है जिसने वीतरागता का दर्शन कर लिया हो फिर सरागी के दर्शन में आनंद नहीं आता जब सत्यता का ज्ञान हो जाता है तो फिर झूठ को सुनना मात्र भी पसंद नहीं करते। आत्मा (रूह) के गुण मिल जाते हैं तो रूप के अवगुण को कोई भी पसंद नहीं करता सभी किनारा चाहते हैं।

सम्यक्त्व एक ऐसी गुणरूपी चुम्बक है जिसमें लोहे रूपी लोगों को आकर्षित करने की शक्ति है। सम्यक्त्व के बिना कोई शृंगार आदि करके आकर्षित करे तो वासना का प्रदर्शन है। सम्यक्त्व ही ऐसा गुण है जो पुरुष को सुंदर बना दे, दुश्मन को दोस्त बना दे, क्रोधी को क्षमाशील बना दे जो सत्य को भगवान राम, महावीर की तरह हासिल करके संसार में रहता है वही सम्यक्त्व गुण से विभूषित होता है।

अत: जिसे गुणवान् बनना है, जीवन कीमती बनाना है वह इंसान से बढ़कर कार्य करे जिससे वो परमात्मा के गुणों को प्राप्त कर सके जिससे कोई भी किनारा न करे सभी करीब रहें।

मुझे ऐसा बना दो मैं तुम्हारा दास बन जाऊँ।
तेरी सेवा करूँ हरदम तुम्हारा खास बन जाऊँ।।

69. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! घर को स्वर्ग बनाने के लिए प्रेम, वात्सल्य, संस्कार, शिष्टाचार, एकता, सामंजस्य आवश्यक है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मावा, पानी, शक्कर, ईंधन के समन्वय से रसगुल्ला बनता है, ईंट, पानी, रेत, चूना, सीमेंट, कंक्रीट आदि के समन्वय से पूर्ण मकान बन जाता है वैसे ही घर को स्वर्ग बनाने के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य की एकता, संगठन, प्रेम, वात्सल्य, विनय, समर्पण, सहिष्णुता, समन्वयता आवश्यक है जहाँ समन्वय है वहाँ बड़े-बड़े कार्य सफल हो जाते हैं। उदारता, विशालता घर को स्वर्ग बनाती है, जहाँ पर सभी का सहयोग व विश्वास है बस वहीं धरती का स्वर्ग है। तालाब की मिट्टी गीली होने पर असीमित व अखण्डित होती है पानी के सूखने पर मिट्टी भी सूख जाती है तो उसमें दरारें आ जाती हैं, जिस परिवार में प्रेम वात्सल्य का नीर प्रवाहमान है वह हरा भरा तालाब हैं। जहाँ प्रेम वात्सल्य सूख जाता है वहाँ भाई-भाई के बीच सूखी मिट्टी की दरारें पड़ने लगती हैं।

अत: तुम्हारा तालाब सूखा तो उसे पानी से भरना होता है पर जहाँ पर प्रेम, संगठन, सहनशीलता ,सहिष्णुता है उस परिवार में सुख शांति का वास, लक्ष्मी का निवास व संतों का प्रवास होता है। परिवार एक गुलदस्ता है जिसमें नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प खिले हुये हैं उनकी भीनी-भीनी महक से परिवार सुसज्जित हो रहा है।

सप्ताह में रविवार, सोमवार आदि सात वार हैं इन सात वारों को श्रेष्ठ मंगलमय बनाने के लिए आठवाँ वार है परिवार। जब आठवें वार परिवार में सभी मिलजुल कर एक साथ रहते तो सात वार मंगल स्वत: ही हो जाते हैं।

परिवार को स्वर्ग बनाने के लिए घर का प्रत्येक सदस्य प्रात: उठकर परमात्मा का स्मरण करे, णमोकार मंत्र का जाप करे, बड़ों का आदर व सम्मान करे, चरण स्पर्श करे, विनय करे, छोटों के प्रति प्रेम-स्नेह-वात्सल्य रखे, अभक्ष्य भोजन नहीं करे, आपस में किसी भी विषय पर बहस न करे घर में सभी साथ बैठकर एक दूसरे की भावना को समझे तभी हम अपने परिवार को स्वर्ग की तरह सुंदर बना सकते हैं।

70. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! इस संसार में अनेक जीव हैं, कोई–कोई मनुष्य परिग्रह सहित होते हुए भी परिग्रह रहित हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो मनुष्य अधिक इच्छाएँ नहीं करता, घर–परिवार में रहकर भी भोग–विषय आदि अच्छे नहीं लगते, घर में वैरागी की तरह रहते हैं, आत्मा के शुद्ध परिणामों में लीन रहते हैं, धन, रत्न, वस्त्र, आवास, वाहन, अन्नपान आदि वस्तुओं की सीमा बनाते हैं अर्थात् त्याग करते हैं जो मौन व्रत धारण करते हैं, शुभ ध्यान में लीन रहते हैं जो सम्यग्दर्शन से शोभायमान हैं, जो सदाचार का पालन करते हैं, राग–द्वेष कषायों से दूर रहते हैं ऐसा मनुष्य अवश्य ही परिग्रह सहित होने पर भी घर परिवार में रहते हुये भी परिग्रह से रहित होते हैं तथा जो संकल्प विकल्प करते रहते हैं, मौन धारण न कर बहुत बोलते हैं, सीमाएँ नहीं बनाते हैं, सीमाएँ बनाने पर उनका उल्लंघन करते हैं, अनेक मिथ्या प्रपंच करते रहते हैं, त्याग करने पर ग्रहण करने का भाव बनाते हैं, बहिरंग में त्यागी होते हुये भी अन्तरंग से वस्तु को पाने का भाव बनाते रहते हैं, त्याग होने पर वस्तुओं पर आसक्ति बनी रहती है, विषय भोग नहीं है फिर भी पाने की लालसा करते रहते हैं, विषय भोगने हेतु आर्त–रौद्र परिणामों को करते रहते हैं ऐसे लोग परिग्रह से रहित होने पर भी परिग्रह से सहित ही है।

आचार्य भगवन्तों ने कहा है– **मूर्च्छा परिग्रहः** मूर्च्छा का भाव होना ही परिग्रह है, शरीर का ममत्व भी परिग्रह है सब कुछ छोड़ दिया लग गये शरीर की सेवा में, शरीर को खिलाने पिलाने में, शरीर को सजाने में पर शरीर भी अपना नहीं है फिर मूर्च्छा क्यों? क्योंकि राग का भाव है यही भाव हमें परिग्रही बनाता है जब शरीर के प्रति मूर्च्छा का अभाव हो जाता है तब सर्व परिग्रह से रहित दिगम्बर मुद्रा को धारण करके मोक्ष पर आरूढ़ हो जाते हैं तभी वह सर्व परिग्रह से रहित ज्ञानी कहलाते हैं तथा अपरिग्रही कहलाते हैं।

कभी ये फूल बन जाएँ, कभी ये वीर बन जाएँ।
जहाँ पर तू कदम रख दें, वही कश्मीर बन जाएँ।।

71. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है ऊँकार सभी धर्मों का सार है, ऊँकार में ब्रह्माण्ड की शक्ति समाहित है, ऊँकार में द्वादशांग का सार समाहित है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! ऊँ एक बीजाक्षर है, मंत्र शास्त्रों में जितने मंत्र हैं अधिकांश मंत्रों के प्रारम्भ में ऊँ शब्द लगता है इससे मंत्र व्यापक तथा पॉवरफुल हो जाता है, मस्तिष्क एकाग्र हो जाता है, ध्यान में आनंद आता है।

ऊँकार को हर धर्म सम्प्रदाय ने स्वीकार किया है, जैन धर्म में ऊँकार में सम्पूर्ण णमोकार विद्यमान है तथा इसी ओंकार भाषा में ही तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है, द्वादशांग का सम्पूर्ण सार ओंकार में ही समाहित है। वैष्णव सम्प्रदाय में कहते हैं ॐ नमः शिवाय की जाप करो, मुस्लिम सम्प्रदाय में कहते हैं अल्लाह ओ अकबर यह ओमकार का ही स्वरूप है, सिक्ख सम्प्रदाय में कहते हैं ओमकार सतनाम इस ओमकार को हर सम्प्रदाय में किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है।

इस ओम मंत्र को तीन अक्षरों में बाँट दे तो यह विश्वव्यापी मंत्र बन जाता है। जैसे 'आ' ब्रह्मा इसका नाभि से उच्चारण होता है। वैष्णव सम्प्रदाय में ब्रह्मा को सृष्टि का कर्त्ता माना है, विष्णु को 'उ' में गर्भित करते हैं 'उ' का उच्चारण हृदय से करते हैं, माँ हृदय का दुग्ध पान करा कर बच्चे का पोषण करती है, महेश को इस सृष्टि का विनाशक मानते हैं, उन्हें 'म' में गर्भित किया है, 'म' का उच्चारण मस्तिष्क से करना चाहिए क्योंकि इस सृष्टि में जितना विनाश मस्तिष्क ने करवाया है उतना किसी ने नहीं करवाया, इस ओंकार में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही गर्भित हैं, भक्तामर में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान को ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा है।

ओम् तीन शब्दों से मिलकर बना है ये तीन शब्द तीन लोक के प्रतीक है। जैसे– अधोलोक का 'अ', उर्ध्वलोक का 'उ' और मध्यलोक का 'म' ये तीनों त्रिकालवर्ती हैं, जो व्यक्ति तीनों लोकों में रहने वाली समस्त क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान रखता है वही सर्वज्ञ पुरुष ॐ शब्द का वाच्य व वाचक होता है।

72. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुनते हैं कि संत पुरुष इस दुनियाँ में वीर पुरुष कहे जाते हैं अन्य नहीं ऐसा क्यों?

समाधान –हे भव्य पुरुष! दुनियाँ में हर मनुष्य के लिए अपनी–अपनी आयु पर्यंत जिंदगी मिली है उनमें कुछ विरले लोग ऐसे हैं जो संसार रूपी कीचड़ में से निकलकर कमल की तरह अर्थात् संयम, तप, त्याग की खुश्बू से महकते हैं, जो किसी से भयभीत नहीं होते, जो वीर चर्या का निरन्तर पालन करते हैं, जिंदगी को स्वतंत्रता से गुजारते हैं, जो इंसान से बढ़कर कार्य करते हैं ऐसे इंसान ही इस धरा पर वीर पुरुष कहे जाते हैं। ऐसे पुरुषों के गुण, शास्त्र, पुराण, गीता आदि में गाये जाते हैं तथा ऐसे पुरुष ही वीर संत कहे जाते हैं। सम्पूर्ण विश्व में ऐसे धर्मवीरों का नाम अद्वितीय है वीर पुरुष ही धर्म करते हैं, कायर नहीं। चाहे भगवान राम हों, बुद्ध हों, महावीर हों चाहे संत महंत आचार्य कुंदकुंद हो अथवा विमलसागर, विरागसागर, विद्यासागर हो किसी ने भी गुलामियत को स्वीकार नहीं किया इसलिये वे आज भी स्वतंत्र हैं अन्य सभी परतंत्र हैं। स्वतंत्र होने के लिये सभी लोग संत पुरुष का स्मरण करते हैं तब ही सभी लोग स्वतंत्रता महसूस करने लगते हैं व स्वयं को हल्का महसूस करते हैं।

संत भय से रहित होते हैं, उपसर्ग व बड़े से बड़ा संकट आने पर भी भयशील नहीं होते, निडर व निर्भीक होते हैं, किसी से कुछ याचना नहीं करते। स्वाभिमान रखते हैं कोई भी कार्य हो उसे वीरता के साथ करते हैं, छोटे–बड़े सभी प्रकार के जीवों के साथ क्षमा भाव रखते हैं, कोई गाली दे, तिरस्कार करे, अपमान करे अथवा कोई सम्मान करे, यशगान करे सभी को समभावपूर्वक क्षमा करते हैं। कहा है–**क्षमा वीरस्य भूषणं** क्षमा वीरों का आभूषण है। जिस प्रकार आभूषण के बिना सुन्दरता नहीं दिखती वैसे ही संत इस जगत में वीर पुरुष है इनके बिना वीरता दिखायी नहीं देती।

करो सोने के सौ टुकड़े तो कीमत कम नहीं होती।
बुजुर्गों की दुआ लेने से इज्जत कम नहीं होती।।

73. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी का ज्ञान बढ़ता हुआ होता है, किसी का ज्ञान घटता हुआ होता है अथवा किसी में कम ज्ञान है, किसी में अधिक ज्ञान है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! मानव शरीर में वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग 23 अरब कोशिकाएँ होती हैं। ज्ञान का बढ़ना, घटना, मंद होना ये सारी स्थितियाँ कोशिकाओं के सक्रिय व निष्क्रिय होने की वजह से है। यदि हम अपने मस्तिष्क से इन्द्रियों के विषय भोगों को दूर कर दें, राग-द्वेष, मिथ्यात्व, कषाय व मोह के कलुषित परिणामों को समाप्त कर दें तो मस्तिष्क की कोशिकाएँ सक्रिय होने लगतीं हैं, यदि विषय, भोग, अहंकार, क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणामों में लिप्त हो जायें और आनंद मनाने लगें तो कोशिकाएँ निष्क्रिय होने लगतीं हैं। साधु-संत तपस्या व ध्यान के द्वारा कोशिकाओं को सक्रिय करते हैं जब सारी कोशिकाएँ धीरे-धीरे सक्रिय हो जाती हैं तब प्रज्ज्वलित होकर ज्ञान बढ़ते-बढ़ते अनंत ज्ञान में प्रस्फुटित हो जाता है।

ऊर्जा का केन्द्र हमारा हृदय है जब हम अच्छा-अच्छा विचारते हैं, परमात्मा का ध्यान करते हैं, संतों का स्मरण करते हैं, क्षमा, मार्दव, आर्जव शौच आदि के उज्ज्वल निर्मल परिणाम करते हैं तो हमारी ऊर्जा शक्ति ऊपर की ओर उठती हुई मस्तिष्क का विकास करती है जिससे हम ज्ञानवान व शक्तिवान् हो जाते हैं। कई शक्तियाँ हमारे मस्तिष्क में निवास करने लगती हैं। लेकिन जब यह ऊर्जा शक्ति नीचे की ओर बुरे विचारों से, क्रोध मान आदि के भावों से, वासनिक संस्कारों से बहती है तो ऊर्जा नष्ट हो जाती है, मस्तिष्क खाली हो जाता है जिससे व्यक्ति का ज्ञान क्षीण हो जाता है तथा शक्ति भी क्षीण हो जाती है तब कोशिकाएँ निष्क्रिय हो जाती है जिससे ज्ञान घटता हुआ होता है इसलिये शक्ति व ज्ञान को बढ़ाना है तो हृदय में प्रेम को बढ़ाओ तथा श्रेष्ठ विचारों को स्वयं में उत्पन्न करो।

फूल कितना भी सुंदर हो, तारीफ खुशबू से ही होती है।
आदमी कितना भी बड़ा हो, तारीफ गुणों से होती है।।

74. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ऋषिगण बताते हैं कि यदि हम हिंसक सामग्री से बनी शृंगार की वस्तु की अपेक्षा आभूषणों से अपना शृंगार करें तो शरीर स्वस्थ रहता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! यदि हम माथे पर तिलक लगाते हैं तो हमारा आज्ञाचक्र हमेशा जागृत रहता है, हमारी ऊर्जा का अत्यधिक व्यय नहीं होता है, चेहरे की सुन्दरता बढ़ती है। कानों में कुंडल पहनते हैं तो हमें शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञान बढ़ता है, शरीर की कमजोरी दूर होती है, लम्बे कान शुभ होते हैं, जितने लम्बे कान होंगे उतने अधिक हम शक्ति सम्पन्न होंगे।

नाक में नथनी पहनने से ऊर्जा का संग्रह होता है, ऊर्जा को नियंत्रित करने के लिये गले में हार व नाभि के नीचे अधोभाग के ऊपर करधनी पहनते हैं महिलाओं में करधनी का उपयोग मासिक स्राव को नियमित और नियंत्रित करने के लिये होता है इससे गर्भपात आदि की सम्भावनाएँ कम होती हैं। अँगुलियों में पहनी गईं अँगूठियों का भी महत्त्व है। सिर दर्द, आँख की तकलीफ, सर्दी, जुकाम, बुखार आदि के बिन्दु हमारी अँगुलियों में हैं तथा अनेक प्रकार की ज्ञान मुद्रा, अपान मुद्रा, ध्यान मुद्रा, प्राण मुद्रा, शून्य मुद्रा, नमस्कार मुद्रा व अनुशासन आदि अनेक मुद्राएँ हैं जिनके द्वारा अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं। जब हम अँगुलियों में अँगूठी पहनते हैं तो वो प्वाइण्ट दबते हैं जिससे हमारा शरीर स्वस्थ व मन प्रसन्न होता है।

आचार्यों ने कहा है कि स्त्री के शृंगार के आभूषण सोलह हैं तो पुरुष के शृंगार के आभूषण चौदह हैं। शृंगार की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, पहले भी लोग शृंगार करते थे तब अहिंसा को दृष्टि में रखकर शृंगार करते थे वर्तमान में शृंगार की प्रक्रिया ही बदल गयी आज का शृंगार बिना हिंसक सामग्री के होता ही नहीं है।

आज महिलाएँ व बालिकाएँ इन हिंसक सामग्रियों का उपयोग क्यों करती हैं। इसका एक कारण है दूसरों को उल्लू बनाने के लिए। फर्श, दीवाल, मकान आदि खुरदरा हो जाये, पुराना पड़ जाये तो भद्दा लगने लगता है तो पेंट करवाते हैं टाइल्स आदि लगाकर सुंदर बनाते हैं वैसे ही महिलाएँ भी अपनी बदसूरती को छिपाने के लिये इन हिंसक सामग्रियों का प्रयोग करती हैं। अत: भारतीय संस्कृति को कायम रखते हुये प्रकृति से बने अहिंसक प्रसाधन सामग्रियों का ही प्रयोग करना चाहिये।

75. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शास्त्रों में लिखा है तन की प्रसन्नता रोटी कपड़ा मकान, मन की प्रसन्नता प्रभु भक्ति, चेतन की प्रसन्नता ज्ञान, दर्शन, चारित्र है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! तन की प्रसन्नता का कारण पेट भरने के लिए रोटी, तन ढकने के लिए वस्त्र, रहने के लिए आवास, धन कमाने को व्यापार ही है। मानव ये चार चीजों को जुटाने में अपना सम्पूर्ण जीवन भागादोड़ी, माथाफोड़ी, हाथाजोड़ी में लगा रहता है तथा अंत में मरण को प्राप्त हो जाता है कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

मन की प्रसन्नता प्रभु भक्ति, प्रभु स्मरण, गुरुओं की सेवा में निहित है। इससे मन प्रफुल्लित रहता है, स्वस्थ रहता है, खुश रहता है जब प्रभु से लगाव हो जाता है तो मन बार-बार उसी में रम कर आनंदित होता है।

चेतन की प्रसन्नता ज्ञान दर्शन, चारित्र व तप की आराधना में है, चेतन हमेशा सत्य को स्वीकार करता है, सत्य में जीता है, चेतन स्वयं भी जागता है दूसरों को भी जगाता है, चेतन स्वाधीन है तन पराधीन है, मन स्वाश्रित व पराश्रित दोनों हैं। मन को हम तन की सेवा में लगायेंगे तो मन तन की तरफ दौड़कर अपना काम करेगा, मन को चेतन की तरफ मोड़ेंगे तो मन चेतन की सेवा करने को भागेगा। अत: तन की सेवा न करके मन को शांत करो, स्थिर करो फिर चेतन का ध्यान करो, ज्ञान दर्शन को प्राप्त करो इसी में चेतन की प्रसन्नता है। जैसे - डॉ. मरीज के इलाज का निदान करने में ही प्रसन्न है विद्यार्थी अध्ययन करके सर्वश्रेष्ठ अंक पाने में ही प्रसन्न है। वैसे ही चेतन को प्रसन्न करने की दवा है ध्यान व योग इससे ही चेतन की अन्तरंग व बहिरंग प्रसन्नता है। अत: तन की प्रसन्नता भोजन, मन की प्रसन्नता व्यायाम व चेतन की प्रसन्नता ध्यान है, ध्यान के द्वारा ही आत्मा को असीम सुख प्राप्त होता है।

इंसान को जीवन का सार तब ही समझ में आता है।
जब जग से जीत जाता है पर खुद से हार जाता है।।

76. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया परमात्मा की पूजन वन वे (oneway) आहार दान टू इन वन तथा गुरु की भक्ति व सेवा थ्री इन वन है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो भक्त, श्रावक, जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक, पूजन, विधान आदि श्रद्धाभक्ति पूर्वक सच्चे दिल से करता है उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है अर्थात् वह भविष्य में सच्चे देव पर यथार्थ श्रद्धान करके देवगति जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि प्रभु का अभिषेक पूजन आदि वन वे हैं। संतों को आहार दान देने से प्रथम भोगभूमि व पश्चात् देवगति प्राप्त होती है अर्थात् संतों को आहार दान देना टू इन वन कहा है तथा जो संतों की सेवा करता है, वैयावृत्ति करता है, ज्ञानार्जन करता है उसे स्वर्ग, मोक्ष व भोगभूमि इन तीनों की प्राप्ति होती है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की प्राप्ति होती है इसलिए गुरु की सेवा को थ्री इन वन कहा है।

परमात्मा के वास्तविक दर्शन तो उनके स्वरूप को देखने से एकटक पलक न झपकाये प्रभु की मुद्रा देखने से, सच्ची श्रद्धा करने से है हे भगवन! जैसा रूप आपका है वैसा ही हमारा है, हम भी आप जैसे रूप को पाना चाहते हैं। इस तरह जो सच्ची श्रद्धा करके अपने स्वरूप का भान करता है तब ही सम्यग्दर्शन जैसे दुर्लभ रत्न की प्राप्ति हो जाती है तथा जो भव्यात्मा चारों प्रकार के भोजन का त्याग करके श्रमण श्रमणियों को पहले आहार देते है बाद में स्वयं भोजन करके आनंद मनाते हैं, प्रतिदिन आहारदान देकर खुश होते हैं ऐसे भव्य मिथ्यादृष्टि भद्र प्राणी मरणकर भोगभूमि जाकर भोग सामग्री को गिफ्ट में प्राप्त कर लेते हैं पश्चात् वहाँ से मरण कर देवगति के सुखों को प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार जो भव्यात्मा साधुओं की बिना इच्छा के सेवा करते हैं साधु की साधना में आयी हुई बाधा को दूर करने का प्रयास करते हैं, आहार–निहार, विहार में सम्मिलित होते हैं, औषधिदान आदि देकर समय–समय पर सेवा करते हैं ऐसे श्रावकों को तीनों रत्नों की प्राप्ति हो जाती है। अतः परमात्मा का दर्शन वन वे, आहारदान टू इन वन व निर्ग्रन्थ की सेवा थ्री इन वन है।

77. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जैन संतों को समाधि के पश्चात् अंतिम संस्कार के लिये डोली में बिठाकर ले जाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! संत इस दुनियाँ में जीते जागते हुये महापुरुष हैं, संत वह हैं जो सागर की तरह बहते हैं, फूलों की तरह खिलते हैं, आसमान की तरह उठते हैं, हमेशा खुश रहते हैं इसलिये जब संसार से विदा लेते हैं तो हँसते हुये विदा लेते हैं। संत सभी के लिये यह संदेश देते हैं दुनियाँ में जिओ हंस की तरह मरो तो परमहंस की तरह, संत सदैव जीवित रहते हैं, संत को हमेशा स्मरण किया जाता है और जिसको याद किया जाता है वह मरा हुआ भी जीवित है, साधु को समाधिमरण के पश्चात् भी हमेशा स्मरण किया जाता है। जैसे आचार्य कुंदकुंद, आ. मानतुंग, आ. समन्तभद्र, आ. विमलसागर जी, आ. सन्मतिसागर आदि संतों को आज भी स्मरण किया जाता है तथा आगे भी स्मरण किया जायेगा इसलिये संत सल्लेखना धारण करके अंत समय में चारों प्रकार के आहार का त्याग करके सभी जीवों से क्षमायाचना करते हुये आत्मध्यान में स्थिर हो, पंच परमेष्ठियों का स्मरण करते हुये बैठे-बैठे हँसते हुये देह का त्याग करते हैं, खुशी से अपने प्राणों का विसर्जन करते हैं। इसलिये भव्य प्राणी खुशी से साधु को डोली में प्रभावना पूर्वक शोभायात्रा के साथ लेकर जाते हैं। संतों को श्मशान नहीं ले जाते नसियाँ जी (निषधिका) में ले जाते हैं, नारियल, गोला, चंदन की लकड़ी, कपूर आदि से देह का विसर्जन अर्थात् अंतिम संस्कार किया जाता है। उसी स्थान पर चरण वंदना हेतु छतरी बनाकर चरण स्थापित किये जाते हैं सभी भव्यजन उसकी वंदना करते हैं।

अतः जो रत्नत्रय से पवित्र हैं, अपने आवश्यकों के प्रति जाग्रत हैं जिन्हें जीवन व मरण की कोई चाह नहीं हैं, जो संयम, तप, त्याग में दृढ़ हैं, जो अपने जीवन का अंत समझकर पूर्व से ही गुरु आज्ञा से 12 वर्ष से सल्लेखना रत हैं ऐसे साधु अन्न, रस, जल आदि का क्रमशः त्याग करके अन्त समय में गुरुमुख से व स्वयं पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुये देह का त्याग करते हैं तब सारी समाज मिलकर हर्षोल्लास पूर्वक प्रभावना के साथ अंतिम संस्कार करती हैं।

78. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया जो भी महिलाएँ व बालिकाएँ नेलपॉलिश व लिपिस्टिक लगाती हैं वे हिंसक पर्याय से आयीं हैं अथवा हिंसक पर्याय में जाएगीं, ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! महिलाएँ व बालिकाओं को दो चीजों का शौक बहुत अधिक होता है है वो हैं नेलपॉलिश व लिपिस्टिक इनके बिना महिलाओं व बालिकाओं का मेकप अधूरा है यदि ये न लगायें तो उनका शृंगार पूर्ण नहीं होता और भोजन भी नहीं पचता क्योंकि नाखूनी लगी अँगुलियों से भोजन करने का स्वाद बढ़ जाता है क्योंकि नाखूनी में भी खून है तथा लिपिस्टिक में भी खून है। ऐसे लोगों को खून पीने में आनंद आता है इसलिये लिपिस्टिक और नाखूनी दोनों को चाटते हैं, स्वाद लेते हैं। जिस प्रकार हिंसक जानवरों को खून पीने में आनंद आता है वैसे ही इन महिलाओं व बालिकाओं को भी आनंद आता है, जानवर तो हिंसक है पर ये उनसे भी बड़ी हिंसक हैं।

जो महिलाएँ, बालिकाएँ, नाखूनी व लिपिस्टिक लगाती हैं वे हिंसक पर्याय से आयी है या जाने की तैयारी कर रही हैं, जो पूर्व पर्याय में खून पीतीं थीं व माँस खातीं थीं अब मानव की पर्याय मिली है तो साक्षात् खून पी नहीं सकती इसलिये नाखूनी व लिपिस्टिक के माध्यम से ही उसका सेवन करतीं हैं इन्हें उन प्राणियों पर दया नहीं आती जिनको मारकर इनके लिये नाखूनी तैयार होती है। हजारों बड़ी भारी व्हेल मछली को तड़फा-तड़फाकर मारा जाता है उससे जो तेल निकलता है उनसे आपके नाखून को सजाने के लिये नाखूनी बनतीं है। ज्यादा शाइनिंग वाली नाखूनी के लिये छोटी-छोटी हजारों लाखों मछलियों को मार दिया जाता है जिसे आप लगाकर अँगुलियों की शोभा बढ़ाती हैं। नाखूनी में टोल्यूशन, फार्मल डी. हाइडेरिसन, आइसो प्रोपाइल, अल्कोहल स्प्रिट आदि अनेक हानिकारक रसायन डालते हैं जो अपना कुप्रभाव छोड़ते हैं जिनसे चर्म रोग, खाज-खुजली, सिर दर्द, चक्कर, उल्टी आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ उभरकर आती हैं। लिपिस्टिक बड़े प्रेम से लगाती हैं प्राकृतिक सौन्दर्यता से उन्हें लाल होंठ मिले थे पर काले भद्दे करने का प्रयास करती हैं जो स्त्रियाँ लिपिस्टिक लगाकर घूमती हैं, भद्दी व गंदी दिखती हैं लिपिस्टिक लगाने में एक तो बहुत से जीवों की हिंसा है, दूसरे हमारे होठों पर लगती है तो जो कुछ भी हम खाते या पीते हैं उसके साथ जो लिपिस्टिक लगाकर निगलते हैं जिससे बीमार हो जाते हैं और माँसाहार करने का दोष भी लगता है।

79. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! इंसान के पास अनेक शक्तियाँ हैं पर सबसे बड़ी संकल्प की शक्ति व आत्मा की शक्ति है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! इंसान की सबसे बड़ी शक्ति संकल्प शक्ति है। जब मानव संकल्प पूर्वक कोई कार्य करता है तभी लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इंसान की सफलता का राज संकल्प और उसका पुरुषार्थ है फिर वह कोई भी संकल्प ले यदि आप पढ़ाई में कमजोर हैं संकल्प कीजिये इस वर्ष हम प्रथम डिवीजन लायेंगे इसके लिये कुछ भी करना पड़े, यदि आप रात्रि में भोजन करते हैं तो आप मजबूती से संकल्प कीजिये रात्रि भोजन नहीं करेंगे लिये हुये संकल्प और दिये हुये वचन को हर हाल में निभाइये। उसके लिये प्राण भी देना पड़े तो दे दो पर लिया गया संकल्प मत तोड़ो। कहा भी है लोहा पत्थर को भी तोड़ सकता है, आग लोहे से भी ज्यादा शक्तिशाली है जो लोहे को भी पिघला देती है, पानी आग से भी ज्यादा ताकतवर है जो आग को भी बुझा देता है पर इंसान की संकल्प शक्ति, पत्थर, लोहा, आग और पानी से भी ज्यादा शक्तिशाली है जो इन चारों को वश में करके दिगम्बर साधु की दीक्षा लेकर सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष महल का राजा होता है अर्थात् संकल्प के कारण ही इंसान सर्व कर्मों से विमुक्त होता हुआ निर्वाण को प्राप्त करके अनंत सुख में लीन हो जाता है, संकल्प के सामने सभी हार जाते हैं। कहते हैं– एक सम्यग्दृष्टि जीव में इतनी शक्ति है कि वह हजार मिथ्यादृष्टियों को हरा देता है और उन्हें भी सम्यक्त्व दिला देता है जैसे–चेलना ने राजा श्रेणिक को मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि बनाया तथा तीर्थंकर प्रकृति का बंध करा दिया।

अत: संकल्पवान् ही आत्मा की अनंत शक्ति को प्रकट करा के भगवत्तता की प्राप्ति करा देता है।

संकल्प करो मन में तो शक्ति आयेगी।
संघर्ष करो हरदम मुक्ति मिल जायेगी।।
पुरुषार्थ करो चेतन पावन बन सकता है।
दु:ख दर्द भरा जीवन सावन बन सकता है।।

80. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है, पढ़ा है पूर्व व उत्तर दिशा की ओर पैर करके सोना चाहिये ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! पूर्व दिशा पूर्वजों की दिशा है, संस्कृति की दिशा है, सम्मेद शिखर तीर्थराज पूर्व दिशा में है पूर्व दिशा नमस्कार की दिशा है, सूर्योदय की दिशा है वहाँ से हमें ऊर्जा मिलती है, एनर्जी मिलती है इसलिये हमारे पैर सोते समय पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए।

उत्तर दिशा समाधान की दिशा है, हमारे मन के विकल्प को शान्त करने की दिशा है, उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र हैं जहाँ बीस तीर्थंकर भगवान हमेशा विद्यमान रहते हैं मन के तंतु उनसे जुड़ जाते हैं जिससे एनर्जी मिलने लगती है जहाँ से ऊर्जा अधिक प्राप्त हो उसी तरफ पैर करना चाहिये, उत्तर दिशा ऊर्जा की दिशा है इसलिये उत्तर दिशा की तरफ पैर करते हैं, पश्चिम की तरफ पैर करके सोने से भोग विलास, इन्द्रिय विषयों के गंदे स्वप्न दिखायी देते हैं, स्वप्नदोष जैसी बीमारियाँ भी अधिक होती हैं, दक्षिण दिशा की ओर पैर करके सोने से डरावने स्वप्न दिखायी देते हैं, भूत प्रेत, व्यंतर, राक्षस आदि के भयानक स्वप्न आते हैं, दक्षिण दिशा तंत्र-मंत्र की दिशा है इसलिये पश्चिम व दक्षिण दिशा की तरफ पैर करके शयन नहीं करते हैं।

दरवाजे के ठीक सामने बिस्तर नहीं होना चाहिये, बीम आदि के नीचे भी बिस्तर नहीं होना चाहिये, पंखे के नीचे बिस्तर नहीं होना चाहिये, वैज्ञानिक दृष्टि से यदि सर के ऊपर कोई भारी वस्तु रखी हो तो सिर भारी हो जाता है, आध्यात्मिक दृष्टि से जहाँ से ऊर्जा आती है उसके सामने या नीचे खड़े हो जाओं। अधिक ऊर्जा के कारण सहन न होने के कारण बीमार भी हो सकते हैं तथा व्यवहारिक दृष्टि से यदि किसी कारण से पंखा टूटकर गिरा तो आपका मरण भी हो सकता है वास्तु के अनुसार शयन कक्ष दक्षिण दिशा में होना चाहिये।

जब हम गलत होते हैं तब समझौता चाहते हैं जब हम सही होते हैं तो इंसाफ चाहते हैं।

81. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी–किसी की स्मरण शक्ति, याददाश्त कमजोर अथवा पढ़ी हुई विद्या गायब हो जाती है? व किन्हीं किन्हीं की याददाश्त बढ़ती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे वत्स! ज्ञान व दर्शन में दोष, धर्मात्मा के द्वारा अथवा सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा की गई तत्त्वज्ञान की प्रशंसा नहीं सुहाना, ईर्ष्या करना, जानकारी होते हुये भी अपने ज्ञान को छुपाना कि हमसे ज्यादा ज्ञान हो जायेगा तो ये ज्ञानी हो जायेगा, पढ़ते हुये या अभ्यास करते हुये के ज्ञान में विघ्न डालना पुस्तक छिपा लेना, पुस्तक बंद करने आदि कारणों से दूसरे के द्वारा प्रकाशित किये जाने वाले ज्ञान को रोक देना, प्रशस्त ज्ञान में दोष लगाने से प्रदोष आदि भावों के द्वारा जो ज्ञानावरणादि विशेष कर्मों का बंध होता है इन कारणों से याददाश्त कमजोर हो जाती है व मेमोरी गायब हो जाती है।

कोई भी पुस्तक पढ़ी अभ्यास नहीं किया, बार–बार चिंतन नहीं किया तो विद्या गायब हो जाती है जैसे– मोबाइल में कोई चीज देखी, लोड नहीं किया, सेव भी नहीं किया तो सब डिलीट हो जाता है जिसे कभी नहीं देख सकते कुछ भी पढ़ें, सुनें उसका अभ्यास करें, चिंतन करें, शंका प्रतिशंका करें, आँख बंद करके मन को एकाग्र करें, सर्व विकल्पों का त्याग करके स्मरण करें, जब तक याद न आये तब तक मेमोरी को उसमें लगाये रखें इससे याददाश्त बढ़ती है जैसे– मोबाइल को चार्ज करने पर, लोड करने पर, सेव करने पर डाटा उसी में रहता है जब चाहो तब देख सकते हैं।

जब टेंशन में याद करते हैं तो मस्तिष्क में तीन खड़ी लकीर आती हैं जिससे देर तक पढ़ने पर भी याद नहीं होता दूसरे की निंदा करने पर खड़ी लकीर मस्तिष्क पर दिखायी देने लगती है तथा जो टेंशन फ्री होकर संसार के विकल्पों को छोड़कर अध्ययन करते हैं, याद करते हैं तो मस्तिष्क में तीन आड़ी रेखा दिखायी देती है जिससे जो भी पढ़ते है वह तुरंत याद हो जाता है। ज्ञानी की विनय व सम्मान करने से जल्दी याद होता है, दूसरो को सुनाने से व याद किया हुआ बड़े व्यक्ति को सुनाने से कभी नहीं भूलते। ज्ञान का उपकरण दान देने से तत्काल व परभव में वह महाज्ञानी होता है।

कौण्डेश ग्वाला जो पढ़ना भी नहीं जानता था शास्त्र क्या होता है कैसा होता है ग्वाले को पुण्योदय के कारण जो शास्त्र मिला उसने वह शास्त्र बड़े ही शुद्धभावों से श्रद्धा, भक्ति विनयपूर्वक लघुता प्रकट करते हुए मुनिराज को दान स्वरूप दे दिया। मुनिराज ने ग्वाले को एक मंत्र दिया मंत्र का स्मरण करते–करते मरण को प्राप्त हुआ। दान के प्रभाव से परभव में ग्वाला मरकर महाज्ञानी आचार्य कुंदकुंद हुये जिसे सर्वज्ञ के नाम से हम सभी जानते हैं।

82. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! लोग कहते हैं कि बड़े जनों के, माता–पिता के, गुरु के चरण स्पर्श करना चाहिए व हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिये ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! हमारी भारतीय संस्कृति है चरण छूने की पाश्चात्य संस्कृति चेहरे को देखने की है, चेहरा वासना पैदा करता है और चरण आचरण प्रदाता है क्योंकि चरण से ही आचरण प्राप्त होते हैं साधु संत जो साधना करते हैं उनकी सारी ऊर्जा पैर के अँगूठे में आ जाती है वह चरण का अँगूठा जब हम अपने आँखों से लगाते हैं तो उनकी ऊर्जा हमें प्राप्त होने लगती है यदि हम चरण छूने की परम्परा को अपनाते हैं तो हमारे चरण दुराचरण की ओर नहीं बढ़ते सदाचरण की ओर बढ़ते हैं। झुककर चरण छूने से हमें बड़ों का आशीर्वाद व दुआएँ मिलती हैं जिससे जीवन उन्नत होता है एवं सभी कार्य निर्विघ्न हुआ करते हैं। स्नेह, प्रेम, वात्सल्य भी मिलता है जिससे हमारा अहंकार गलता है तथा शरीर व मन प्रसन्न रहता है तथा हम हर कार्य में सफल व आशावादी होते हैं।

प्रात:काल उठकर माता–पिता व गुरु को हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिये, हाथ जोड़ना ऊर्जा का अन्तर्गमन है, हाथ मिलाना ऊर्जा का बर्हिगमन है, हाथ जोड़ने से ऊर्जा का संचय होता है, हाथ मिलाने से शक्ति का व्यय होता है, हाथ जोड़ने से विनय व समर्पण भावों की अभिव्यक्ति झलकती है, हाथ जोड़ने से प्रेम, वात्सल्य का समन्वय होता है, हाथ जोड़ने से अपने में लौटना है और हाथ मिलाने से बाहर की ओर भागना है। हाथ जोड़ने के लिए कहा है–

चार मिले चौंसठ खिले, मिले बीस कर जोड़।
सज्जन तैं सज्जन मिले, हर्षे रोम करोड़।।

जब दो व्यक्ति मिलते हैं, उन दोनों की दो–दो आँखें मिलकर चार आँखें मिलती हैं और दोनों के बत्तीस–बत्तीस दाँत मिलकर चौंसठ दाँत व दोनों हाथ जोड़कर जब एक दूसरे का अभिवादन करते हैं तो शरीर में जो करोड़ों रोम हैं वे हर्ष से आनंदित हो जाते हैं।

आज वर्तमान में प्रणाम व नमस्कार की पद्धति में परिवर्तन हो गया है। माता–पिता व गुरुजनों की अपेक्षा जिनसे हमारा काम बनता है स्वार्थ की पूर्ति हेतु उन्हें प्रणाम व नमस्कार करते हैं। अत: हम सभी को सभ्य, सुसंस्कारित आचरण बनाने के लिये माता–पिता, गुरुओं के चरण स्पर्श व प्रणाम करना चाहिये तथा आपस में सभी से जय जिनेन्द्र अवश्य बोलना चाहिये।

83. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! हम संसारी प्राणियों को घर में रहते हुये सम्यक्त्व हो सकता है, यदि होता है तो ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो संसारी संसार में रहकर भी संसार में नहीं रहता, जो प्राणी घर में रहते हुये भी वैरागी है, घर को घर नहीं समझता है, घर में रहकर भी विरक्त रहता है उसे घर में रहना पड़ता है रहता नहीं है। जैसे – कमल कीचड़ में खिलता है फिर भी कीचड़ से ऊपर रहता है संत संसार में रहता है फिर भी संसार शरीर भोगों में आसक्ति नहीं रखता अपने स्वभाव का चिंतन करता है, संसार से भिन्न अकेले जीता है वैसे ही जो प्राणी घर में तो रहता है सदाकाल षट् कर्त्तव्यों का पालन करता है, सदा घर से निकलने के भाव बनाता है, मुनि–आर्यिका बनने को तैयार रहता है ऐसे प्राणियों को घर में रहते हुये भी सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। घर में यदि साधन में जिओगे, साधन में मरोगे तो दुविधाएँ अधिक होंगी, साधना नहीं होगी दीक्षा की भावना नहीं बनेगी तो सम्यक्त्व नहीं होगा।

दुविधाओं में से सुविधाएँ निकाल लेना सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन के लिये विषय भोगों को, घर परिवार को, मित्रों को, पत्नि को छोड़ना आवश्यक नहीं है देव–शास्त्र–गुरु पर श्रद्धान व आत्म अनुभव करना आवश्यक है। इसलिये सम्यक्त्व रूपी रत्न को पाने के लिये देव–शास्त्र–गुरु पर दृढ़ श्रद्धा रखो।

जो घर पर रहकर सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें श्रावक के व्रतों का पालन करना चाहिये। घर में रहते हुये भी भरत चक्रवर्ती की तरह विरागी होना चाहिये। भरत जी घर ही में वैरागी यह कहावत है। यह सच है भरत जी छः खण्ड के अधिपति थे, 96 हजार रानियाँ थीं, अतुल सम्पदा के मालिक थे फिर भी उनमें आसक्त नहीं थे। जब कर्त्तव्य करते थे तब सब कुछ भूल जाते थे, ध्यान करते थे तब शरीर का मोह भी छोड़कर परमात्मा का व स्वयं की आत्मा का चिंतन करते थे इसलिये घर में रहते हुये भी सम्यग्दृष्टि थे, हम भी यदि घर में रहते हुये सम्यक्त्व पाना चाहते हैं तो हम भी घर को घर न समझें, पत्नि, पुत्र, पुत्री, परवस्तु को अपना न समझे। भावना भाये कि– **कब हम मुनि बन वन विचरेंगे।** वह कौनसा दिन होगा जिस दिन सब कुछ छोड़कर निग्रंथ बनकर ध्यान करेंगे कब सुख, शांति, आनंद की अनुभूति होगी ऐसा जो विचार करते हैं वही भव्य प्राणी घर में रहते हुये भी सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

84. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जैन संतों की समाधि के पश्चात् अंतिम संस्कार के समय तीन दिन तक पिच्छी कमंडल पेड़ पर लटकाये जाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान –हे भव्यात्मन्! जैन संतों की समाधि के पश्चात् तीन दिन तक पिच्छी कमंडल इसलिये लटकाये जाते हैं क्योंकि जैन संत महाव्रतों को धारण करके अन्त में सल्लेखना पूर्वक सर्व विकल्पों को समाप्त करके सर्व जीवों से क्षमा याचना करके देह का त्याग करते हुये समाधिपूर्वक मरण कर देवगति में गमन करते हैं।

व्रती की केवल एक गति देवगति है इसलिये वो संत देव पर्याय में पहुँचकर नंदीश्वर आदि की वंदना करने निकलते हैं, तब उस रास्ते में लटकी हुई पिच्छी को देखकर अवधिज्ञान के द्वारा जानते हैं तत्पश्चात् पेड़ पर लटकी पिच्छी को देखकर अपनी भावांजलि प्रस्तुत करते हैं– पहले मैं मुनि था व्रतों का पालन करता था, समाधिपूर्वक मरण करके मैं देव बना हूँ। पूर्व संस्कार स्मरण आते ही नंदीश्वर की वंदना, स्तुति, पूजा, विधान आदि करने जाता है, पंचमेरु, नंदीश्वर, कैलाशपर्वत समवशरण में भगवान के दर्शन करने जाता है, विधान आदि करके पुण्य को बढ़ाता है स्वयं को सौभाग्यशाली महासौभाग्यशाली समझता है तथा तत्त्वचर्चा आदि करता है। अवधिज्ञान के द्वारा जानता है कि मैं पूर्व में मुनि था, संयमी था, तपस्वी था आज मेरे पास संयम नहीं है, व्रत नहीं हैं इसलिये मैं दुःखी हूँ, दुःख व्यक्त करते हुये कहता है– मैं कहाँ ये भोगों में लग गया हूँ ये भोग अच्छे नहीं लगते ऐसे विशुद्ध परिणामों को करता है, पुनः संयम के भाव बनाता है और भोग भोगते हुए भी विरक्त रहता है, आगामी भव में संयम धारण करूँगा ऐसी भावना दृढ़ करता है। अतः संयम की संतति जीव में अक्षुण्ण बनी रहे, संयम का घात न हो, स्मरण बना रहे, आगामी भव में सुधार हो इस हेतु पिच्छि कमण्डल को पेड़ पर लटकाते हैं।

खुदा के भरोसे पर तु किस्मत का लिखा पाएगा।
खुद के भरोसे पर वही लिखेगा जो तू चाहेगा।।

85. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! स्वर्गों के देवेन्द्र स्वर्ग में सुखी व खुश रहते हैं तब भी परभव में एकेन्द्रिय की निंद्य पर्याय में जन्म लेते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! देव सदाकाल भोग विषयों में, इन्द्रिय सुखों में रत रहते हैं, जैसा चाहते हैं वैसे उत्कृष्ट फल की प्राप्ति भी हो जाती है इसलिये आनंदित रहते हैं। 31 सागर की आयु भी व्रत संयम के बिना सुखपूर्वक बिताते हैं, चेहरे पर कोई मलिनता नहीं रहती, कोई विकल्प भी नहीं रहता, लेकिन जब देवों को यह ज्ञात होता है हमारी उम्र मात्र 6 माह की शेष है तब माला मुरझाने लगती है तब मन बहुत दुःखी व संक्लेशित होता है, रोता है, चिल्लाता है, मरना नहीं चाहता, अधिक सुखों को भोगना चाहता है। 6 माह की आयु पूर्ण होते ही अत्यधिक संक्लेशित भावों से मरण कर एकेन्द्रिय जीवों में जन्म लेता है यही कारण है देवों का इन्द्र भी एकेन्द्रिय पर्यायों के दुःखों को भोगता है, मिथ्यादृष्टि देव संक्लेश परिणाम करके एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म लेता है सम्यग्दृष्टि देव संज्ञी पंचेन्द्रिय कर्मभूमि के मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

मिथ्यादृष्टि देव संक्लेश परिणामों से मरण कर सभी एकेन्द्रियों में जन्म नहीं लेते। सूक्ष्म एकेन्द्रियों, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक व अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते हैं। बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर में भी शुभ अंग वालों में उत्पन्न होते हैं। कन्दमूल, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल और पत्र इन सातों में उत्पन्न नहीं होते, लेकिन पुष्प, फल, व बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं क्योंकि अभी भी उनके पुण्य शेष हैं। इसी प्रकार पृथ्वी कायिकों में भी बहुमूल्य धातुओं जैसे – हीरा, माणिक, मोती, पन्ना आदि पर्यायों में उत्पन्न होते हैं अन्य पृथ्वी कायिकों में उत्पन्न नहीं होते।

अतः संक्लेशता को छोड़कर निम्न एकेन्द्रिय पर्याय में जन्म न लेना पड़े इसलिये परिणामों में समता, संतोष व शांति को धारण करना चाहिये जिससे एकेन्द्रिय पर्यायों के दुःखों से बच सकें।

काम चलता नहीं खताओं से, दिल नहीं खुश हुआ दवाओं से।
तुम मिले तो सब कुछ मिल जाता, खुशी मिलती तेरी दुआओं से।।

86. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** आपने बतलाया शरीर शमशान की अमानत है तथा आत्मा परमात्मा की अमानत है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! मृत्यु होने के पश्चात् आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश कर लेती है, पूर्व शरीर मरघट ले जाकर जला देते हैं। मनुष्य के शरीर का अन्य कोई प्रयोग नहीं होता, प्राण निकलने पर शरीर को अछूत माना जाता है कोई भी स्पर्श नहीं करना चाहता, मलमूत्र तो औषधि के काम में आता है इसलिये अन्य वस्तुओं में प्रयोग कर लेते हैं पर शरीर कोई काम नहीं आता इसलिये शमशान के हवाले कर देते हैं इसलिये शरीर श्मशान की अमानत है। तन पर पदार्थों को पाकर संतुष्ट हो जाता है, चेतन असंतुष्ट बना रहता है, तन का काम होने पर चेहरा खिल जाता हैं चेतन रो उठता है तथा चेतन का काम होने पर तन मलिन हो जाता है, तन मलिन है क्योंकि खून, माँस, हड्डी आदि मलिन वस्तुओं से निर्मित है, चेतन प्रकाशमान है मलिन नहीं है, तन west है, मलिन है, खराब होने के बाद बदबूदार है इसलिये तन मरघट की अमानत है, इसका अंतिम पड़ाव मरघट है, मरघट की अमानत हमें कुछ समय के लिये उपहार स्वरूप मिली है कर्ज के रूप में, कर्ज को पराया धन समझें और शमशान को सौंप दें क्योंकि तन से अशुद्ध वस्तु दुनियाँ में कोई नहीं है हर वस्तु तन के संयोग से अशुद्ध हो जाती है और चेतन के संयोग से सभी शुद्ध हो जाते हैं अत: चेतन परमात्मा की धरोहर है।

तन में चेतन का मिला रूप संसारी प्राणी का है, तन में चेतन का निवास है जब तन चेतन के साथ मिल जाता है तब शुद्ध वर्गणाओं को प्राप्त करके परमात्मा की अमानत हो जाता है तथा जब यह तन पर पदार्थों की ओर भागता है उनसे मोह करके पर पदार्थों को अपना समझता है तब यह मन श्मशान की अमानत है। अत: परमात्मा की अमानत को पहचान कर यदि अपनी अमानत को नहीं पहिचाना तो इस संसार से जमानत भी नहीं होगी अपनी अमानत को अपना मित्र बनाओ तभी अपनी अमानत की अर्थात् आत्मस्वरूप की सच्ची पहचान हो सकेगी।

87. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! प्रभु की सच्ची भक्ति से सम्यक्त्व की युक्ति संसार से विरक्ति तथा मनोवांछित रुप की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे मनीषी आत्मन्! सुंदर रूप प्राप्त करने के लिये व्यक्ति अनेक उपाय करते हैं, कई घण्टे दर्पण के सामने निकाल देते हैं, अनेक प्रकार के शृंगार करके अपने रूप को सुंदर बनाने का प्रयत्न करते हैं फिर भी अपने मन के अनुसार रूप प्राप्त नहीं कर पाते क्योंकि ये सभी उपाय सुंदर रूप प्राप्त करने के नहीं हैं। सुंदर रूप प्राप्त करने के लिये प्रभु भक्ति करें जो दुनियाँ में सबसे अधिक सुंदर हैं, सबसे अधिक ताकतवर हैं तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है। एकमात्र भक्ति ही है जो सुंदर रूप प्राप्त कराने में समर्थ है। **भक्तेः सुन्दर रूपं** (रत्न श्रा.गा. 115) परमात्मा की सच्चे दिल से भक्ति करने से सुंदर रूप की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व की युक्ति संसार से विरिक्त दिलाती है। भक्ति का अर्थ नाचना, गाना, ढोल बजाना, शोर मचाना आदि नहीं है, भक्ति का अर्थ – **'पूज्येषु गुणानुरागो भक्ति'** पूज्यों के गुणों में अनुराग होना भक्ति है, गुणों को पाने की लालसा होना भक्ति है हम भी इन गुणों को प्राप्त करेंगे, हम भी इन जैसे बनेंगे ऐसे गुणों के प्रति की गई भक्ति मनोवांछित रूप प्रदान करती है।

यह शरीर अनंत परमाणुओं से मिलकर बना है, हम जितने अच्छे परिणाम करेंगे उतने अच्छे परमाणु हमारे पास आयेंगे जिनसे हमारा रूप सुंदर बनता है तथा मन बार–बार गुणों को प्राप्त करने का हो तो मनवांछित रूप प्राप्त होता है।

जब हम विषय वासना के कषायों के, राग द्वेष के परिणाम करते हैं तब बहुत अशुभ परमाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं जब वो उदय में आते हैं तो बीमार पड़ जाते हैं लेकिन हम जब मैत्री, दया, करुणा, प्रेम, वात्सल्य के परिणाम बनाते हैं तब हम अच्छी वर्गणाओं के परमाणु एकत्रित कर लेते हैं जिससे शरीर में स्वस्थता, प्रसन्नता, निरोगता पैदा होती है, साथ में धन ऐश्वर्य आदि भी मिलता है तथा मनोवांछित रूप की भी प्राप्ति होती है। भगवान के सच्चे भक्त को सब कुछ सहजता से प्राप्त हो जाता है।

88. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! इस संसार में कितने ही जीव हीनाधिक आंगोपांग वाले देखे जाते हैं, तथा ऐसे लोग धर्म कार्यों से वंचित रहते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो लोग दूसरों के अंग, उपांग, हाथ, पैर, अँगुली तोड़ देते हैं, दाँत आदि तोड़ देते हैं, आँख आदि फोड़ देते हैं, अंग व उपांगों से हीन कर देते हैं, काट देते हैं ऐसे लोग महापापी कहलाते हैं क्योंकि जिनके आंगोपांग हीनाधिक होते हैं ऐसे लोग धार्मिक अनुष्ठानों से वंचित हो जाते हैं, ऐसे मनुष्य प्रभु का अभिषेक नहीं कर सकते हैं, शांति धारा नहीं कर सकते हैं, पंचकल्याणक आदि में इन्द्र इन्द्राणी नहीं बन सकते हैं, साधुओं को आहार आदि नहीं दे सकते, अंग उपांग से जो हीन है ऐसे लोगों को देखकर हँसी उड़ाते हैं ऐसे लोग अगले भव अथवा उसी भव में अंग उपांग से रहित देखें जाते हैं।

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में यदि एक भी अंग नहीं हो तो ऐसा जीव सम्यक्त्व से हीन कहलाता है तथा सम्यग्ज्ञान के आठ अंगों में से एक भी अंग अर्थात् शब्दाचार, अर्थाचार का सही ज्ञान नहीं है ऐसा भव्य प्राणी सम्यग्ज्ञान से रहित होता है वैसे ही जिस प्राणी के एक उँगुली अथवा एक हाथ, पैर नहीं हो, काना, बहरा, अंधा हो तो ऐसा व्यक्ति धार्मिक क्रियाओं से हीन देखा जाता है अभिषेक शांतिधारा के अधिकारी नहीं होते।

अतः हमें दूसरों के आंगोपांग की क्षति नहीं करनी चाहिए। साधुओं को आहार व जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक एक हाथ से नहीं देना चाहिये सामर्थ है फिर भी शक्ति को छिपाकर जो कार्य करते हैं हाथ, पैर व अन्य अंगों का प्रयोग सही तरीके से नहीं करते ऐसे लोग आंगोपांग से रहित होते हैं।

किसी की मजबूरी पर न हँसो, ये कोई आता नहीं है।
डरिए वक्त से जो किसी को बताकर आता नहीं है।।

***

मूर्ख दृश्य को बदलते हैं, ज्ञानी दृष्टि को।

89. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! बड़े बुजुर्गों से सुना है सरसों का तेल अमृत तुल्य है गुणकारी है, हितकारी है अनेक रोगों की दवा है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! सरसों के तेल को जैनाचार्यों ने अमृत के समान बतलाया है गर्मी के समय साधु संतों की वैयावृत्ति के लिए पैर के तलवे व हाथ के तलवे में पानी के साथ सरसों का तेल लगाने से गर्मी शांत होती है जिससे स्वस्थता महसूस होती है, शीतकाल में साधु संतों की वैयावृत्ति के लिए बुखार, सर्दी, खाँसी व कफ समाप्त करने के लिए सरसों के गर्म तेल में मैथी, अजवाइन डालकर हाथ, पैर, पीठ, छाती व सिर की मालिश करने से पुरानी कुकर खाँसी, तिजारा बुखार, टाइफाइड आदि बीमारियाँ समाप्त होती है।

इसका उपयोग बच्चों की मालिश करने में, प्रसूति के बाद महिलाओं की मालिश करने में, सर्दी, कफ, खाँसी, बुखार, निमोनिया होने पर सरसों का तेल गर्म करके मैथी, अजवाइन डालकर छाती, कमर, पीठ, हाथ-पैरों की मालिश, नाक में दो बूँद डालने पर तथा कान में दो बूँद डालने पर तथा नाभि में लगाने पर निमोनिया आदि सभी प्रकार का बुखार, पुरानी खाँसी, कुकर खाँसी, नजरा, साइनस जैसी समस्याएँ समाप्त होती हैं, तथा पहलवान लोग इस तेल का उपयोग अधिक करते हैं क्योंकि इससे शक्ति का संचार होता है, असीम ऊर्जा का निर्माण होता है। इसी सरसों के तेल से जब हम मंजन करते हैं तो मसूड़ों की अच्छी मालिश हो जाती है, मसूड़े मजबूत हो जाते हैं, चार बूँद सरसों का तेल, सेंधा नमक व हल्दी इन तीनों को मिलाकर हम दाँतों की शुद्धि करते हैं इससे मुख साफ व सुगंधित रहता है, दाँतों से बदबू नहीं आती, पायरिया की समस्या नहीं होती, खून नहीं आता, हमारे दाँत टूटते नहीं, मृत्यु तक बने रहते हैं। ऐसे अनेक गुणों के कारण सरसों के तेल को अमृत तुल्य कहा है तथा अनेक रोगों की दवा है सरसों का तेल।

हम जी रहे हैं यारो कपड़े-बदल-बदलकर।
कपड़े में ले जाएँगे इक दिन कँधे बदल-बदलकर।।

90. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी–किसी स्त्री पर अधिक ध्यान देने के बावजूद भी गर्भपात हो जाता है तथा किन्हीं–किन्हीं स्त्री के गर्भ ठहरता नहीं है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो स्त्री अपने व दूसरे के पुत्र, पुत्री को जन्म लेने से पहले ही मार देती है, जो गर्भपात की दवा आदि देकर प्रसन्न होती है अथवा जो स्त्री ऐसा कहती है अभी enjoy कर लें अभी तो शादी हुई है, कुछ समय घूम फिर लें यदि बच्चा होगा तो दाम्पत्य जीवन में परेशानी होगी, कौन बच्चे को सँभालेगा तथा बच्चे होने के बाद जो बच्चों का अपमान करती हैं, कष्ट देती हैं, नौकरों की तरह कार्य करवाती हैं, सौतेला जैसा व्यवहार करती हैं ऐसी स्त्रियों के भविष्य में अथवा अगले भव में गर्भपात हो जाता है अथवा संतान से विहीन होती है व उनके अधिक प्रयास करने पर भी गर्भ नहीं ठहरता, बार–बार गर्भवती होने पर भी बच्चे का सुख प्राप्त नहीं होता। अतः गर्भ में रहने वाला बालक अत्यन्त दुःखी, लाचार व सर्वथा पराधीन होता है, उस समय थोड़े से प्रयोग से ही मर जाता है गलत सोच से भी संतान का मरण हो जाता है। जैसे – माँ ने विचार किया मर जाता तो अच्छा था, जन्म नहीं देंगे, मुख भी नहीं देखना है आदि ऐसे गलत विचारों के कारण भी संतान गर्भ में ही मर जाती है। ऐसे लाचार पराधीन संतान को मारना महापाप है।

गर्भपात होना पाप का कारण है इसलिये जानकर कभी भी ऐसा पाप नहीं करना चाहिये। संतति को बढ़ाने हेतु संतान को जन्म अवश्य देना चाहिये। जो स्त्री पुरुष संतों का तिरस्कार करते हैं, अपमान करते हैं, आदर, सम्मान नहीं करते, धर्म की संतति को नष्ट करते हैं, संतों की सेवा नहीं करते ऐसे स्त्री पुरुषों की संतति समाप्त हो जाती है अथवा पारिवारिक संतति समाप्त हो जाती है संतान के सुख से वंचित हो जाते हैं तथा ऐसे लोग संतान को जन्म नहीं दे पाते अर्थात् संतों का तिरस्कार करने वाले संतान से रहित होते हैं इसलिए कभी भी संतों का अपमान नहीं करना चाहिए?

91. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! वर्तमान समय में भाई–भाई में परस्पर में वैर विरोध अधिक देखा जाता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! वैर विरोध का संस्कार जन्म–जन्मांतर का माना जाता है। क्रोध करने से व परस्पर वैर विरोध रखने से चारित्र मोहनीय कर्म का बंध होता है, चारित्र मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर की है, आबाधाकाल को छोड़कर इतने दिन तक वह कर्म अपना फल देता रहता है। इतने दिन यह जीव जितने जन्म धारण करता है उन समस्त जन्मों में उसे एक बार बंध किये कर्म का फल प्राप्त होता रहता है। कमठ ने अपने भाई से विरोध किया था दस भवों तक विरोध चलता रहा, आज वर्तमान में भाई–भाई एक छत के नीचे नहीं रह पाते यदि एक पिता के चार पुत्र हैं तो चारों पुत्र अलग–अलग रहने में आनंद मनाते हैं, एक दूसरे से दुश्मनी निकालते हैं, थोड़े सी धन दौलत के कारण चंद दिनों की जिंदगी जीने के लिये भाई–भाई को जान से मार देता है यह सब पूर्वजन्म के वैर के कारण होता है यही वैर जन्म जन्मान्तर तक चलता रहता है इसलिये किसी भी जीव से अधिक समय के लिये वैर नहीं रखना चाहिये। किसी जीव से वैर हो तो क्षमा याचना कर लेना चाहिये जिससे परभव में वैरी भाई के रूप में जन्म न लेना पड़े। रावण व विभीषण का वैर चला क्योंकि रावण असत्य का पक्ष लेता था विभीषण सत्य का इस कारण दोनों शत्रु बन गये मना करने पर भी रावण ने बात नहीं मानी, परनारी पर आसक्त रहा अहंकार में फूल गया मैं तीन खण्ड का राजा हूँ इसलिये मुझे कोई नहीं मार सकता है इसलिये भाई विभीषण रावण का शत्रु व राम का मित्र हो गया।

जो यहाँ भाई–भाई नारकियों की तरह लड़ते–झगड़ते रहते हैं, आपस में सम्मान नहीं करते ऐसे लोग परभव में भाई–भाई होते हुये भी शत्रु होते हैं तथा नरक में जन्म लेकर लड़ते–झगड़ते रहते हैं।

दिल नहीं अब रिश्ते उगलियाँ निभा रही हैं।
सब टच में चल रहे हैं पर टच में कोई नहीं है।।

92. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई जीव सिंह की पर्याय में जन्म लेता है तो कोई शृंगाल (गीदड़) की पर्याय में ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! सिंह की पर्याय महापाप व अधम से अधम कार्य करने वाली पर्याय है ऐसी पाप रूप सिंह की पर्याय सबसे निकृष्ट महापाप करने से प्राप्त होती है, प्रतिसमय दुर्ध्यान करना, दूसरों को मारने का चिंतवन करना, शिकार खेलकर अनेक पशु-पक्षियों की हिंसा करना, अपने स्वभाव में सदा क्रूरता रखना, साधारण लोगों के साथ भी विरोध करना, माँस, मदिरा आदि में अधिक लोलुपता रखना, अपने व परायी आत्मा के घात करने का विचार करना, दुष्ट से दुष्ट कार्य करना, पापों में सदाकाल लिप्त रहना, इन्हीं पापों के करने से वह मनुष्य मरकर सिंह होता है।

जो मनुष्य चालाक होते हैं, ईर्ष्या द्वेष करते रहते हैं, दूसरों को ठगते हैं, जो मिथ्या भाषण करते हैं, जो लड़ाई झगड़ा करने में चतुर होते हैं, जो कभी धर्म नहीं करता, दान नहीं देता, धन का दुरुपयोग करता है, जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, आराधना नहीं करता, गुरुओं की सेवा नहीं करता, कभी व्रत उपवास नहीं करते, शुभ कार्यों से दूर रहते हैं, ऐसे मनुष्य मरकर गीदड़ बनते हैं।

पूर्व हिंसा आदि कार्यों के कारण ऐसी पर्याय में जन्म लिया। यहाँ पर भी निरन्तर पाप कर्मों में लिप्त रहे, प्रिय भोजन माँस रहा अथवा निरीह असहाय अपने से छोटे पशु-पक्षियों को मारकर खाया विचारों में भी क्रूरता रही। क्रूर परिणामों से मरकर नरकों के दु:खों को भोगा, वहाँ पर भी क्रूर परिणामों से मरकर पुन: सिंह जैसी क्रूर पर्याय में जन्म लिया। अत: पूर्व के पाप कार्यों के कारण यह जीव सिंह व शृगाल जैसी पर्याय में जन्म लेता है इसलिये निकृष्ट पाप कार्यों से बचें।

अत: हम अच्छा करें अच्छा बनें, अच्छा जिएँ तो ऐसी क्रूर पर्यायों से बच सकते हैं।

दया-दया सब ही कह, दया न जाने कोय।
जीव जाति जाने बिना, दया कहाँ से होय।।

93. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया संसारी जीवों में चुम्बक की तरह कर्मों को आकर्षित करने की शक्ति है और कार्माण वर्गणा में आकर्षित होने की ऐसा क्यों?कृपया इस अज्ञान को हरने की कृपा कीजिए?

समाधान–हे भव्यात्मन! संसारी जीव व कर्म का अनादि से संबंध है जब तक जीव मुक्त नहीं होगा तब तक कार्माण वर्गणाएँ पीछा नहीं छोड़ती हैं। अर्थात् संसारी जीवों में चुम्बक की तरह कर्मों को आकर्षित करने की शक्ति है, जीव जैसे कर्म करता है लौटकर वैसे ही कर्म आते हैं जो सुख–दुख रूप फल देते हैं। हमारा वर्तमान जीवन पूर्व कर्मों की प्रतिच्छाया है, यदि हम दूसरों से प्रेम करेंगे तो प्रेम मिलेगा और नफरत करेंगे तो नफरत मिलेगी जैसा कर्म करेंगे वैसी कार्माण वर्गणाएँ आकर्षित होंगी। संसार प्रकृति रूप है और प्रकृति tit for tat रूप है।

संसार चलाने के लिए समस्त प्राणियों के पास तीन ही साधन हैं मन, वचन, काय इससे अधिक नहीं, एकेन्द्रियों में मात्र एक साधन काय है, दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीवों के पास वचन व काय दो साधन हैं पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों के पास ये तीनों साधन हैं।

संसारी जीवों में मन के विचारों से, बोलने से तथा शरीर की चेष्टाओं से आत्मप्रदेशों में जो हलन–चलन होता है उसे योग कहते हैं। यह योग शक्ति संसारी जीवों के पास हर समय मौजूद रहती है जिसके कारण कार्माण स्कंध आकर्षित होकर जीव के साथ एकमेक हो जाते हैं जैसे–एक लोहे के गोले को अग्नि में अच्छी तरह तपाकर पानी में छोड़ दीजिए वह गोला चारों ओर से पानी को खींच लेगा यही शक्ति योग की है। आत्मारूपी लोहे के गोले को कषाय रूपी अग्नि में तपा दीजिए और संसार रूपी समुद्र में जो पुण्य पाप रूपी जल भरा है उसमें छोड़ दीजिए जिससे वह शुभाशुभ कर्मों को खींच ले जायेगा वैसे ही पुण्य–पाप रूपी कर्म पानी की तरह खिंचते चले जाते हैं।

अत: चुम्बक में जैसे लोहे को आकर्षित करने की शक्ति है और लोहे में आकर्षित होने की ठीक वैसे ही संसारी प्राणी में कर्मों को आकर्षित करने की शक्ति है और कार्माण वर्गणा में आकर्षित होने की शक्ति होती है।

94. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! यह जीव अन्य जीवों के साथ अच्छा व्यवहार करता है फिर भी सभी जगह अनादर का पात्र बनता है ऐसा क्यों?

समाधान –हे भव्यात्मन्! जो जीव पूर्वभव में देव–शास्त्र–गुरु का अपमान करके खुश होता है, ऐसा जीव हर जगह अपमानित होता है, सभी लोग उसकी निंदा करते रहते हैं तथा अगले जन्म में अपकीर्ति अधिक होती है।

आदिनाथ तीर्थंकर के समवशरण में उनके ही पोते मारीच ने साक्षात् तीर्थंकर भगवान् व उनकी वाणी का अपमान किया, निंदा की और मैं भरत क्षेत्र का 24वाँ तीर्थंकर बनूँगा ऐसे अंहकार के भावों से भर गया जिससे उसने 363 मत चला दिये इस कारण भगवान महावीर के जीव को लाखों करोड़ों अरबों वर्षों तक दुर्गति का पात्र बनकर दु:खों को सहन करना पड़ा। जो सच्चे देव की निंदा करता है वह दरिद्र होता है उसकी धन सम्पत्ति नष्ट हो जाती है जो संतों की निंदा करता है वह महापापी होता है, संतानहीन होता है, दुर्गति का पात्र होता है, सभी लोग उसका अपमान करते हैं और जो शास्त्रों की निंदा करता है वह कुष्ठ रोगी होता है इसलिए स्वप्न में भी निंदा नहीं करना चाहिए। यदि आप इस भव व परभव में अपमान से बचना चाहते हो तो निंदा करने का त्याग कर देना चाहिए।

कहा भी है–**न भारा पर्वता भारा, ना भारा सप्त सागरा।**
निंदक एव महाभारा तथा विश्वास घातका।।

यह पृथ्वी कहती है मुझे अपने ऊपर पर्वतों का भार सप्त समुद्रों का भार–भारस्वरूप नहीं लगता परन्तु जो इस पृथ्वी पर निंदक व विश्वासघाती हैं वे ही भार स्वरूप हैं।

जो घर में माता–पिता का व बड़े जनों का अपमान करता है वह अपने परिवार में ही अपमानित होता है, जो समाज में श्रेष्ठीजनों का अपमान करता है उसे पूरी समाज में अपमानित होना पड़ता है, जो अपने नगर में गाँव में नेता आदि का अपमान करता है उसे पूरा नगर अपमानित करता है, जो जिले में राज्य में राजा, मंत्री आदि का अपमान करता है उसे पूरे राज्य में अपमानित होना पड़ता है, जो देव–शास्त्र–गुरु का अपमान करता है उसे सम्पूर्ण लोक में व अनेक पर्यायों में अपमानित होना पड़ता है। जितने श्रेष्ठ व्यक्ति की निंदा उतने घोर कष्ट इसलिए कभी भी सर्वश्रेष्ठ लोगों का, रत्नत्रय धारी का, जिनेन्द्र भगवान का, जिनेन्द्र भगवान के वचनों का अनादर नहीं करना चाहिए।

95. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! संसार में अनेक जीव निर्धन, दुःखी, पीड़ित, परेशान, आकुल, व्याकुल परिणाम वाले दिखाई देते हैं ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन! जो पुरुष धन पाकर भी धर्मादि पुण्यकार्यों में पात्रदान नहीं करते उनका धन व्यर्थ है ऐसा धन जले हुये बीज के समान है। जैसे – जले हुये बीज से दूसरा अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार बिना पात्रदान दिये परभव में धन की प्राप्ति नहीं हो सकती, बिना धन के वह पात्रदान आदि पुण्य कार्य नहीं कर सकता इस प्रकार वह पुरुष जन्म-जन्मान्तर तक निर्धन बना रहता है। अपयश, अज्ञान, मिथ्यात्व, कषाय, पापकर्म, अनादर, कुपुत्र, शत्रु, दुर्जन स्त्री, दुर्जन माता-पिता ये सभी धनहीन होने के कारण प्राप्त होते हैं तथा जो सुपात्रों को दान नहीं देते ऐसे लोग परभव में लूले, लँगड़े, अँधे, बहरे व दरिद्री होते हैं।

इसी प्रकार जो पुरुष बलपूर्वक, हठाग्रह पूर्वक दूसरों के धन का हरण कर लेता है और संतुष्ट होता है, दूसरे के घर, व्यापार, रत्न, वैभव आदि का हरण करने वाले को देखकर प्रसन्न होता है अथवा जो निर्धन, दरिद्री, धनहीन मनुष्यों का अपमान कर संतुष्ट होता है ऐसा मनुष्य मरकर भाग्यहीन व निर्धन होता है, दूसरों का धन छीनने वाला पात्रदान आदि नहीं कर सकता। इस प्रकार धन छीनने वाला पुरुष स्व और पर के पुण्यकर्म को रोकता है इसी प्रकार जो मनुष्य कंजूस को देखकर संतुष्ट होता है वह भी धनहीन होता है धर्म में खर्च न करने वाला कृपण मनुष्य परलोक में अवश्य ही निर्धन होता है। जो आजीविका के लिए धर्म करते हैं, धन प्राप्ति के लिए शूद्रों का अन्न खाते हैं ऐसे लोग धर्मभ्रष्ट होकर फलहीन वृक्ष के समान, जलहीन झरने के समान निर्धन व दरिद्री, पीड़ित व परेशान होते हैं। ध्यान रहे–

भाग्य पर भरोसा – उम्मीद से कम मिलना।
करम पर भरोसा – उम्मीद से दुगुना मिलना।।

जब तक रहेगी जीवन में अकड़ तब तक नहीं बनेगी मोक्षमार्ग की पकड़।

96. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है मेडिटेशन (ध्यान) सर्वश्रेष्ठ औषधि है मेडिसिन नहीं ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! शरीर को स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए ध्यान ही सर्व औषधियों में सर्वश्रेष्ठ औषधि है, मानसिक शांति व आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए ध्यान व योग संसार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। निर्मल, निरोगी, तनावमुक्त जीवन जीने के लिए प्रतिदिन 30 मिनिट मेडिटेशन कीजिए, ध्यान साधना के पूर्व प्रतिदिन प्रात:काल योगासन कीजिए इससे सम्पूर्ण शरीर व नाड़ी तंत्र जागृत और स्फूर्तिवान होता है।

योगासन के बाद कुछ देर प्राणायाम भी करें इससे श्वसन तंत्र स्वस्थ होगा, मस्तिष्क ऊर्जावान होगा, चित्त में स्थिरता आयेगी, प्राणायाम ध्यान की पूर्व भूमिका है। ध्यान के लिए बैठें तब अपना मुख पूर्व व उत्तर दिशा की ओर रखें जिससे हमें सूर्य और पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का लाभ मिले तथा विदेह क्षेत्र में सीमंधर भगवान् एवं ऋद्धिधारी मुनियों की वर्गणाएँ व सम्मेद शिखर में तीर्थंकरों व अनन्त सिद्ध भगवन्तों की वर्गणाएँ प्राप्त हों।

ध्यान का लक्ष्य है अन्तर्मन की शांति, अन्तर्मन की शुद्धि, अंतर्मन में दिव्य आनन्द की अनुभूति, अन्तर्मन में प्रसन्नता क्योंकि अन्तर्मन की शुद्धि, शांति और प्रसन्नता से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है, धीरे-धीरे छोटे-छोटे रोग पलायन हो जाते हैं तथा जब साधक सर्व परिग्रह का त्याग करके निर्विकल्प अवस्था में ध्यान करता है तब कर्मों की निर्जरा करता हुआ जन्म, जरा, मृत्यु जैसे महारोगों का भी नाश कर देता है।

ध्यान स्वयं के द्वारा स्वयं की मनोचिकित्सा है। मन की नकारात्मकताओं के मकड़ी जाल से बाहर निकलने के लिए सुपरपॉवर से स्वयं को चार्ज करने के लिए ध्यान ही सबसे अच्छा चार्जर है। अत: स्वस्थ, प्रसन्न, प्रशस्त होने के लिए ध्यान ही परम औषधि है। इसलिए 30 मिनिट प्रतिदिन मेडिटेशन कीजिए आपको कभी किसी मेडिसिन की जरूरत नहीं पड़ेगी।

जिनने जहाँ में अष्टकर्म नाश किये हैं, निज ध्यान से स्वगुण स्वभाव प्राप्त किये हैं।।
अरहंत और सिद्ध का प्रसिद्ध नाम है, उनके चरण में कोटिश: मेरा प्रणाम है।।

97. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कोई कोई लोग देखने में अच्छे नहीं लगते, कुरूप दिखायी देते हैं, वे क्या करे तथा कोई–कोई लोग सभी को अच्छे लगते हैं? ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! जो जीव किसी कुरूप जीव का अपमान करते हैं, किसी के सुंदर शरीर में किसी प्रकार से मल लगाकर हँसी उड़ाते हैं, किसी के सुंदर शरीर की सुंदरता नष्ट करने के लिए अन्य–अन्य प्रकार से गलत कार्य करते हैं, रूप बिगाड़ने का प्रयत्न करते हैं ऐसे लोग मरकर भाग्यहीन कुरूप व बदसूरत होते हैं।

इस संसार में ऐसे अनेक जीव हैं जो दूसरों की सुंदरता को नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, दूसरों के भावों को बिगाड़ते हैं, नीचा दिखाने की भावना बनाते हैं, परमात्मा की भक्ति नहीं करते, सम्मान नहीं करते यदि किसी के आंगोपांग खराब हो तो देखकर प्रसन्न होते हैं, जब शरीर कुरूप हो जाता है, फोड़े फुन्सी, सफेद दाग, घाव आदि हो जाते हैं तो उनका अपमान करते हैं। किसी दूसरे के सुंदर शरीर में गंदगी लगाकर वा खराब बेढंगे वस्त्र पहनाकर सुंदर रूप को ढकना चाहते हैं दूसरों को कुरूप बताने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं, अपने ऐशो आराम के लिए मुनियों से दुर्व्यवहार करते हैं, अपशब्द बोलते हैं, निंदा करते हैं ऐसे लोग परभव में अपने दुष्ट स्वभाव के कारण कुबड़े, काने, लूले, गंजे, काले व कोढ़ी होते हैं जिससे वे कुरूपवान् दिखते हैं तथा किसी को भी अच्छे नहीं लगते।

शृंगार करने से, क्रीम, पाउडर, लिपिस्टिक आदि लगाने से चेहरे को जो सजाते हैं वो सुंदर दिखते तो हैं पर होते नहीं बनावटी मेकअप करने से कोई सुंदर नहीं होता जैसे कि सनतकुमार चक्रवर्ती जिसकी सुन्दरता की चर्चा देवलोक में हो रही थी उसे जब देव आयुधशाला में देखने गये तो चक्रवर्ती ने कहा राज दरबार में देखना, जब राज दरबार में वे देव दर्शनार्थ आये तो सिर झुकाकर बोले जो सुन्दरता आयुधशाला में थी वह प्राकृतिक सुन्दरता इस समय नहीं है। जो इस भव में फैशन करता, परमात्मा की रियल भक्ति नहीं करता वह परभव में जाकर कुरूप होता है उसे कोई भी सुन्दर नहीं कहता।

कहा है–भक्ते सुंदर रूपं–भगवान व गुरुओं की भक्ति से सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है सजने सँवरने से नहीं।

98. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया जैन साध्वी एक श्वेत साड़ी ही धारण करती है अर्थात् सवस्त्र दीक्षा होती है ऐसा क्यों?

समाधान– हे वत्स! जैन साध्वी जो महाव्रतों को धारण करती है उसे आर्यिका कहा जाता है। आर्यिका व्रत स्त्री पर्याय की सर्वोच्च साधना है, सर्वोच्च व्रत है, सर्वोच्च पद व सर्वोच्च तप है इससे बड़ा व्रत अन्य कुछ भी नहीं है पूर्वाचार्यों ने इनके निर्ग्रन्थ दीक्षा (प्रव्रज्या) नहीं कही है क्योंकि उनके शरीर की संरचना कुछ इस प्रकार होती है कि वे निर्वस्त्र नहीं रह सकतीं प्रत्येक माह में मासिक धर्म होता है, शरीर बीभत्स होता है तथा बिना वस्त्र के शील की रक्षा करना दुर्निवार होता है, अहिंसा आदि महाव्रत पूर्णरूपेण नहीं पलते हैं अत: उनकी निर्ग्रन्थ दीक्षा नहीं होती है बिना निर्ग्रन्थ दीक्षा के सम्पूर्ण कर्मों की संवर व निर्जरा नहीं हो सकती और न ही इसके बिना मोक्ष हो सकता है।

कर्मभूमि की स्त्रियों के उत्कृष्ट संहनन भी नहीं पाया जाता इसलिए उनके उत्कृष्ट ध्यान व सकल संयम नहीं होता किन्तु देशसंयम होता है उपचरित महाव्रत होते हैं सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा तो नहीं होती लेकिन पंचम गुणस्थान संबंधी उत्कृष्ट विशुद्धि को प्राप्त संवर निर्जरा होती है, मोक्ष नहीं तो मोक्षमार्ग तो होता है, पूर्ण रत्नत्रय तो नहीं किंतु एकदेश रत्नत्रय पाया जाता है। आर्यिकाओं की मात्र एक साड़ी रूप प्रव्रज्या होती है वे मात्र एक श्वेत साड़ी धारण करती है, श्वेत रंग प्राकृतिक है इसमें कैमिकल्स आदि का प्रयोग नहीं होता अहिंसा धर्म का पालन होता है इसलिए 8 मीटर अर्थात् 16 हाथ की श्वेत साड़ी जीवन पर्यन्त धारण करती है चाहे शीत ऋतु हो या ग्रीष्म ऋतु हो सबमें समतापूर्वक परीषहों को सहन करती है।

रत्नत्रय आत्मा का धर्म है, गुण है, चाहे वह पूर्ण रूप से हो या एक देश हो पर गुण तो गुण ही है। **गुण: सर्वत्र पूज्यते** गुण सभी जगह पूज्य होते हैं, इसलिए उनके गुणों की प्राप्ति के लिए नमस्कार हो।

द्रव्य स्त्रियों के निर्ग्रन्थता संभव नहीं है क्योंकि उन के निर्ग्रन्थता का अभाव है।

99. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! अधिकांश लोग रोगी होते हैं, असाध्य बीमारी के कारण मृत्यु भी हो जाती है ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन! जो पुरुष समर्थ होकर भी औषधि का दान नहीं करते, रोगी को देखकर ग्लानि करते हैं किसी साधु को वमन करते हुए देखकर उपचार करने की बजाय परिहास करते हैं ऐसे लोग परलोक में जाकर रोगी होते हैं। एक व्यक्ति बहुत धनवान् है, लक्ष्मीवान् है लक्ष्मी सँभाले नहीं सँभल रही विद्वान है, किसी का भय नहीं है, लेकिन फिर भी मूँग की दाल भी नहीं पचती हमेशा रोगी बना रहता है क्यों? क्योंकि उसने पूर्व में औषधि दान नहीं दिया इसलिए संत पुरुषों को औषधिदान अवश्य देना चाहिए।

जब इलेक्ट्रिक बॉडी कमजोर होती है तब रोग होता है, तेजस्वी की प्रशंसा से रोग नष्ट होता है, रोग विचारों की अभिव्यक्ति है। जब मानव कई तरह के बुरे विचार करता है तो कई रोग हो जाते हैं मात्र एक आत्मस्वभाव के विचार से सारे रोग एक साथ समाप्त हो जाते हैं। 12वें गुणस्थान में मुनिराज के एक साथ सारे रोग नष्ट हो जाते हैं, 6,7,8 गुणस्थान में धीरे-धीरे रोगों का शमन होता है। 12वें गुणस्थान में एकत्वविर्तक अविचार शुक्ल ध्यान लगाता है तब सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। कर्मभूमि के जीवों को कमजोर संहनन वालों को ये रोग होते हैं, भोगभूमि में वज्रवृषभ नाराच संहनन वाले जीवों को रोग नहीं होते।

शरीर रोगों का घर है। मानव के सम्पूर्ण शरीर में 5,68,99,584 रोग तथा 1 अंगुल में 96 रोग होते हैं ये सभी रोग पाप कर्म के उदय से प्रगट होते हैं, जन्म, जरा, मृत्यु ये तीन महारोग हैं इन्हें समाप्त करने के लिए जिन्होंने जन्म-मरण को नष्ट कर दिया है, सभी इच्छाओं को समाप्त किया है ऐसे परमपिता परमेश्वर की आराधना करने से, गुणगान गाने से, उनकी प्रशंसा व सम्मान करने से बड़े बड़े महारोग भी समाप्त हो जाते हैं, जन्म मरण की संतति समाप्त हो जाती है, अनंत दुःख समाप्त हो जाते हैं।

दान देना पुण्य का कार्य है जिस प्रकार भोजन दान देने से मनुष्य तृप्त

होता है उसी प्रकार औषधि दान से जीव सदाकाल निरोग रहता है, रोगी पुरुष की सेवा करना भी निरोगता का कारण है जो रोगी होता है उसे महान् कष्ट होता है एक छोटा रोग भी दुःख का कारण है दुःखी पुरुष के दुःख को दूर करना वा उस दुःख को दूर करने के लिए औषधि देना वा उसको सुखी करने के लिए उसकी सेवा करना निरोगता का कारण है। श्रीकृष्ण ने रोग से ग्रसित श्रमणों को स्वस्थ करने हेतु पूरे नगर में शुद्ध मन से, शुद्ध भावों से शुद्ध द्रव्य बनवाकर लड्डू में औषधि मिलाकर आहारों में दिलवायी फलस्वरूप अतिशय पुण्य का बंध करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया उन्होंने औषधि दान सबसे श्रेष्ठ पात्र को दी जिससे सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद का बंध किया इसलिए औषधि दान अवश्य देते रहना चाहिए क्योंकि इससे संयम, ज्ञान, तप, त्याग, वृद्धि को प्राप्त होते है तथा क्षुधा रोग की निवृत्ति होती है।

देव, शास्त्र, गुरु की सेवा करने वाले रोगी नहीं होते इसलिए निरोगी बनने के लिए देव शास्त्र, गुरु की आराधना करो।

कुएँ से जल न निकलेगा, तो सड़ जाएगा सब पानी।
कहोगे गैर को छोटा, तो कहलाओगे तुम मानी।।
जो पूजा दान करते हैं, हमेशा नम्र होकर के।
वही सब कुछ यहाँ पाते, कहे जिनवर की जिनवाणी।।

***

नफरत को हजार मौके दो कि प्रेम में बदल जाये,
पर प्रेम को एक मौका भी न दो कि नफरत में बदल जाए।

***

परमात्मा परीक्षक भी है,
निरीक्षक भी और अधीक्षक भी

100. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! प्राणायाम करने वाला मानव अथवा योगी अपनी आत्मा को जागृत कर लेता है, ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन्! प्राणायाम व योग करने वाला प्राणी व योगी स्वरों के द्वारा अपने अंदर बैठे परमात्मा को अथवा सुषुप्त आत्मा को जागृत कर लेता है, आत्मशांति, सरलता, सहजता, सौम्यता, समता भाव को प्राप्त कर लेता है। प्राणायाम के द्वारा हम अशुद्ध वायु को बाहर करके शुद्ध वायु को श्वास द्वारा अपने अंदर ग्रहण करते हैं जिससे मन, वचन व काय प्रसन्न व आनन्दित होता है और शारीरिक विकार नि:सृत हो जाते हैं।

प्राण और आयाम दो शब्दों से मिलकर प्राणायाम बना है, प्राण हमारे अस्तित्व का चिन्ह है तथा आयाम शब्द का अर्थ नियंत्रण है, प्राणायाम के प्रथम चरण में प्राण को निश्चित नियंत्रित करते हैं किन्तु अधिक समय के बाद प्राणायाम शब्द का विग्रह प्राण के विस्तार में होता है। हमारे समस्त शरीर में संचारित यह प्राण का उपयोग करने की विधि का नाम ही प्राणायाम है।

प्राणायाम का मुख्य अवयव हैं स्वर वह स्वर दो प्रकार के होते हैं। एक सूर्य स्वर दूसरा चन्द्र स्वर इन्हीं स्वरों को प्राणायाम के अन्तर्गत भी लिया जाता है। प्राणायाम में इन्हें इड़ा नाड़ी, पिंगला नाड़ी और शुष्मना नाड़ी के नाम से जानते हैं। इड़ा नाड़ी को चन्द्र स्वर बाँयी–हाथ की नासिका छिद्र, पिंगला नाड़ी को सूर्य स्वर दाहिनी हाथ की नासिका छिद्र तथा जब दोनों नाड़ी नाक के स्वर एक साथ चले या एक साथ बंद हो जाये मुख से श्वास लेना पड़े उस अवस्था विशेष को शुष्मना नाड़ी कहते हैं इस शुष्मना नाड़ी में कोई सांसारिक कार्य करके ध्यान भक्ति आदि करना चाहिए। उज्जायी प्राणायाम, शितली प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, कपाल भाति प्राणायाम आदि नौ प्राणायाम विधि के द्वारा हम अपने सुषुप्त परमात्मा को जगा सकते हैं कुछ सावधानी भी आवश्यक है वरना उल्टा प्रभाव भी पड़ सकता है। प्राणायाम प्रात:काल के समय सुखासन व वज्रासन में करें, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें, ढीले व सूती वस्त्रों का प्रयोग करें। खुला, हवादार, मच्छर आदि से रहित कमरा हो तथा पंखा व कूलर के नीचे प्राणायाम न करें। भोजन करने के चार घंटे बाद, नाश्ते के एक घंटे बाद, पेय पदार्थ पीने से एक घंटे बाद प्राणायाम करना चाहिए। अत:सही तरीके से प्राणायाम करने से ईश्वर का दर्शन व कुंडली जागृत होती है।

101. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किन्हीं जीवों को दुःख देने वाला कुटुम्ब तथा किन्हीं को सुख देने वाला कुटुम्ब मिलता है ऐसा क्यों?

समाधान– हे भव्यात्मन्! प्रेम, वात्सल्य जहाँ पर हो वह परिवार है, जहाँ पर सुसंस्कारों की शिक्षा दी जाती है वह परिवार है, रंग बिरंगे पुष्प जहाँ खिलते हैं वह बाग कहलाता है वैसे ही सभी मिलजुल कर आपस में एक साथ प्रेम, वात्सल्य, स्नेह, एकता, अनुशासन, संस्कारों की खुशबू से महकते हैं वह सुखी परिवार कहलाता है परन्तु जो कुटुम्बी लोग प्रत्येक समय दुःख देते हैं, माता–पिता, पति–पत्नि, भाई–बहिन जो एक दूसरे से लड़ते हैं, कष्ट देते हैं वे शत्रुवत् हैं, नरक से आये हुये जीव हैं। वही कुत्सित कुसंस्कारों के कारण कुटुम्ब में साथ रहते हुए भी शत्रुवत् रहते हैं।

जो लोग अनेक लोगों से परस्पर में कलह करते रहते हैं, सदा काल अशिष्ट वचन बोलते हैं व दूसरों से कलह करवाते रहते हैं, दूसरे की चुगली करके आपस में लड़वाते हैं तथा जो दूसरों की झूठी निंदा करते रहते हैं व कराते रहते हैं, जो दूसरों को झूठा (मिथ्या) कलंक लगाते रहते हैं, जो दूसरों की हँसी करते हैं अन्य ऐसे ही काम करते रहते हैं ऐसे मनुष्य मरकर दुःख देने वाले कुटुम्बियों में जाकर उत्पन्न होते हैं। पूर्व में उस पापकर्म के उदय से उन कुटुम्बियों के द्वारा दिये हुये महादुःख भोगते रहते हैं, दुःखों को भोगते–भोगते मरण हो जाता है पर सुख को प्राप्त नहीं करते।

गोत्रनिंदा कुलक्षयः गोत्र का निंदक, कुटुम्ब का निंदक कुल का क्षय करने वाला होता है जो अपने व पर के गोत्र की निंदा करता है उसके मुख में इसी भव में कीड़ों से सहित दुःखदायी घाव होते हैं, मरकर नरक जाता है अथवा दुःख देने वाले कुटुम्ब में जन्म होता है तथा जो हमेशा दूसरों की प्रशंसा, दूसरों पर दया, करूणा करता है, परिवार में सभी मिलकर एक साथ प्रेम से रहते हैं, एक दूसरे की निंदा नहीं करते हैं हमेशा परिवार में प्रसन्नचित्त रहते है ऐसे लोग परभव में सुख देने वाले कुटुम्ब में जन्म लेते हैं।

जिंदगी को तर्ज समझकर फर्ज अदा करो तभी मर्ज समझ में आएगा।

102. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ऐसे शास्त्रों में पढ़ा है यह जीव जिस गति में जन्मता है उस पर्याय में अच्छा लगने लगता हैं, ऐसा क्यों?

समाधान–हे मनीषी आत्मन्! जीव जिस पर्याय में जाता है उस पर्याय को ही अच्छा समझने लगता है उसी में आनंद आने लगता है क्योंकि कोई मरना नहीं चाहता इसलिए दु:खों को भोगते हुये भी वहीं रम जाते हैं। आचार्य पूज्यपाद जी इष्टोपदेश में कहते हैं–**यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।**

जो जीव जहाँ निवास करने लगता है वह उसको अपना घर समझकर प्रिय लगने लगता है चाहे विष्ठा का कीड़ा ही क्यों न हो।

जो मनुष्य विवेक से शून्य, बिना सोचे समझे अन्न–जलपान ग्रहण करते हैं, मद्य, माँस व दुर्गंधमय अन्नपान आदि समस्त पदार्थ अत्यन्त घृणित और अनंत काय का सेवन करते हैं। जिन पदार्थों का स्पर्श मात्र करने से अनंत जीवों का घात होता है फिर खाने पीने की बात तो बहुत दूर की है। जो लोग सड़ी वस्तुओं से बनी नशीली शराब व अनेक त्रस जीवों का घात करके अपने स्वाद के लिए माँस आदि का अथवा बाजार में बनी ब्रेड–बिस्कुट, फास्ट फूड आदि का सेवन करते हैं वे नरक आदि दुर्गतियों के दु:ख भोगते हैं वहाँ से निकलकर मल मूत्र के कीड़े बनते हैं, पश्चात् नरकादि के दु:ख भोगते हैं, निदान आदि बंध करने से भी मल मूत्र के कीड़े बनते हैं तथा कीड़े बनकर उसी में रमने लगते हैं। अत: जो लोग जहाँ रहते हैं उसको अपना घर मानकर खुश रहते हैं आनंद से जीवन यापन करते हैं पर यह वास्तविक खुशी व आनंद नहीं है, मोह के कारण इसे अच्छा लगता है अत: उसी में रमने लग जाता है।

हमें अत्यन्त विवेक के साथ वस्तुओं का सेवन करना चाहिए।

*** बख्स देता है ईश्वर उसे जिसकी किस्मत खराब होती है।**
वो नहीं बख्से जाते हैं जिनकी नियत खराब होती है।
*** किस्मत उसकी मुस्कुराती है जो मुश्किलों से मुस्कुराते हैं।**

103. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया शांति, संयम, ध्यान, ज्ञान प्राप्त करने के लिए हल्के रंग के वस्त्र पहनना चाहिए ऐसा क्यों?

समाधान–हे भव्यात्मन! वस्त्रों का हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है हमें हमेशा मर्यादित व हल्के रंग के धुले साफ–सुथरे वस्त्रों को धारण करना चाहिए। फटे, पुराने, अमर्यादित व गहरे काले नीले वस्त्रों को व गंदे वस्त्रों को नहीं पहनना चाहिए आर्षग्रन्थों में भी उल्लेख मिलते हैं कि हमें शांति और संयम ग्रहण के लिए सफेद वस्त्र, शत्रु व रोग विजय के लिए काले वस्त्र, भय को दूर करने के लिए हरे वस्त्र, ध्यान व ज्ञान के लिए पीले वस्त्र एवं हर कार्य की सिद्धि के लिए पंचवर्ण के वस्त्र धारण करना चाहिए। रंगों का हमारे जीवन व विचारों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

अरहंत परमेष्ठी का सफेद, सिद्ध परमेष्ठी का लाल, आचार्य परमेष्ठी का पीला, उपाध्याय परमेष्ठी का हरा तथा साधु परमेष्ठी का नीला अथवा काला रंग प्रतीक माना जाता है। इन रंगों का ध्यान करने से शरीर ऊर्जावान होता है, तप व संयम में वृद्धि होती है इनका ध्यान धर्मध्यान के अंतर्गत आता है।

हमारे शरीर पर जिस रंग के वस्त्र होंगे वैसा ही प्रभाव पड़ता है यदि श्वेत रंग के वस्त्र होंगे तो हमारा मन वीतरागता की ओर बढ़ता है, राग समाप्त होता है तो हमारे चरण आचरण की ओर बढ़ते हैं, यदि मन बहुत शांत हो तो श्वेत वस्त्रों से हृदय में संतोष होता है, वचनों में क्षमा तथा मन में निर्मलता आती है। श्वेत वस्त्र पहनने के बाद हमारे अंदर नेतृत्व की दिशा बोध देने की भावना प्रकट होती है जब हमारा मन अशान्त हो तो सफेद वस्त्र पहिनकर रंग का चिंतवन करना चाहिए जिससे मन शान्त होगा, सारे मन के संकल्प विकल्प समाप्त होंगे। सफेद रंग को जैनागम में शुक्ल लेश्या का प्रतीक माना है इसलिए आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी श्वेत वस्त्र धारण करते हैं इसलिए उनके परिणाम विशुद्ध व मन निर्मल होता है। अत: सभी को श्वेत व पीत वस्त्र धारण करना चाहिए।

तेरे गिरने से तेरी हार नहीं, तू आदमी है कोई अवतार नहीं।

104. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुंदर पत्नि व श्रेष्ठ वस्तुओं के होने पर भी अनेक जीव उनका उपभोग नहीं कर पाते ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! संसार में जितने भी पदार्थ, स्त्री, पुत्र, पुत्री, परिवार, मकान, व्यापार व अन्य स्वर्णादि बहुमूल्य वस्तुएँ व भोग संबंधी वस्तुएँ सब कर्माधीन हैं अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होती हैं, कर्त्तव्यों का पालन, देव-शास्त्र-गुरु की सेवा व भक्ति आदि अनेक पुण्य कार्य करने से श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं व बुरे कार्य, अभक्ष्य भक्षण, मांस, शराब, शहद आदि का सेवन करने से चोरी, जुआं, कुशील सेवन, अनेक प्राणियों का वध करने से उन्हें सताने से आदि पापकर्म के उदय से अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसी अवस्था में किसी के श्रेष्ठ पदार्थों को देखकर खुश न होना, असंतोष धारण करना स्वयं की अज्ञानता है, अविवेक है।

अज्ञानता व अविवेक के कारण ही महापाप उत्पन्न होते हैं व अज्ञानता व भ्रम के कारण जो पुरुष दूसरों की सुंदर स्त्रियों को देखकर अथवा किसी के श्रेष्ठ पदार्थ देखकर अपने हृदय में संतोष धारण नहीं करते तथा उनके सेवन करने की इच्छा करते हैं वे पुरुष परलोक में जाकर सुंदर से सुंदर स्त्री रहने पर भी उपभोग नहीं कर पाते किन्तु कुकृत्य करने की इच्छा से ऐसे पापकर्मों का बंध करते हैं जिससे वे परलोक में जाकर रोगी या नपुंसक होते हैं इस कारण न सुंदर स्त्रियों और ना ही अन्य सुंदर पदार्थों का उपभोग कर पाते हैं। अज्ञानता, अविवेक, विभ्रम, खोटी बुद्धि को समाप्त कीजिए, पत्नि, बच्चों व श्रेष्ठ वस्तुओं का आदर सम्मान कीजिए जिससे परलोक में जाकर पत्नि, बच्चों का उपभोग करो।

जरा जी जिंदगी पाकर यहाँ इठला रहा क्यों है,
ये बंगले कार को पाकर खुदा अजमा रहा क्यों है।
सुपुर्दे खाक होना है सभी को एक ना इक दिन,
क्षणिक खूबसूरती पाकर यहाँ इतरा रहा क्यों है।

105. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! लोग कहते हैं जिंदगी बड़ी मंझली व छोटी होती है तथा कुछ लोगों को रात छोटी व कुछ लोगों को रात बड़ी लगती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जिंदगी तो जिंदगी है, Life is long, short and mediam। जिंदगी को सही तरीके से जीना एक कला है बाकी सब बला है। जिस व्यक्ति के पास सुख सुविधाएँ हैं, धन दौलत है, गाड़ी है, बंगला है, नौकर चाकर हैं, सम्पन्नता है उस व्यक्ति को सौ वर्ष की उम्र भी कम लगती है वह कहता है अभी तो मुझे बहुत कुछ करना है कुछ दिन और जी लेने दो, कभी भी मृत्यु की चाह नहीं करता इसे जिंदगी छोटी लगती है और जो गरीब है, न सिर छुपाने के लिये छत है, न तन ढकने के लिए कपड़ा, न भूख मिटाने के लिये भोजन, न बच्चों को पढ़ाने के लिये पैसा बर्तन माँजकर मेहनत मजदूरी करके जो बड़ी ही कठिनाईपूर्वक बच्चों का पालन पोषण करते हैं ऐसे लोगों को जिंदगी भी बड़ी लगने लगती है और वहीं जो अनुकूलताओं में सुख-सुविधाओं में अधिक खुश नहीं होता, प्रतिकूलताओं में अधिक दुःखी नहीं होता, हर दिन बराबर समझता है, जो थोड़ा मंदिर चले जाते, पूजा-पाठ कर लेते, भगवान का स्मरण कर लेते, गुरुओं की सेवा कर लेते, स्वाध्याय कर लेते तथा पत्नी बच्चों के साथ पारिवारिक जीवन यापन कर लेते, व्यापार कर लेते, विषय भोग को भोगते हैं ऐसे लोगों की जिंदगी मंझली होती हैं उन्हें जिंदगी न हल्की लगती है न भारी लगती है उन्हें जिंदगी ठीक ठाक लगती है अर्थात् उन्हें जिंदगी मंझली लगती है।

अतः जिंदगी को ऐसे जियें कि जिंदगी आसान हो जाये। विकल्पों को छोड़कर जिंदगी में हमेशा मुस्कुराते रहें, खुश रहें तो जिंदगी न छोटी है, न बड़ी है।

वैसे ही जागने वाले के लिये रात बड़ी लगती है और सोने वाले के लिये रात छोटी लगती है। जो व्यक्ति परेशानी, पीड़ा कष्ट, चिंता, दुःख में हो तथा जिसे मानसिक व शारीरिक व्यथा हो, बीमार हो, जिसको जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध नहीं उसको रात बड़ी लगती है।

जिंदगी जिंदादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं।

106. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जो रात में भोजन करते हैं वे अगले जन्म में उल्लू, गिद्ध, कौआ, बिल्ली, सर्प, बिच्छू, चील, चमगादड़ आदि निंदनीय पर्यायों में जाते हैं, ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो रात्रि भोजी हैं तथा जो रात में भोजन बड़े प्रेम से करते हैं तथा अन्य दूसरों को भी रात्रि में भोजन करने की प्रेरणा देते हैं तथा जो लोग रात में भोजन नहीं करते उनकी हँसी उड़ाते हैं तथा मान सम्मान आदि नहीं करते हैं ऐसे लोग मरकर के अगले जन्म में उल्लू, कौआ, बिल्ली, सर्प, बिच्छू, चील, चमगादड़ आदि निंदनीय पर्याय पाते हैं।

उल्लू को दिन में दिखायी नहीं देता मात्र रात्रि में दिखायी देता है, उल्लू मूर्खता का प्रतीक है जो मनुष्य होकर धर्म–कर्म को भूलकर दिन में भोजन न करके रात में करते हैं वे मूर्ख मनुष्य उल्लू बनकर दिन भर अन्धे रहते हैं।

गिद्ध आसक्ति का प्रतीक है जो मनुष्य आसक्तिपूर्वक भोजन मिलते ही गिद्ध की तरह टूट पड़ते हैं न दिन देखते न रात ऐसे प्राणी मरकर अगले भव में गिद्ध पक्षी बनते हैं।

सर्प जहरीला तथा स्वभाव से क्रोधी प्राणी है जो मनुष्य क्रोध स्वभाव के कारण रात में भोजन करते हैं वे मरकर सर्प होते हैं।

बिच्छू अपने विष का एक काँटा ऊपर उठाकर चलता है, जो मनुष्य अभिमान के वशीभूत होकर अपनी प्रतिष्ठा के लिये रात में भोजन करते हैं वे जहरीले बिच्छू होते हैं।

चील आकाश में उड़ती है और जमीन पर दृष्टि रखती है ऐसे ही जो व्यक्ति जैन कुल में उत्पन्न होकर भी रात्रि में भोजन जैसा निंद्य कार्य करता है वे परभव में चील की पर्याय को प्राप्त होते हैं।

आचार्य भगवन्तों ने कहा है जो ऊँचे पद पर बैठकर निंदनीय कार्य करता है वह मरकर चील होता है। रात्रि भोजन करना माँस खाने के समान कहा है तथा रात में पानी पीना खून पीने के समान है। अत: रात्रि को भोजन करना पशुता की निशानी है या तो पशु बनकर आये हैं अथवा पशु बनने की तैयारी कर रहे है इसलिये रात्रि भोजन का त्याग ही कर देना चाहिए।

107. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! हमारे बुजुर्ग कहते हैं परमात्मा, गुरु, निमित्तज्ञानी, वैद्य व ज्योतिषी के पास कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! रिति पाणीं न गंतव्यं देव गुरु राजान् प्रति पूज्यनीय, महापुरुषों के पास, श्रेष्ठजनों के पास जब भी जाओ कुछ न कुछ भेंट लेकर अवश्य जाओ खाली हाथ मत जाओ क्योंकि फल की प्राप्ति फल से होती है। जिस भावना के साथ हम मंदिर जा रहे हैं उस भावना की सफलता हमारे ह्रदय के साथ ही निहित है। जब हम लौकिक रूप से राजा से, प्रधानमंत्री से, सेठ से, राष्ट्रपति से मिलने जाते हैं अथवा किसी मेहमान के घर जाते हैं तो कुछ न कुछ लेकर ही जाते हैं खाली हाथ नहीं जाते फिर मंदिर में तो तीनों लोकों के नाथ त्रिलोकीनाथ विराजमान हैं उनके खाली हाथ दर्शन कैसे कर सकते हो। कहा भी है प्रभु दरबार में, गुरु के दरबार में खाली हाथ जाओगे तो खाली हाथ ही वापिस आना पड़ेगा कुछ भी हासिल नहीं होगा।

प्राचीन समय में लोग जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते समय हीरा, पन्ना, माणिक आदि बहुमूल्य जवाहरात चढ़ाया करते थे। जैसे – मनोवती सती ने नियम लिया था 'गजमुक्ता' प्रतिदिन चढ़ाकर भगवान के दर्शन करूँगी पश्चात् ही भोजन करूँगी परीक्षा देकर भी नियम का दृढ़ता से पालन किया इसलिये भगवान को बहुमूल्य वस्तुएँ चढ़ाने से हमारे अंदर उदार भावना जाग्रत होती है एवं दान की प्रवृत्ति के संस्कार बने रहते हैं।

यदि आपकी सामर्थ्य महँगी वस्तुएँ चढ़ाने की नहीं है तो कोई बात नहीं। यथाशक्ति चावल, बादाम, नारियल, लोंग, नैवेद्य आदि समर्पित करना चाहिये। अपने घर से द्रव्य आदि लेकर परमात्मा के चरणों में समर्पित करना चाहिये। मंदिर की द्रव्य लेकर के अथवा दूसरों की द्रव्य प्रभु चरणों में समर्पित नहीं करना चाहिये ये दरिद्रता का सूचक है, निर्माल्य का दोष लगता है इसलिये मनचाही वस्तु की प्राप्ति के लिये खुले दिल से, हर्षित मन से, दोनों हाथों से प्रभु चरणों में द्रव्य समर्पित करना चाहिये।

108. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शास्त्रों में सुना है पवित्र मन से किया गया परमात्मा का दर्शन अतिशय पुण्य संचय कराता है व अनंत उपवासों के फल की प्राप्ति कराता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! कहते हैं पैसा पैसे को खींचता है जब कुछ पुण्य का उदय होता है तब ही प्राणी के भाव जिन दर्शन के बनते हैं और जिन्होंने पुण्य के पूर्ण फल को प्राप्त कर लिया है ऐसे जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन अतिशय पुण्य का संचय कराता है जो भव्य पुरुष परमात्मा के चरणों में दिल से नम्रीभूत हो जाता है उसका अभिमान गल जाता है, जितना जितना अभिमान गलता है व्यक्ति उतना-उतना ही हल्का होता जाता है, वायु से हल्की वाष्प होती है। अत: वह ऊपर को उठती है, हीलियम गैस उससे भी हल्की होती है। अत: गुब्बारे में भरने पर वह उसे ऊपर की ओर उठाती है हल्की वस्तु ऊपर उठती है भारी वस्तु नीचे जाती है जब व्यक्ति हल्का हो जाता है तो उसका मन प्रसन्नता से भरकर ऊपर उठने लगता है।

सच्चा भक्त जब भगवान के ध्यान में तल्लीन हो जाता है जो भक्त परमात्मा के चरणों में दास बनकर आया है वह एक दिन अविनाशी आत्मस्वरूप का अनुभव करने लगता है अर्थात् सर्व सुखों का भोगी हो जाता है। एक बुझा हुआ दीपक जब जलते हुये दीपक के पास पहुँचता है तो वह उसे भी जला देता है, पारसमणि लोहे को सोना बना देती है लेकिन प्रभु ऐसे पारसमणि हैं जो भक्त को सोना ही नहीं अपितु पारसमणि ही बना देते हैं अर्थात् अपने जैसा बना देते हैं परमात्मा के समक्ष आप ऐसे झुकिए कि आप स्वयं भगवान बन जायें, सुख व शांति से भर जायें।

असीम शांति का स्रोत हैं भगवान् जो भक्त भगवान के चरणों में दो चार क्षण भी शांति का अनुभव कर लेता है एक दिन वह असीम शांति को पा लेता है, जो व्यक्ति परमात्मा के चरणों में दो मिनिट भी सुख, शांति, आनंद का अनुभव नहीं कर पाता उसे शांति की प्राप्ति नहीं हो पाती। अत: परमात्मा के चरणों में पहुँचो तो हर्ष व आनंदविभोर पूर्वक दर्शन करो, पलक झपकाये बिना एकटक होकर दर्शन करो उनके स्वरूप को देखकर अपने स्वरूप का भान करो तथा परमात्मा के गुणों का चिंतन करके दर्शन करो यही दर्शन कोटि-कोटि अनंत फल व अनंत उपवासों को प्राप्त कराता है।

109. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है जो जिनेन्द्र भगवान की अंगुष्ठ प्रमाण मूर्ति बनवाता है वह अविनाशी अजर अमर पद अर्थात् परम्परा से मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! आचार्य भगवन्तो ने शास्त्रों में उल्लेख किया है।

जिनबिंब जिनागारं, जिनपूजा जिनस्तुतिम्।
य: करोति, जनस्तस्य, न किंचिद् दुर्लभं भवेत्।।

जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की आकृति के अनुरूप जिनबिंब बनवाता है तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा स्तुति करता है उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है अर्थात् मोक्ष सुखों को प्राप्त करता है। आचार्य पद्मनंदी जी पंचविंशतिका ग्रंथराज में कहते हैं जो बिंब पत्र के प्रमाण जिनमंदिर निर्माण कराकर उसमें जौ के बराबर जिन प्रतिमा की भक्तिपूर्वक स्थापना करके आराधना करते हैं उनके पुण्य का वर्णन साक्षात् सरस्वती भी नहीं कर सकती फिर जो मनुष्य बड़ा मंदिर व बड़ी प्रतिमा स्थापित करे उनका तो कहना ही क्या?

आचार्य अमितगति जी सुभाषित रत्नसंदोह में कहते हैं – जो मनुष्य अंगुष्ठ अंग प्रमाण प्रफुल्लित हृदय से प्रतिमा बनवाता है वह भी अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करता है तथा जो व्यक्ति चने के बराबर मंदिर बनवाता है तथा उसमें राई के बराबर मूर्ति स्थापित करता है वह भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है मंदिर बनवाने का इतना महान फल है इसलिये मंदिर में मूर्तियाँ अधिक मिलती हैं अनेक लोग मंदिर नहीं जाते फिर भी मूर्ति की स्थापना कराते हैं क्योंकि अपार पुण्य का हेतु है। जो व्यक्ति भगवान की मूर्ति बनवाकर दर्शन करते समय भावना भाता है कि हे भगवन्! मैं भी आप जैसा बन जाऊँ यदि वह मूर्ति स्थापना के साथ–साथ अपने कदम सम्यक् पथ पर बढ़ाता है तो उसका दर्शन करना सार्थक है वह शीघ्र ही तीर्थंकर व अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करता है।

गुरु हमें कुछ नहीं देते, पर जो गुरु देते वो कोई भी नहीं देता।

110. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! लोग परमात्मा व गुरु के दर्शन करते समय कम से कम तीन परिक्रमा लगाते हैं अधिक से अधिक 108 व 1008 ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! भगवान की वेदी गंधकुटी का प्रतीक है। समवशरण में भगवान के चार मुख दिखायी देते हैं जिससे पीछे बैठे हुये लोगों को भगवान का दर्शन हो सके। दर्शन करते समय भगवान के चारों मुखों का अवलोकन करने के लिए वेदी की परिक्रमा लगायी जाती है। लौकिक दृष्टि से किसी को वश में करने के लिये या अपना कार्य सफल करने के लिये पहले उसके चक्कर लगाने पड़ते हैं, विवाह के समय पति–पत्नि सात चक्कर लगाते हैं दोनों एक दूसरे के वश में हो जाते हैं, श्रावक आहार के समय पड़गाहन करके तीन परिक्रमा लगाता है जिससे साधु श्रावक के वश में होकर पीछे–पीछे चला जाता है उसी प्रकार त्रिलोकीनाथ को वश में करने के लिये पहले तीन परिक्रमा लगाते हैं बाद में दर्शन करते हैं।

मन वचन काय को शुद्ध करने के लिये, जन्म–जरा–मृत्यु को नष्ट करने के लिये, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र की प्राप्ति के लिये, तीनों लोकों के भ्रमण को रोकने के लिये व त्रिलोकीनाथ बनने के उद्देश्य से तीन परिक्रमा लगायी जाती है।

परिक्रमा तीन से कम नहीं लगाना चाहिये क्योंकि तीन से कम परिक्रमा लगाने से पुण्य अधूरा रह जायेगा, अधूरी भक्ति से पूर्ण पुण्य प्राप्त नहीं हो सकता, जिस प्रकार अतिथि को आधा पेट भोजन कराओगे तो पुण्य भी आधा रहेगा तथा भरपेट कराओगे तो पूर्ण पुण्य कमाओगे इसलिये तीन परिक्रमा तो लगाना ही चाहिये, चार परिक्रमा चार गतियों के नाश के प्रतीक, पाँच परिक्रमा पंच परावर्तन रूप संसार नाश हेतु, छह परिक्रमा छह द्रव्यों को समझने हेतु, सात परिक्रमा सात तत्त्व के श्रद्धान हेतु, आठ परिक्रमा आठ कर्मों से मुक्ति हेतु, नौ परिक्रमा नौ देवताओं को नमस्कार हेतु, दश परिक्रमा दस धर्म को समझने के लिए, ग्यारह परिक्रमा ग्यारह प्रतिमा की भावना से, बारह परिक्रमा बारह व्रत के निरतिचार पालन हेतु, तेरह परिक्रमा तेरह प्रकार का चारित्र मेरे जीवन में आये, चौदह परिक्रमा जिससे चौदह गुणस्थानों को पार कर सकूँ इस भावना से 108 साधु के गुण हेतु, 1008 जिनेन्द्र प्रभु के गुणों को प्राप्त करने की भावना से परिक्रमा लगाते हैं। अत: कम से कम तीन व अधिक से अधिक 1008 परिक्रमा लगाना चाहिए।

111. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! भक्त लोग भगवान् के समक्ष पाँच पुंज, शास्त्र के समक्ष चार पुंज, तथा गुरु के समक्ष तीन पुंज चावल चढ़ाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! पंच परमेष्ठी के प्रतीक स्वरूप व तीर्थंकर भगवान के पंच कल्याणकों की प्राप्ति हेतु, पाँच महाव्रतों को ग्रहण करने हेतु एवं पंचम गति (मोक्ष गति) को प्राप्त करने के लिये पाँच पुंज से चावल चढ़ाते हैं। परमात्मा का भक्त दोनों हाथों में चावल लेकर मुट्ठी बंद करके अँगूठा अंदर करके दोनों हाथों से विनयपूर्वक पाँच पुंज से चावल चढ़ाते हैं। तत्पश्चात् जिनवाणी को चार पुंज अर्पित करते हैं क्योंकि शास्त्रों में जिनेन्द्र भगवान के श्रीमुख से अवतरित वाणी का संकलन होता है। साक्षात् अरिहंत के अभाव में उनकी वाणी ही जगत कल्याणी है, मार्ग को प्रशस्त करने वाली है, जिनवाणी के माध्यम से धर्म का अस्तित्व कायम रहता है। अत: भक्त ऐसी उपकारी मंगलमयी जिनवाणी का दर्शन भक्तिभाव से करता है तथा जिनवाणी के सम्मुख चार पुंज चढ़ाता है क्योंकि सम्पूर्ण द्वादशांग चार भागों में संकलित है – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। अत: चारों अनुयोगों को, चार गति से छुटकारा पाने के लिये, चार कषायों का त्याग करने के लिये तथा चार चतुष्टय को प्राप्त करने के लिये चार पुंज से चावल चढ़ाना चाहिये।

जिन प्रतिमा मूक है, जिनवाणी भी मौन है, गुरु ही मुखरित होते हैं। अल्पज्ञानियों को समझाने के लिये चारित्रवान गुरु ही समझा पाते हैं, हमारा कल्याण भी करते हैं। अत: निर्ग्रन्थ गुरुओं में आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों की अलग–अलग वंदना करने हेतु एवं रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हेतु तथा जन्म–जरा–मृत्यु के विनाश हेतु गुरु के समक्ष तीन पुंज चढ़ा करके ही दर्शन करना चाहिये।

ईश्वर के दर पे गर तु सर पटकने जाएगा।
तकदीर का लिखा भी खुद बदल के आएगा।
तुम दो कदम बढ़ाके उसकी ओर तो चलो,
वो सैकड़ों कदम बढ़ाके चल के आएगा।।

112. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! भव्य श्रावक देव–शास्त्र–गुरु के चरणों में अन्य सभी धान्यों में उत्तम धान्य चावल ही समर्पित करता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, चना, मटर आदि अनेक धान्यों में सबसे उत्तम धान्य है चावल। तीनों लोकों में देव–शास्त्र–गुरु ही उत्तम है इसलिए उत्तमोत्तम कर्ता के लिए उत्तम धान्य चावल समर्पित करते हैं। चावल एक धान्य है जिसके ऊपर छिलके की तीन पर्तें चढ़ी होती हैं विशेष प्रक्रिया द्वारा जब वे तीनों पर्तें हट जाती हैं तब उस चावल में पुन: अंकुरित होने की शक्ति नष्ट हो जाती है ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा पर तीन कर्मों द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नो कर्म की पर्त चढ़ी हुई है जब विशेष ध्यान व तप की प्रक्रिया द्वारा इन कर्मों को आत्मा से अलग किया जाता है अर्थात् सम्पूर्ण कर्म जब नष्ट हो जाते हैं तब इस आत्मा में भी पुन: अंकुरित अर्थात् जन्म मरण की शक्ति नष्ट हो जाती है यही कारण है कि जिनने जन्म मरण होने की शक्ति से मुक्ति पा ली है उनके चरणों में चावल चढ़ाते है और भावना भाते हैं इस चावल की तरह मेरे भी कर्मों की पर्त दूर हो जावे जिससे पुन: इस संसार में उत्पन्न न होना पड़े, चावल व्यक्ति के जीवन की खाद्य सामग्री का प्रमुख भोजन है। हर प्रांत के गरीब–अमीर सभी लोग इसका उपयोग खाने में करते हैं। बंगाल विहार में चावल ही प्रमुख भोजन है। तीर्थंकरों की दीक्षा के उपरांत अधिकांशत: चावल की खीर से आहार कराया जाता है जो सुपाच्य व पौष्टिक भी है।

चावल सफेद होने से शुक्ल लेश्या का प्रतीक है, शुक्ल लेश्या में सबसे श्रेष्ठ विशुद्धि बनती है, श्रेष्ठ विशुद्धि के साथ जब चावल परमात्मा के चरणों में समर्पित करते हैं तो श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है, तथा चावल अक्षत का प्रतीक है जिसका कभी न हो क्षय ऐसा अक्षय पद प्राप्त हेतु चावल प्रभु चरणों में समर्पित करते हैं।

द्रव्य चढ़ाना हमारे परिणामों को विशुद्ध बनाने में निमित्त है और जितनी

द्रव्य हम प्रभु चरणों में अर्पण करते हैं उतना हमारा लोभ का त्याग होता है। इन्हीं पावन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भक्त श्रावक चावल आदि द्रव्य को परमात्मा के चरणों में अर्पित करता है।

अत: चावल उत्तम अन्न कहा गया है चावल सफेद है, धवल है, स्वच्छ है, साफ है चावल के दानों में कोई भी सूक्ष्म जीव जन्तु अपना घर नहीं बना पाते, जीव हिंसा से बच जाते हैं जिससे अहिंसा धर्म का पालन होता है। अन्न, गेहूँ, बाजरा, मक्का आदि में जीव जन्तु पड़ जाते हैं जिससे अधिक जीव की हिंसा होती है। अहिंसा धर्म का पालन हो सके इसलिये चावल चढ़ाते हैं।

हँसते–मुस्कुराते हुए दिये तुम जलाना,
जीवन को खुशियों से सजाना।
सभी दु:खों को भूल मत जाना,
इस दीवाली पर सभी को गले लगाना।।

***

जैन धर्म में नाम नहीं पाखंडों का,
ठर्रा–बीड़ी पीने वाले पंडो का
जैन धर्म की महिमा बडी निराली है
जिसकी सम्यग्दर्शन जैसी चाबी है।

***

इन्द्रिय मन को वश में करना होता है
तलवारों की धार पे चलना होता हैं
संयम लेना खेल नहीं है बच्चों का
तेल निकल जाता है अच्दे अच्छों का।

113. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! परमात्मा व गुरु के समक्ष नमस्कार मुद्रा में ही (हाथ जोड़कर) दर्शन किया जाता है ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्यात्मन्! कुछ समय पहले घर में टी.वी. होती थी, छत पर एंटीना लगाया जाता था, एंटीना तरंगों को ग्रहण करता था जिसके माध्यम से हमें साफ-साफ चित्र दिखायी देते थे यदि एंटीना थोड़ा तिरछा हो जाता था तो टी.वी. पर चित्र साफ नहीं आते उसी प्रकार दर्शन करते समय व्यक्ति जब भगवान का सम्मुखता से दर्शन करता है उसका उपयोग सही रहता है तो परमात्मा की तस्वीर उसके अंतस् में उतर जाती है और भक्तिपूर्वक दोनों हाथ स्वत: ही जुड़ जाते हैं। हाथ जोड़ना भक्ति का, समर्पण का प्रतीक है तथा हाथ जोड़ते ही नमस्कार मुद्रा बनती है जो विनय व विनम्रता का प्रतीक है। जब चश्मा बनवाते हैं तब आँखों को चेक कराते हैं उस समय डॉ. कहता है बिल्कुल सीधा देखें, सामने बोर्ड के अक्षर पढ़ें तब ही सही नजर पता चलती है उसी प्रकार भगवान के समक्ष व गुरु के समक्ष हाथ जोड़ते हैं तब ही श्रद्धा, विनय, भक्ति व समर्पण प्रदर्शित होता है।

कहने का तात्पर्य है अंगुली सही दिशा में ले जायें यह भी ध्यान दे कि हमारा देखने का तरीका सही हो। मुद्रा शास्त्र में बताया है एक वंदना मुद्रा होती है भगवान के सम्मुख वंदना मुद्रा में हाथ जोड़ते हैं, कमलाकृति बनाते है। भगवान के सामने खड़े न होकर थोड़ा सा तिरछा खड़ा होकर दोनों हाथों को मुकलित जोड़कर विनयपूर्वक भूमि से सिर लगाकर अंजुलीबद्ध नमस्कार करते हैं। अंगुली बनाने से हाथों में पोल होती है जिससे भगवान के सर्वांग से निकली पवित्र वर्गणाएँ अंजुली रुपी पात्र में प्रवेश कर जाती है, अंजुली मुकलित होने से तन में व मन में तनाव नहीं रहता स्वास्थ्य ठीक रहता है।

अत: परमात्मा व गुरु के समक्ष व विद्या ग्रहण करते समय हमारे हाथ जुड़े होना चाहिये टेढ़े मेढ़े नहीं। बंद अंगुली, अगूँठे मुड़े व हाथ बाँधकर परमात्मा के दर्शन व स्तुति नहीं होती क्योंकि इसमें शिष्टाचार नहीं दिखता, सभ्यता दिखायी नहीं देती संस्कार विहीन अनपढ़ दिखायी देते हैं।

114. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! पढ़ा है सुना है कि मंदिर में घंटा बजाना मंगल का, जागरण का प्रतीक है व विशुद्ध भावनाओं को प्रसारित करने के लिए वैज्ञानिक यंत्र है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! आचार्य वीरसेन स्वामी महामुनिराज ने घंटा को अष्ट मंगल द्रव्यों में एक मंगल द्रव्य माना है। मंदिर में लगा घंटा हमारी विशुद्ध भावनाओं को प्रसारित करने के लिये वैज्ञानिक यंत्र है, घंटा समवशरण में खिरने वाली दिव्य ध्वनि का प्रतीक है जब घंटा बजाते हैं तब उसमें ॐ का नाद गुँजायमान होता है जो ध्वनि का बोध कराता है। आजकल लोग आइसक्रीम, गजक, पेठा, नमकीन, चाट आदि के ठेले में भी घंटी लगा देते हैं। गाय के गले में घंटी, वाहनों में हॉर्न, स्कूल आदि में घंटी लगा देते हैं, परन्तु वे सब मांगलिक नहीं हैं, मंदिर का घंटा ही मंगल का प्रतीक है।

घंटा जागरण का प्रतीक है जैसे ही हम घंटा बजाते हैं तो उसकी ध्वनि तरंगों के माध्यम से हमारे सांसारिक विचारों का तारतम्य टूट जाता है, सुसुप्तता विलीन हो जाती है और विचारों में एकदम परिवर्तन होने लगता है। हमारा मन प्रभु के प्रति आकर्षित होता है जिससे विचार धार्मिक होने लगते हैं, घंटा बजाने से निद्रा टूट जाती है जिससे हम सावधान हो जाते हैं, घंटा बजाना हर्ष का भी प्रतीक है, घंटा बजाने से अन्य देवी देवताओं को सूचना व संकेत मिलता है कि भगवान् का भक्त प्रभु भक्ति के लिए प्रेरित हो रहा है।

जैनाचार्य कहते हैं सबसे बड़ा संगीत है घंटानाद। जब तीर्थंकर बालक का जन्म होता है तो देवों के भवनों से घंटानाद होता है जिसे सुनकर वे जन्म महोत्सव मनाने आते हैं, घंटे की ध्वनि से मानसिक प्रदूषण दूर होता है, घंटे की ध्वनि से पर्यावरण भी परिशुद्ध होता है, पंचकल्याणक के समय घंटे को भी संस्कारित कर लगाते हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है, शंख व घंटे की ध्वनि से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, घंटे की ध्वनि से तपेदिक रोग भी ठीक हो जाता है तथा शारीरिक विकल्प व कष्ट दूर हो जाते हैं व मानसिक पीड़ा भी दूर हो जाती है। मंदिर जैसे पवित्र स्थानों पर शुद्ध वर्गणाएँ ग्रहण करने हेतु घंटा का नाद किया जाता है जिससे वह शुद्ध परमाणु हमारे अंदर प्रवेश करके मोक्षमार्ग प्रशस्त करें।

115. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया णमोकार मंत्र खंडित भी होता है व अखंडित भी होता है अर्थात् णमोकार मंत्र के अविनय से नरक तथा प्रशंसा से स्वर्ग व मोक्ष होता है कृपया विस्तारसे समझाइए ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्य श्रावक! जैनागम में णमोकार मंत्र सबसे प्रथम मंत्र है इसी मंत्र से 84 लाख मंत्रों की उत्पत्ति हुई है, ऊर्जा का केन्द्र है यह णमोकार मंत्र सबसे शक्तिशाली, सर्वविघ्न विनाशक, सर्व पापों का नाशक, अपराजित मंत्र है। इस मंत्र में महाशक्ति पुंज पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया है, **णमो अरिहंताणं** जिसका अर्थ है मैं सभी अरिहंतों को नमस्कार करता हूँ किन्तु जो भव्यात्मा सभी अरहंतों को प्रणाम नहीं करता, आदर नहीं करता, एक–दो को ही नमस्कार करता है शेष अरहंतों को नहीं इससे णमो अरिहंताणं पद खंडित होता है तथा जो 8 लाख 98 हजार 502 जीवित अरहंतों को व सभी अरहंत प्रतिमाओं को सच्चे दिल से प्रणाम करता है तो वही णमोकार अखंडित हो जाता है। ऐसे ही जो सभी सिद्धों का आदर सम्मान, पूजा, भक्ति नहीं करता, अविनय व अनादर करता है इससे णमो सिद्धाणं पद खंडित हो जाता है तथा णमो आइरियाणं पर जो मात्र कहता यही हमारे आचार्य हैं, यही गुरु हैं, यही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानी हैं, अन्य नमस्कार के योग्य नहीं हैं ऐसा भेदभाव करते हैं सभी आचार्य, उपाध्याय, साधु को प्रणाम नहीं करते, अनादर करते हैं तो णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं पद खंडित हो जाते हैं। जैसे शरीर में एक अँगुली के कम होने पर संत नहीं बन सकते, मोक्ष नहीं जा सकते वैसे ही एक आचार्य, एक संत का अपमान करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। खंडित णमोकार मंत्र से कभी भी सम्यक्त्व नहीं हो सकता फिर चाहे प्रतिक्षण णमोकार मंत्र का जाप करते हो तब भी अनादर के कारण ना ही भक्त बन सकते, ना श्रावक बन सकते, ना सम्यग्दृष्टि हो सकते। सुभौम चक्रवर्ती 6 खण्ड का अधिपति था जैसे ही णमोकार मंत्र का अपमान किया वैसे ही नाव के साथ स्वयं डूब गया और ऐसा

डूबा कि सप्तम नरक में 33 सागर के दु:खों की जेल में जाना पड़ा यही खंडित णमोकार मंत्र का फल है लेकिन अनेक महापुरुषों ने नर नारियों ने, सेठ सुदर्शन, सेठ धनंजय, कोटिभट्ट श्रीपाल, पांडव व सीता सती, द्रोपदी, अनंगसरा, मनोवती, मनोरमा आदि अनेक भव्यात्माओं ने णमोकार मंत्र का सम्मान किया अटूट श्रद्धा से भर कर पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया तो उसके प्रभाव से उपसर्ग का निवारण हुआ व स्वर्ग व मोक्ष के पात्र बने यह अखंडित णमोकार मंत्र का फल है।

अत: पंचपरमेष्ठी का आदर करो, सम्मान करो, अवहेलना व निंदा मत करो, झूठा दोष मत लगाओ हर परिस्थिति में स्मरण करो व सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सभी परमेष्ठी को नमस्कार करो तभी णमोकार मंत्र अखंडित होगा।

जहाँ पर पक्ष होता है वहीं पर पंथ होता है।
उठा जो पंथ से ऊपर वही निर्ग्रन्थ होता है।
हटाये राग द्वेषों को बना है वीतरागी जो।
वो संच्चा संत ही इक दिन यहाँ अरहंत होता है।।

***

हवा जब तेज चलती है तो पत्ते टूट जाते हैं,
मुसीबत के दिनों में अच्छे-अच्छे छूट जाते हैं।
बड़े हैरान है अब झूठ तो बोला नहीं जाता,
मगर सच बोलते हैं तो रिश्ते टूट जाते हैं।।

116. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है मंदिरों के शिखरों के ऊपर कलश व ध्वजा अवश्य होना चाहिये ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! शिखर पर जो कलश चढ़ाये जाते हैं वे मंगल व पूर्णता के प्रतीक होते हैं। जिस प्रकार कलश सबसे नीचे बड़ा, दूसरा उससे छोटा, तीसरा सबसे छोटा अर्थात् क्रम-क्रम से शून्यता की ओर पहुँचता है उसी प्रकार मनुष्य जैसे-जैसे आकांक्षा, कामना, वासना से छूटता है वैसे ही वह मनुष्य फिर दिव्यता को प्राप्त होकर परमात्म पद को प्राप्त कर लेता है।

कलशों पर ध्वजा भी लगायी जाती है, ध्वजा ताँबे व पीतल की नहीं होना चाहिये आप ताँबे की ध्वजा लगाते हैं, ताँबे की ध्वजा घूम तो सकती है पर लहरा नहीं सकती। भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर सुवर्ण के 72 जिनालय बनवाये तथा उनमें रत्नों की प्रतिमाएँ स्थापित की परन्तु ध्वजा कपड़े की ही लगायी क्योंकि कपड़े की ध्वजा घूम भी सकती है व फहर भी सकती है। शास्त्रों में उल्लेख मिलता है जिस कपड़े की फड़फड़ की आवाज आती है उसकी ध्वजा शुभ फलादेश वाली होती है, पूर्व व उत्तर दिशा में ध्वजा फहरना शुभ माना जाता है, पश्चिम व दक्षिण दिशा में अशुभ मानी जाती है। आचार्यगण ध्वजा के माध्यम से समझ लेते हैं पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ, बड़े-बड़े विधान आदि धार्मिक अनुष्ठान कैसे होगें।

शिखर में ध्वजा चढ़ाने का उद्देश्य यह भी है कि मंदिर में हो रही भक्ति पूजन, मंत्र आदि की शब्द वर्गणा को ध्वजा मंदिर के ऊपर की ओर से सर्वत्र हवाओं को स्पर्शित होकर व्याप्त होती है और जहाँ-जहाँ वह हवा जाती है वहाँ-वहाँ का वातावरण शुद्ध, शांत, धार्मिक हो जाता है तथा जो व्यक्ति कलश पर ध्वजा फहराता है तो उसकी यश कीर्ति भी ध्वजा की तरह सर्वत्र फैल जाती है।

अत: जिस प्रकार ब्रेक के बिना गाड़ी अधूरी है, परिवार में बच्चों के बिना परिवार अधूरा है, मानव के जीवन में संयम न हो तो मानव का जीवन अधूरा है वैसे ही मंदिरों में शिखर, कलश व ध्वजा नहीं हो तो मंदिर भी अधूरा समझा जाता है इसलिये मंदिरों में शिखर, ध्वजा व कलश अवश्य होना चाहिये।

117. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कृष्णपक्ष के अन्त को अमावस्या व शुक्ल पक्ष के अन्त को पूर्णिमा कहा जाता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! चन्द्र के नगर से चार प्रमाणांगुल 20 धनुष नीचे जाकर राहु विमान का ध्वज दंड है अर्थात् ये दोनों एक साथ ही गमन करते हैं किन्तु कृष्ण पक्ष में राहु विमान की गति तीव्र होती है इसलिये राहु प्रतिदिन एक-एक पक्ष में चन्द्रमंडल के 16 भागों में से एक-एक कला को आच्छादित करता हुआ क्रम से 15 कला पर्यंत आच्छादित करता है, इस प्रकार अन्त में जिस मार्ग में चन्द्र की केवल एक कला दिखायी देती है वही अमावस्या कही जाती है। **अमा सह वसतश्चन्द्राकौ यस्यांतियौसा: तिथि अमावस्या** चन्द्रमा व सूर्य साथ है जिस तिथि में वह तिथि अमावस्या है।

राहु के विमान की गति शुक्ल पक्ष में धीमी हो जाती है इसलिये प्रतिपदा के दिन से वह राहु एक-एक वीथी में गमन विशेष से चन्द्रमा की एक-एक कला को छोड़ता है। यहाँ तक मनुष्य लोक में उनमें से जिस मार्ग में चन्द्रबिम्ब पूर्ण दिखता है वह पूर्णिमा कही जाती है।

ज्योतिष के अनुसार जिस राशि पर सूर्य हो उस राशि से 7 राशि के भीतर चन्द्रमा हो तो शुक्ल पक्ष तथा सात राशि से आगे हो तो कृष्ण पक्ष होता है। भूमि का चक्र 360 अंशों का गोलाकार है, सूर्य व चन्द्रमा अपने-अपने सुदी पक्ष पर परिभ्रमण करते हैं। चन्द्रमा सूर्य से जब 180 अंशों की दूरी पर होता है तब हम शुभ चन्द्र देखते हैं और सूर्य-चन्द्र जब एक साथ होते हैं तब वे शून्य अंश पर होते हैं ये दोनों स्थिति पूर्णिमा व अमावस्या को दर्शाती है। अमावस्या के बाद चन्द्रमा सूर्य से दूर होना प्रारंभ होता है अर्थात् उसका शुक्ल स्वरूप बढ़ना प्रारंभ होता है प्रतिदिन दूरी बढ़ने के साथ शुक्लता बढ़ती है। अत: ये दिन शुक्ल दिवस कहलाते हैं। अत: चन्द्रमा 15 दिन में 180 अंश दूर हो जाता है और पूर्ण रूप से शुक्ल हो जाता है पूर्णिमा को। अब 180 अंशों के उपरान्त चन्द्रमा सूर्य की ओर बढ़ने लगता है इस स्थिति में उसकी शुक्लता कम व उष्णता बढ़ने लगती है बढ़ते-बढ़ते पूर्ण कृष्ण हो जाता है जिसे अमावस्या कहते हैं। इस प्रकार ये वदी व सुदी 15-15 दिन के दो पक्ष कहलाते हैं।

118. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है ढाई वर्ष में एक माह की वृद्धि होती है तथा युग का प्रारंभ व युग का समापन भी होता है? ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! सूर्य की 184 गलियाँ 2-2 योजन के अन्तराल पर स्थित है। सूर्य एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करता हुआ उस 2 योजन के अन्तराल को पार करता है इन पूरे अन्तरालों को पार करने का काल 6 दिन है क्योंकि उसका एक दिन में एक अन्तराल को पार करने का समय एक मुहूर्त (48 मिनिट) है। अत: एक दिन में एक मुहूर्त की, एक माह में 30 मुहूर्त अर्थात् 1 दिन की, बारह मास में 12 दिन की, अढ़ाई वर्ष में 30 दिन अर्थात् एक मास की वृद्धि होती है।

एक माह में एक दिन अर्थात् (30 मुहूर्त की वृद्धि होती है। अत: बारह मास में 12 दिन की अढ़ाई वर्ष में 1 मास की व 1 युग में 2 माह की वृद्धि होती है। एक सूर्य की अपेक्षा 12 मास में 6 दिन की वृद्धि कही है, 12 दिन की वृद्धि 2 सूर्य की अपेक्षा कही है।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन अभिजित नक्षत्र के साथ योग होने पर दक्षिणायन के प्रारम्भ के साथ पंचवर्षात्मक युग का प्रारंभ होता है और आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन उत्तरायण की समाप्ति पर पंच वर्षात्मक युग की पूर्णता होती है। 1 युग में कुल 10 विषुप होते हैं पाँच विषुप दक्षिणायन के अर्धकाल में तथा पाँच विषुप उत्तरायण के अर्धकाल में होते हैं। एक अयन छह मास का होता है और प्रत्येक अयन का अर्धभाग व्यतीत होने पर दिन व रात्रि का प्रमाण बराबर होना ही विषुप कहलाता है।

अत: ढाई वर्ष में एक माह की वृद्धि होती है, तथा युग का प्रारंभ अभिजित नक्षत्र के साथ दक्षिणायन के प्रारंभ के साथ युग का प्रारंभ होता है।

जहाँ में निरखों तो फूलों की तरह।
बाग में बिखरो तो खुशबू की तरह।।

119. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कुछ लोग दीपक जलाने में हिंसा मानते हैं तथा कुछ लोग बड़े ही भक्ति भाव पूर्वक दीपक जलाकर पूजा व आरती करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! विचारणीय वक्तव्य है कि जो लोग कहते हैं दीपक जलाने में, भगवान की आरती करने में, पूजन में हिंसा होती है तो क्या उनका घर के कार्यों में अग्नि न जलाने का नियम है यदि नियम नहीं है तो वहाँ हिंसा अधिक होती है। लोग कहते हैं मंदिर व घर में अंतर है पर हिंसा में कोई अंतर नहीं है। दीपक से आरती करो पर विवेकपूर्ण क्रिया हो, अमर्यादित, असभ्य पद्धति न हो, इस तरह विवेक व युक्ति से काम हो कि आगम की आज्ञा का भी उल्लंघन न हो, आगम की आज्ञा का पालन हो व जीवरक्षा भी हो।

जो भव्य पुरुष शंका रहित हर्षोल्लास पूर्वक परमात्मा की आरती करता है। अष्ट द्रव्य से पूजन करता है। गुरुओं की आरती हर्षोल्लास पूर्वक करता है वह वैभव से सम्पन्न होता है तथा एक दिन वह भी आरती व पूजन के योग्य हो जाता है।

दीपक वही जला सकता है जो स्वयं जलता हुआ हो, जैसे एक जलती हुई मोमबत्ती हजारों मोमबत्ती को व हजारों दीपकों को जलाकर अंधकार को मिटाकर प्रकाशित करती है वैसे ही एक सम्यग्दृष्टि संयमी हजारों लोगों के ज्ञान का दीपक जलाकर सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है। दीपक केवलज्ञान के प्रतीक स्वरूप जलाते हैं, प्रभु का भक्त यह भावना भाता है हे भगवन्! जिस प्रकार आपने मोह रुपी तम को नष्ट करके ज्ञान का दीपक जलाया है ऐसा दीपक जो प्रलयकाल की भयंकर हवाओं के द्वारा भी नहीं बुझता हमेशा प्रकाशमान रहता है वैसे ही हम भी अपने मोह रूपी अंधकार को नष्ट करके ज्ञान का अखण्ड दीपक जलायें।

अत: उन अज्ञानियों से, अविवेकियों से कहना है यदि आप धार्मिक कार्यों में दीपक जलाने में हिंसा मानते हैं तो भोजन, पानी आदि अनेक सामग्री बनाने का त्याग कर दीजिये जिससे हिंसा का प्रसंग ही नहीं आयेगा।

120. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कायोत्सर्ग में नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हैं कम या अधिक बार नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! नौ का अंक शाश्वत है, मंगलकारी है। नौ के अंक का कभी अंत नहीं होता, आप नौ का पहाड़ा पढ़ें। सम्पूर्ण पहाड़े में नौ ही प्राप्त होता है इसलिये धार्मिक कार्यों में नौ का महत्त्व अधिक है। इसलिये कायोत्सर्ग में भी नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है। हमारे द्वारा मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना, समरंभ, समारंभ, आरंभ इन नवकोटि पूर्वक निरंतर पाप होते रहते हैं, जिन्हें समाप्त करने के लिये नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है।

अन्य सम्प्रदायों में भी नौ के अंक का अधिक महत्त्व है नवें दिन लड़की की विदाई करते हैं, नौ कन्याओं को भोजन कराते हैं, ग्रह भी नौ होते हैं, नवग्रहों की शांति के लिये नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर कायोत्सर्ग करते हैं। बैठकर अथवा खड़े होकर कायोत्सर्ग किया जाता है।

जैनागम में नव प्रकार के देवता होते हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिनचैत्यालय ये नवदेवता सभी शाश्वत हैं, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में हमेशा रहते हैं कभी भी नष्ट नहीं होंगे इसलिये नवदेवताओं के स्मरण के लिये, उनके गुणों को पाने के लिये, उन जैसा बनने के लिये नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है।

अत: जिस प्रकार प्रलयकारी हवाओं के चलने पर भी सम्मेद शिखर शाश्वत रहेगा, सब तहस-नहस हो जायेगा मात्र शाश्वत तीर्थराज रहेगा वैसे ही नौ का अंक शाश्वत है, स्थायी है। इसलिये 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है जिसे कायोत्सर्ग कहते हैं। मूल में कायोत्सर्ग का अर्थ काय से ममत्व को छोड़ना है, काय के प्रति उत्सर्ग होना ही कायोत्सर्ग है।

बिन गुरु के कोई भी हमारा नहीं, ये समंदर है यारों किनारा नहीं।
हम तुम्हारे सहारे जिये तो जियें, अब हमारा कोई भी सहारा नहीं।।

121. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** मंदिरों के ऊपर शिखर होते हैं मकान, दुकान, महल आदि के ऊपर शिखर नहीं होते ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! जिस प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान व चारित्र नहीं होते, नींव के बिना मकान नहीं होते, बीज के बिना फल की प्राप्ति नहीं होती, ज्ञान के बिना मानव जीवन की शोभा नहीं होती वैसे ही शिखर के बिना मंदिर की शोभा नहीं होती, शिखर सहित मंदिर ही पूर्णता को प्राप्त होता है।

शिखर का आकार पिरामिड के समान होता है जिससे ध्वनि तरंगें एकत्रित होती हैं, शिखर के नीचे बैठकर जाप, स्तुति, पाठ आदि करने से मन को शांति मिलती है जितनी दूर से मंदिर का शिखर दिखने लगता है उतनी ही दूर से हमारे शुभ भाव बनने लगते हैं।

शिखर बनाने का दूसरा कारण यह है कि यदि कोई देवगति के देव यदि अपने विमानों से कहीं जा रहे हो तो शिखर को देखकर वे समझ जाते हैं कि यहाँ जिनालय है। अत: देवतागण भी जिनालय में आकर भगवान की भक्ति पूजन करने लगते हैं यदि कोई असाध्य बीमार है जिनालय तक नहीं आ सकता तो अपने घर से भी शिखर के दर्शन की भावना को पूर्ण कर लेता है।

शिखर अशोक वृक्ष का प्रतीक है। जिस प्रकार समवशरण में भगवान के ऊपर अशोक वृक्ष होता है उसी प्रकार मंदिर में अशोक वृक्ष के प्रतीक रूप में शिखर लगाया जाता है। जिस प्रकार अशोक वृक्ष के नीचे बैठने से हमारे सारे शोक नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मंदिर के नीचे जाकर प्रभु की आराधना करने से भी सारे शोक व रोग नष्ट हो जाते हैं।

अत: मंदिरों के ऊपर शिखर होने का एक यह भी कारण है यदि मंदिरों के ऊपर शिखर न हो तो मंदिरों की पहिचान कैसे होगी शिखर को देखकर ही पता चलता है यह परमात्मा का मंदिर है किसी राजा सेठ का महल नहीं क्योंकि घर व महल के ऊपर अनेक प्रकार की डिजाइन तो हो सकती है शिखर नहीं। शिखर मंदिरों के ऊपर होते हैं क्योंकि पूर्णता के प्रतीक है।

122. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ललाट पर चन्दन लगाया जाता है व महिलाएँ भी ललाट पर बिंदी लगाती है अन्य जगह नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! भौहों के ऊपर ललाट का भाग आज्ञा चक्र कहलाता है। विशुद्धि चक्र ग्रहण करता है आज्ञा चक्र छोड़ता है। आज्ञा चक्र में चंदन लगाते हैं व महिलाएँ भी बिंदी आज्ञा चक्र में लगाती हैं, विशुद्धि का स्थान होने के कारण आज्ञा चक्र में बिंदी व चंदन लगाते हैं। पहले भगवान के चरणों में चंदन लगाते हैं वही चंदन अपने माथे पर लगाते हैं क्योंकि जितने समय तक बिंदी अथवा चंदन माथे पर रहेगी चंदन की तरह परिणामों में शीतलता व निर्मलता होगी भावों में विशुद्धि अधिक उत्पन्न होगी, प्रशस्त भावों का जन्म होगा, सिर दर्द, माइग्रेन आदि सिर सम्बन्धी परेशानी से बचेंगे।

बिंदी लगाना महिलाओं के सुहाग की निशानी है। महिलाओं के सोलह शृंगार में बिंदी भी एक शृंगार है, बिंदी के अभाव में महिला का शृंगार अपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के अनुसार बिंदी लगाना संस्कृति है, आवश्यक है, कुछ महिलाओं को बिंदी लगाने में भी शर्म आती है वह कहती है क्या होता है बिंदी लगाने से। उन लोगों से कहना है विवाह न करे तो बिंदी लगाने की आवश्यकता नहीं है।

वर्तमान में शादी के पश्चात् भी महिलाएँ बिंदी लगाना उचित नहीं समझती, बिंदी के बिना ही रहना पसंद करती है व स्वयं को श्रेष्ठ समझती है।

अत: चंदन जैसे शीतल परिणामों की विशुद्धि के लिये व सिर दर्द की पीड़ा को दूर करने के लिये तथा भारतीय संस्कृति कायम बनाने के लिये महिलाएँ ललाट पर बिंदी लगाती हैं अन्य स्थानों पर नहीं क्योंकि अन्य स्थान पर बिंदी लगाने से शोभा नहीं बढ़ती।

*** सुख चाहते तो रात में जागना नहीं, शांति चाहिए तो दिन में सोना नहीं, सम्मान चाहिए तो व्यर्थ बोलना नहीं, प्यार, प्रेम वात्सल्य चाहिए तो अपनों को छोड़ना नहीं**

123. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** जाप (माला) में 108 दाने (मोती) होते हैं ऊपर मेरु पर तीन दाने (मोती) होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! यह संसारी प्राणी निरंतर पाप के कार्य करता रहता है पापास्रव के 108 द्वार होते हैं। मानव 108 प्रकार से मुख्य रूप से पाप कर्मों को करता है जिससे समय-समय पर कर्म उदय में आकर अत्यधिक दुःख देते हैं। इन पाप कर्मों से बचने के लिये मानव परमात्मा का स्मरण स्वरूप जाप करता है वह जाप 108 दानों की होती है। इसे इस प्रकार समझें मन, वचन, काय × कृत, कारित, अनुमोदना × समरंभ, समारंभ, आरंभ × क्रोध, मान, माया, लोभ (3×3×3×4) = 108। इन 108 प्रकार के किये गये पापास्रव से छुटकारा पाने के लिये माला में 108 दाने होते हैं।

रत्नत्रय के प्रतीक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की प्राप्ति के लिये माला के ऊपर तीन मोती होते हैं जिसे हम शिखर भी कहते हैं। माला पूरी होने के बाद अष्टांग सम्यग्दर्शनाय नमः अष्टांग सम्यग्ज्ञानाय नमः त्रयोदश विध सम्यक्चारित्राय नमः बोलना चाहिये।

108 बार जाप करने पर जाप पूरी मानी जाती है। किसी भी कार्य की पूर्णता होने पर श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। चाहे 108 बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाये व ऋद्धि मंत्रों की, सरस्वती मंत्रों की, धर्म वृद्धि, धन वृद्धि, महामृत्युंजय शांति मत्र की जाप आदि मंत्रों की श्रेष्ठता 108 बार माला (जाप) करने पर पूर्ण होती हैं। 108 बार माला करने से पापों का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा होती है, जो माँगों सब कुछ मिल जाता है। कहते हैं माला से माल की प्राप्ति होती है, जाप से सभी विघ्न बाधाएँ, महामारी दूर होती है इसलिये 108 प्रकार के पापों को समाप्त करने के लिए 108 प्रकार से जाप करते हैं। इसमें दो अंक और एक शून्य है इनको परस्पर में जोड़ने से (1 + 8 = 9) 9 का अंक प्राप्त होता है। यह अंक शाश्वत है हम भी शाश्वतता को प्राप्त करें इसी भावना से 108 प्रकार से जाप करते हैं।

अपने दोषों पर सौ पर्दे डालकर हर आदमी कहता है
कि जमाना बहुत खराब है।

124. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपकी वाणी में सुना, शास्त्रों में पढ़ा पर समझ में नहीं आया कि पुण्यात्मा स्त्री की कोख से पुण्यशाली संतान का जन्म होता है, पापात्मा संतान नहीं होती ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! पापी स्त्री की कोख से पुण्यात्मा पुन: जन्म नहीं लेता, माँ के अच्छे संस्कारों से ही अच्छे बच्चे जन्म लेते हैं, पुत्र ही माँ का चयन करता है। पहले पुत्र देखता है माँ कैसी है, पुत्र के अनुसार यदि माँ की योग्यता होगी तो वह उस कोख में प्रवेश करता है ऐसी माँ की कोख से संस्कारवान् बच्चे जन्म लेते हैं। कहा भी है– one mother better than hundred teacher एक अच्छी श्रेष्ठ संस्कारित माँ जो शिक्षा बच्चे को दे सकती है वह शिक्षा 100 शिक्षक भी नहीं दे सकते इसलिये माँ संस्कारवान् होनी चाहिये। सैकड़ों हजारों माता सैकड़ों हजारों पुत्रों को जन्म देती है पर तीर्थंकर जैसे पुत्र को आदर्शवान संस्कारवान् व संस्कारित माँ ही जन्म देती है। आ. कुंदकुंद की माँ गर्भ में ही अध्यात्म का संदेश सुनाती थी, धार्मिक, संस्कारों को बढ़ाने वाली कथाएँ सुनाती थी, जन्म लेने के पश्चात् बेटे को लोरियों में **शुद्धोसि बुद्धोसि निरञ्जनोऽसि संसारमाया विनिर्गतोऽसि** की लोरियाँ सुनाया करती थी उसी का परिणाम हुआ कि आचार्य कुंदकुंद स्वामी अनेक गुणों के स्वामी हुये। 11 वर्ष की उम्र में जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके अध्यात्म के प्रवर्तक बन गये ये सब माँ के संस्कारों की ही देन थी।

पांडव व कौरव दोनों एक ही कुल में जन्मे, कौरवों का कोई भी नाम नहीं लेना चाहता पर पांडव हम सबके लिये आदर्श हैं क्योंकि पांडवों को माँ का संरक्षण मिला, माँ के संस्कार मिले इसलिये वह आदर्श संतान बने। गाँधारी पूरे जीवनकाल में आँखों पर पट्टी बाँधी रही संसार को आँख खोलकर कभी देखा ही नहीं तो संस्कार कहाँ से देती।

अत: पुण्यात्मा स्त्री की कोख से पुण्यात्मा शिशु का जन्म होता है तथा पापात्मा स्त्री की कोख से पापात्मा जीव का जन्म होता है इसलिए माँ को चाहिए वह स्वयं ऐसे पाप कार्य व गंदे कार्य न करे, न ही खोटी व गंदी सोच करे, जिससे आने वाली संतान पापात्मा हो, माँ पुण्य के कार्य करे हमेंशा सही सोच रखे, गर्भ से जन्म तक के समय में महापुरुषों के चरित्र को पढ़े जिससे भविष्य में आने वाली संतान पुण्यशाली हो।

125. जिज्ञासा– हे गुरुवर! कोई–कोई धर्मात्मा मरकर इन्द्र बनते हैं तथा कोई–कोई व्रती धर्मात्मा मरकर व्यंतर देव बनते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो लोग व्रती हैं, धर्मात्मा हैं, नियम आदि में दृढ़ हैं अंतिम समय में ऐसे लोगों को किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं हो, पीड़ा होने पर सही तरीके से उनकी सेवा हो, वे खुश रहे, उनका उपचार हो तो ऐसे लोग मरकर इन्द्र बनते हैं लेकिन जिनकी पीड़ा को नहीं समझा जाता, उपचार नहीं किया जाता, सेवा, विनय, वैयावृत्ति नहीं की जाती उनकी बात सुनकर उस पर ध्यान नहीं दिया जाता यदि वे संक्लेशता में प्राण त्यागते हैं तो ऐसे लोग मरकर के व्यंतर देव बनते हैं जिन्होंने सेवा नहीं की थी, हँसी की थी, संक्लेशित किया था इसलिए वे उनको परेशान करते हैं तथा अधिक दुःख देते हैं क्योंकि पूर्व में हमने उन्हें परेशान किया था अर्थात् पूर्व में हम जैसा कृत्य करते है उसके अनुरूप ही फल भोगते हैं। जो लोग व्रती महाव्रती होते हैं वे अंत समय में सल्लेखना समाधि धारण करते हैं ऐसे क्षपक का यदि पीड़ा में संक्लेशता में मरण होता है उनकी पीड़ा पर कोई ध्यान नहीं देता व अंत समय में कोई परमात्मा का स्मरण नहीं कराता तो ऐसे धर्मात्मा ही मरण करके व्यंतर देव बनते हैं ऐसे लोग सभी जगह उत्पात मचाते हैं, जिसने अंत समय में क्षपक को परेशान किया है अथवा क्षपक की सेवा नहीं की ऐसे व्यक्ति के ऊपर व्यंतर लग जाते हैं, जीना भी मुश्किल कर देते हैं। व्यंतरों में मनुष्यों से हजार लाख गुना शक्ति अधिक होती है। वो चाहे तो तुम्हें अटवी में डाल दे, कुएँ में डाल दे, मार दे, उठा–उठा कर पटकें कुछ भी कर सकते हैं।

यदि व्यंतरों से बचना है तो धर्मात्मा की सेवा करो, कष्ट मत दो, काले वस्त्रों को मत पहनो व बाल खोलकर मत रहो। मंदिर, जंगल, पर्वत, गुफा आदि अन्य स्थानों पर प्रवेश करते समय निःसही निःसही शब्द का प्रयोग करो, यथायोग्य, उनका आदर सम्मान, जय जिनेन्द्र व अभिवादन करो तथा भक्तामर के ऋद्धि मंत्रों का जाप करो, पंचपरमेष्ठी व पार्श्वनाथ भगवान् का स्मरण करो, भूतनाथ की सेवा करो तो भूतों की बाधा कभी नहीं होगी। अतः इन्द्र बनने के लिए संक्लेशित परिणाम मत करो।

126. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया चारों गतियों के जीवों में मात्र एक पुरुष ही एक ऐसा प्राणी है जो सप्तम नरक जाता है व मोक्ष भी ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! सभी प्राणियों में पुरुष ही एक ऐसा प्राणी है जो सबसे ऊपर व सबसे नीचे जा सकता है अर्थात् 14 राजू की यात्रा करने में यदि कोई सक्षम है तो वह है पुरुष, जब पुरुष अधम से अधम कार्य करता है, सप्त व्यसनों में लिप्त होता है, क्रोध कषाय के कारण अन्य जीवों को मारने का भाव होता है, माँस लोलुपी होता है, म्लेच्छों के समान कार्य करता है, निर्दयी होता है हमेशा दूसरों को कष्ट देने का विचार बनाता है, क्रूर परिणामी होता है, हमेशा निकृष्ट कार्य करने का भाव बनाता है, बुरे कार्यों को हमेशा करता है, पाप कार्यों में मस्त रहता है ऐसा जीव ही मरकर सप्तम नरक में जाता हैं तथा जो पुरुष दया करुणा से ओतप्रोत षट् कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ श्रावक धर्म का पालन करता हुआ, सम्यक्त्व को प्राप्त करके राग-द्वेष को मिटाकर वीतरागता का भाव बनाकर दिगम्बरत्व को धारण करता है, संयम, तप, त्याग व ध्यान के ईंधन से कर्मों को जलाता है एक दिन वह सर्व प्रकार के संकल्प विकल्पों को छोड़कर, विवेक की आँख के द्वारा उत्कृष्ट ध्यान करता हुआ सर्व कर्मों की निर्जरा करके पुरुषार्थ के बल से सर्व शक्ति को प्रकट करता हुआ मोक्षपुरी का राजा बन जाता है अत: निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है।

मनुष्य ही विचारशील प्राणी है सबसे जघन्य व सबसे उत्कृष्ट सोच मनुष्य ही करता है अन्य कोई नहीं जो सर्वश्रेष्ठ विचार करके सर्वश्रेष्ठ कार्य करता है ऐसी सोच जिसे सामान्य प्राणी विचार नहीं कर पाता, उत्कृष्ट जाति, धर्म व कुल वाला मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ कार्य अर्थात् निर्ग्रंथ रूप को धारण करके निर्वाण को प्राप्त करता है तथा नीच शूद्र जाति के मानव निकृष्ट सोच व निकृष्ट कार्य को करके सबसे नीचे वाले सप्तम नरक अर्थात् घोर अंधकार में डुबकी लगाता है।

अत: पुरुष ही सबसे निकृष्ट पाप कार्यों को करके सप्तम नरक में जन्म लेता है वहाँ अति दारुण दु:खों को भोगता है तथा पुरुष ही सबसे उत्कृष्ट पुण्य कार्यों को करके तीर्थंकर पद को प्राप्त करके मोक्ष सुख अर्थात् अनंत सुख को प्राप्त करता है।

127. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! दिगम्बर जैन साधु दिन में एक बार खड़े होकर अन्न जल ग्रहण करते हैं अन्य साधु नहीं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! दिगम्बर जैन साधु की मुख्य पहचान है नग्नत्व, पिच्छी कमण्डल, केशलौंच और स्थिति भोजन। वे दिन में एक बार खड़े होकर द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की शुद्धि का ध्यान रखते हुये आहार जल ग्रहण करते हैं। ठिदिकरण अर्थात् खड़े होकर आहार ग्रहण करना यह साधु के सात विशेष गुणों में से एक है। भूख से कम आहार करना जिससे साधना अच्छे से हो, ज्ञान में वृद्धि हो, आलस्य व प्रमाद न बढ़े, आत्मध्यान अधिक से अधिक हो, दिगम्बर साधु खड़े होकर आहार करता है तो उसकी पूर्ण वीतरागता उस समय झलकती है। आहार देते समय श्रावक श्राविकाएँ नजदीक रहते हैं बड़े प्रेम से मनुहार करते हुये जब कोई महिला व बहिन महाराज को आहार देती है उस समय महाराज के मन में कोई दूषित परिणाम नहीं आते, कामवासना के परिणाम नहीं आते यदि उनके मन में गंदे विचार आयेंगे तो उनकी वीतरागता में दोष लगेंगे जिससे उनका विकार भाव भी स्पष्ट दिख जायेगा इसलिये भी दिगम्बर साधु खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं।

दिगम्बर संत को कितनी भी परेशानी आ जाये, पैर में बालतोड़ हो गया हो अथवा पैर में चोट आ गयी हो, फैक्चर हो गया हो, खड़े होने की ताकत न हो फिर भी खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं यदि खड़े न हो सकें तो अन्तराय कर लेते हैं पर अपने मूलगुणों के पालन करने में दृढ़ रहते हैं, आहार का त्याग कर देते हैं, स्वप्न में भी कभी बैठकर आहार करने का विचार नहीं करते अंतिम समय में शरीर कृश हो जाता है, खड़े होने की ताकत समाप्त हो जाती है तब भी जैन साधु प्रसन्नचित्त हो खड़े होकर आहार करना स्वीकार करते हैं, ताकत समाप्त होते ही सल्लेखना समाधि ग्रहण कर लेते हैं और हँसते हँसते देह का त्याग कर देते है पर कभी भी बैठकर, घूमकर, चलकर आहार ग्रहण नहीं करते, खड़े होकर ही करते हैं।

मुसीबत सब पर आती है, कोई बिखर जाता है, कोई निखर जाता है।

128. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है मौनपूर्वक भोजन करना सर्वश्रेष्ठ है जो मौन धारण करता है उस पर सरस्वती प्रसन्न रहती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे मनीषी आत्मन्! शब्दकोश में असंख्यात शब्द हैं पर सबसे अच्छा है मौन रहना। आचार्यों ने मौन के सप्त स्थान बतलाये हैं जिनमें से एक है भोजन करते समय मौन रहना, मौनपूर्वक भोजन करने से कई लाभ है मनन शक्ति, तार्किक शक्ति, बौद्धिक शक्ति बढती है, वाक्पटुता आती है तथा जो भोजन करते समय बोलता है वह मूर्ख है, झूठे मुख बोलने से सरस्वती का अपमान होता है, जिससे ज्ञान की वृद्धि नहीं होती, झूठे मुख बोलने से हमारे वचनों में प्रमाणिकता नहीं आती है व वाक्पटुता की कला भी नहीं आती है, सम्मान, बहुमान स्वाभिमान नहीं रहता है क्योंकि यदि भोजन करते समय बोलेंगे तो माँगना भी पड़ेगा, माँगने से हमारा स्वाभिमान भी समाप्त होगा। कहा भी है–

माँगन मरन समान है मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला यह सद्गुरु की सीख।

एक बार मर जाना लेकिन किसी से कुछ माँगना मत, माँगने वाला अणु से भी छोटा कहा है व बाँटने वाला आकाश से भी महान होता है। मौनपूर्वक भोजन करने से इच्छाएँ समाप्त होती हैं। जैसा मिलेगा वैसा भोजन करेंगे यदि नमक नहीं है तो बिना नमक का भोजन करेंगे, घी नहीं है तो बिना घी का भोजन करेंगे इससे हम इच्छाओं को भी जीत सकेंगे, मौनपूर्वक भोजन करने से हमारी इन्द्रियों पर भी विजय होती है, रसना इन्द्रिय अच्छा-अच्छा खाने को माँगती है हमारा मौन रहेगा तो उसकी माँग पूरी नहीं होगी इसलिये उस पर विजय होगी, मौनपूर्वक भोजन करने से क्रोध पर भी विजय होगी, अहंकार भी जागृत नहीं होगा, मायाचारी से भी बच जायेंगे, लोभ, लिप्सा, लालच भी दूर होगी, लड़ाई झगड़ा नहीं होगा, विचारों में कटुता नहीं होगी, संक्लेशता नहीं बढ़ेगी अत: मौन रहना ही सर्वश्रेष्ठ है।

❊ किसी को धोखा देकर ये न समझो मैं चालाक हूँ बल्कि ये समझो उसे हम पर कितना विश्वास है।

129. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शास्त्रों में पढ़ा है भोजन खड़े होकर नहीं, घूमते हुये नहीं, लेटे हुये नहीं, बैठकर करना चाहिये। ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! प्रत्येक व्यक्ति को भोजन बैठकर करना चाहिये। खड़े होकर, घूमते हुये नहीं करना चाहिये बैठकर भोजन करना सभ्यता का प्रतीक है, भारतीय संस्कृति है, प्राचीन परम्परा है। गाँव के बहुत से लोग उकडू बैठकर भोजन करते हैं इस प्रकार के भोजने करने से जोड़ों में दर्द नहीं होता, पाचन शक्ति व लीवर सही रहता है तन स्वस्थ व मन प्रशस्त रहता है।

यदि उकडू बैठकर भोजन करने में शर्म आती है तो हमें आलती पालती मारकर जमीन पर बैठकर भोजन करना चाहिये जिससे हम भोजन के समय जमीन से जुड़े रहे जिससे जमीर से भी जुड़े रहेंगे व अपनी संस्कृति से भी जुड़े रहेंगे।

बहुत से लोग चलते–फिरते घूमते–घूमते जानवरों के समान भोजन ग्रहण करते हैं वह समझते हैं इससे हमारा स्टैण्डर्ड बढ़ रहा है, इसका नाम है बफर सिस्टम। खाना उठाओ, खाओ, चलते जाओ व चरते जाओ, बफर शब्द बफेलों से बना है, बफेलो को हिंदी में भैंस कहते हैं जो खड़े होकर चलते फिरते खाते हैं वह भैंस जैसे जानवर कहे जाते हैं।

अत: भोजन अपने हाथ पैरों को धोकर जमीन पर बैठकर मौनपूर्वक करना चाहिये जिससे हमारी संस्कृति कायम बनी रहे, बैठकर भोजन करने के कई फायदे हैं। भोजन धीरे–धीरे करते हैं, विवेक पूर्वक करते हैं क्या खाना? कितना खाना? इसका भी ध्यान रखते हैं जिससे हमारी पाचन शक्ति ठीक रहती है, खाया हुआ सही तरीके से पच जाता है जिससे हमारा स्वास्थ्य ठीक रहता है, बुद्धि व विवेक जाग्रत रहता है, मानसिक शांति बनी रहती है, शरीर हृष्ट पुष्ट रहता है तथा जो बैठकर भोजन करते हैं अन्य लोग भी उसका सम्मान करते हैं।

*** हमारी खुश किस्मती यह है कि हम भगवान् को मानते हैं पर बदकिस्मती यह है कि हम भगवान की एक नहीं मानते।**

130. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है सभी कर्मों में बलवान् सभी कर्मों का सरदार व कर्मों का राजा मोहनीय कर्म है–ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! द्रव्यकर्म के आठ भेद होते हैं। आठों कर्मों में सबसे बलवान् व सबसे अधिक 70 कोड़ाकोड़ी की स्थिति वाला मोहनीय कर्म है जो आत्मा को मोहित करके मूढ़ बना देता है, हमारे आचार-विचार, व्यवहार की शक्ति को विकृत कर देता है, हमारे चित्त व हमारे चरित्र को बिगाड़ देता है, जो आत्मा के सम्यक्त्व व चारित्र गुण का घात करता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं यह शराब के समान घातक व विस्फोटक है।

मोहनीय कर्म सरदार है तो अन्य सात कर्म उसके साथी हैं। मोहनीय कर्म के कारण ही यह जीव अनादिकाल से चौरासी लाख योनियों में पंच परावर्तन कर रहा है, यह जीव जिस पर्याय में जाता है उसी में आसक्त हो जाता है परवस्तु से मोह करने लगता है, मरना भी नहीं चाहता मोही व्यक्ति को शराबी के समान कहा है जैसे – शराबी व्यक्ति पागल व्यक्ति की तरह मदोन्मत्त होकर झूमता है उसी को अच्छा समझता है, शराबी व्यक्ति विवेकशून्य होने के कारण सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा तत्त्व-कुतत्त्व का निर्णय नहीं कर पाता है वैसे ही मोही जीव मोहनीय कर्म को (जिसे कर्मों का राजा कहा जाता है) सत्य असत्य का, अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं हो पाता है, मिथ्यात्व के उदय में मति भ्रष्ट हो जाती है, धर्म व सही आचरण करने में रुचि नहीं होती पर पदार्थों में ही रुचि लगी रहती है यह जीव स्व से हटा पर में लगा इसी कारण यह जीव संसार रूपी महाअटवी में भ्रमण करता रहता है।

सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र नहीं होता तथा वीतरागता के बिना कभी भी किसी को मोक्ष न हुआ है न कभी होगा, धर्म के बिना धर्मात्मा नहीं होता वैसे ही मोहनीय कर्म के बिना अन्य कर्म समाप्त नहीं होते। मोहनीय कर्म के समाप्त होते ही सभी कर्म पलायन हो जाते हैं।

मोहनीय कर्म सभी कर्मों का राजा है। जिस प्रकार राजा के मारे जाने पर युद्ध क्षेत्र में सेना में भगदड़ मच जाती है ठीक उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर शेष तीन घातिया कर्म अन्तर्मुहूर्त में नष्ट हो जाते हैं और केवलज्ञान हो जाता है शेष अघातिया कर्म भी जली रस्सी के सदृश हो जाते हैं और आत्मा परमात्मा बन जाता है।

131. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! कभी–कभी किसी को प्रिय व्यक्ति का वियोग होता है व कभी–कभी किसी को अप्रिय व्यक्ति का संयोग होता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! जब हम चिड़िया, मोरनी, मुर्गी, कुत्ती, बिल्ली, चुहिया, गाय, सिंहनी, स्त्री आदि के बच्चों को उनसे अलग कर देते हैं उन्हें संतापित करते हैं अथवा माता–पिता से अलग कर अपने शौक के लिये पालते हैं अथवा छोटा जानकर उन्हें खिलाने के लिए वियोग कर देते हैं। माता पिता को अपने बच्चे सबसे प्रिय होते हैं जैसे – बंदर अपने बच्चों को जब तक बड़े नहीं होते छाती से चिपकाये रहते हैं, मृत्यु के पश्चात् भी छाती से चिपकाये रहते हैं ऐसे प्रियजनों का वियोग करने पर हमारे प्रिय व्यक्ति का भविष्य में वियोग होता है जिसे इष्ट वियोग कहते हैं जिसका स्मरण कर हम अत्यधिक दु:खी होते हैं, यदि ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती हैं तो उनके वियोग में अत्यधिक दु:खी रहते हैं तथा आर्त्तध्यान करते रहते हैं।

इसी प्रकार किसी जीव को पानी में से निकाला, मार दिया अथवा किसी अन्य ने मार दिया वही जीव शत्रु हो गया, भविष्य में वही जीव पुत्र, पुत्री, पड़ोसी बनकर आ जायेंगे अर्थात् इस प्रकार अनिष्ट का संयोग होगा जिससे मन संतापित होगा, आर्त्तध्यान होगा अतएव ऐसा कार्य न हो जिससे हमारे द्वारा किसी प्रिय का वियोग अथवा अप्रिय जनों का संयोग हो। अत: दूसरे प्राणियों के घर उजाड़ देना, उन्हें दु:ख देना उनके माता पिता को मार देना, दु:ख देकर खुश होना, बच्चों के दूर होने पर हँसी उड़ाना आदि इस प्रकार की क्रिया करने से परभव में प्रिय व्यक्ति पुत्र, पुत्री, पति आदि का वियोग होता है। अत: कभी भी किसी जीव को उनके माता–पिता, परिवार से विमुख नहीं करना चाहिये वरना अनेक पर्यायों तक इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग होगा?

पलके झुकें और नमन हो जाए, मस्तक झुके और वंदन हो जाए।
ऐसी नजर कहाँ से लाऊँ, तुझे याद करूँ और तेरा दर्शन हो जाए।।

132. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! घर में, दुकान में, बाजार में, ऑफिस में, स्कूल में मोबाइल आदि में शांति नहीं मिलती है, शांति अपने अंदर ही है ऐसा क्यों?

समाधान – हे प्रिय आत्मन्! घर, बाजार, व्यापार आदि साधन है, साधनों में कभी भी शांति नहीं हो सकती ये सभी विकल्पों के जाल हैं। कभी खाने का, कभी कमाने का, कभी पहनने का, कभी रहने का, कभी पत्नि का, बच्चों का, मित्रों का, वस्तुओं का, कभी शरीर का विकल्प हर क्षण रहता है। जहाँ विकल्पों का वास है वहाँ शांति का निवास नहीं हो सकता। शांति यदि चाहते हो तो संतों के पास देखो, प्रभु के पास देखो, जिसके पास जो होता है वह दूसरों को भी वही देता है इसलिये वीतरागता को देखकर, निर्ग्रन्थता को देखकर, स्वयं को देखो स्वयं से मिलकर आत्मा से मिलो परमात्मा नजर आयेगा जैसे ही परमात्म तत्त्व की प्राप्ति होगी वैसे ही अनंत शांति व अनंत सुख का अनुभव होगा इसलिये शांति न घर में है न बाजार में, न तीर्थों पर है, शांति तो स्वयं के अंदर है इसलिये शांति से मिलने के लिये स्वयं को खोजो।

शांति का अर्थ समता भाव है, शांति कहाँ से आती है, किसी का नाम शांतिलाल रखने से व शांतिदेवी रखने से शांति नहीं आती। कषायादि राग-द्वेष विकल्पों के जाल में रचे पचे हैं जिससे अशांति के परिणाम होते रहते हैं इसलिये नाम से शांति प्राप्त नहीं होती, कार्य से शांति होती है। अन्तरंग विचारों से, शुद्ध भावों से, पर के विकल्पों का त्याग करने से अथवा कोई कुछ भी कहे, गाली दे, मारे तब भी विचार करे ये सब बाहरी क्रिया है। अन्तरंग आत्मा में शांति ही शांति, आत्मा में अनंत सुख व शांति समाहित है।

विवेक की रौशनी को यदि हम हमेशा हर अवस्था में अपने साथ रखते हैं तो निश्चय ही हम पूनम के चाँद की तरह पूर्ण सुख-शांति व माधुर्य का अपनी आत्मा में वास कर सकते हैं अत: शांति परवस्तु में नहीं, शरीर में नहीं, घर में नहीं, शांति हमारे अंदर ही है।

*** जाप कितनी की कीमत इसकी नहीं, जाप में कितनी एकाग्रता आयी कीमत है "वाचन से पाचन महान है।"**

133. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! किसी–किसी का मन थोड़ा संतोषित होता है व किसी का मन पूर्ण संतोष को प्राप्त होता है तथा किसी किसी का मन सम्पूर्ण जीवन पर्यंत तक संतोष को प्राप्त नहीं होता है?**

समाधान – हे भव्यात्मन्! मन एक यंत्र है। यंत्र को संचालित करने वाली है आत्मा, आत्मा बिना नाम के कभी संतोष को प्राप्त नहीं हो सकती जैसे– मीटर से लाइट नहीं जलती लाइट में स्वयं प्रकाश करने की क्षमता है वैसे ही मन तो केवल निर्णय करता है सही व गलत का। यदि मन पर पदार्थों पर वस्तुओं को, पर के दोषों को, भोगाकांक्षा को ग्रहण करने का गलत निर्णय लेगा तो आत्मा संक्लेशित होगी। कभी भी मन संतोष को प्राप्त नहीं हो सकता, जैसे–जैसे इच्छाएँ वासनाएँ अधिक होगी, संकल्प विकल्प अधिक होंगे, लोभ लालच बढ़ेगा वैसे–वैसे मन अधिक संक्लेशित होगा तब मन कभी भी संतोष को प्राप्त नहीं हो सकेगा, संतोषित मन करने के लिए इच्छाओं को समाप्त करें। ज्ञान बुद्धि विवेक के माध्यम से हम अपनी भोगाकांक्षाओं को समाप्त करते हैं, विवेक हमारे ज्ञान का निष्कर्ष है, यह शांति का द्वार और मुक्ति का आधार है, विवेक स्वयं धर्म है जो जीवन को प्रकाशित करने वाला उत्तम चिराग है, विवेक रूपी चिराग के द्वारा इच्छाओं भोगाकांक्षाओं को समाप्त करके सभी संकल्प विकल्पों को छोड़कर वीतरागता के उत्कृष्ट परिणामों के द्वारा व परमात्मा की उत्तम रीति से भक्ति करके, गुणगान करके मन अधिक संतोषित होता है। जब हम भगवान की भक्ति में तन्मय हो जाते हैं तब अन्दर से बिल्कुल खाली हो जाते हैं अथवा राग, द्वेष कषाय के परिणामों से खाली हो जाते हैं। जब जो आत्म विचारों में डूब जाते हैं तब मन पूर्ण संतोष को प्राप्त हो जाता है जो मेरा है वह कभी जायेगा नहीं तथा जो चला गया वो मेरा कभी था नहीं यही भावना पूर्ण संतोष को प्राप्त कराती है।

※ आलस्य से विद्या नष्ट हो जाती, दूसरे के पास जाने से धन, बीज की कमी से खेती तथा गुरु के बिना शिष्यत्व नष्ट होता है।

134. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शादी के पश्चात् लड़की–लड़के के साथ उसके घर जाती है, लड़का–लड़की के यहाँ नहीं जाता ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो अधिक ताकतवर होते हैं कमजोर लोग उनके साथ जाते हैं, पुरुष शक्तिशाली हैं, ताकतवर है, स्त्री कमजोर है इसलिये पुरुष के घर स्त्री जाती है, स्त्री के साथ पुरुष नहीं जाते। जैसे – इंजन ताकतवर है डिब्बे कमजोर इसलिये इंजन के साथ डिब्बे जाते हैं यदि इंजन न हो तो डिब्बों में शक्ति नहीं कि एक कदम भी आगे बढ़े। ट्रेक्टर जब तक अकेला होता है तब तक 60 की स्पीड से चलता है लेकिन जैसे ही ट्रेक्टर के साथ ट्रोली को लगा देते हैं वैसे ही ट्रेक्टर की स्पीड 30 की हो जाती है, ट्रेक्टर में सामान हो तो 20 की स्पीड से चलने लगता है, ट्रेक्टर पुरुष के समान है ट्रोली स्त्री के समान व ट्रेक्टर का समान बच्चे हैं। किसी परिवार में 100 सदस्य हैं। दूसरे परिवार में मात्र 10 सदस्य हैं तो वह 10 सदस्य 100 लोगों के साथ हो जायेंगे तब वो 115 लोग मिलकर अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं।

स्त्री में निभाने व निभने की शक्ति होती है,समर्पण भाव अधिक रहता है, वाणी मधुर व स्वभाव विनम्र होता है, सबको अपना बनाने की कला होती है इसलिये पति के घर को अपना समझती है, अपने प्रेम व्यवहार के कारण ससुराल में सबको अपने वश में कर लेती है, सबको खुश रखती व स्वयं खुश रहती है इसलिये पुरुष के घर महिला जाती है पुरुष अहंकारी व अधिक सम्मानी होते हैं इसलिये वह पराये घर को अपना नहीं समझते।

सर्वप्रथम प्रसेनजित कुलकर से विवाह परम्परा प्रारम्भ हुई। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान स्वयं ही विवाह करके अपने महल में मरुदेवी को लाये तब से यह परम्परा आज तक अक्षुण्ण है। अत: विवाह के पश्चात् पुरुष के घर स्त्री जाती है, पुरुष नहीं।

जीतने का सबसे अधिक मजा तब आता है जब सारे आपके हारने का इंतजार कर रहे हो।

135. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव! बबूल के पेड़ में काँटे ही काँटे होते हैं, गुलाब में कुछ कम होते हैं ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्यात्मन्! जो जीव पूर्व में घर में परिवार वालों को काँटों जैसा चुभता था। मंदिर में आये तो समाज वालों को चुभते थे, व्यापार करने गया तो वहाँ पर भी सभी को काँटों की तरह चुभता था, ऐसे जीवों का यही उद्देश्य होता है जैसे बने सभी को कष्ट दो, वाणी, व्यवहार, गलत कार्य, दुराचरण के माध्यम से एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव दु:खी रहे जिस जीव के जितने कलुषित परिणाम होते हैं तथा दूसरे जीवों को अधिक दु:खी करते हैं तो कर्म कहता है तुमने सभी को कष्ट दिया, अपनी पहिचान, अपना व्यवहार काँटों जैसा बना लिया तो कर्म कहता है तुम्हारे स्वभाव में काँटा है तो तुझे काँटा ही बनाये देते हैं इसलिये बबूल के पेड़ में काँटे ही काँटे होते हैं।

गुलाब के पेड़ में काँटे भी होते है, फूल भी होते, पत्ते भी होते, सुगंधित भी होते ये वो लोग हैं जो धर्म भी करते हैं, वाणी कुछ मधुर तथा कुछ काँटे की तरह चुभने वाली होती है, व्यवहार अच्छा भी होता है व कठोर भी होता है, अन्य दूसरे प्राणियों को काँटे की तरह थोड़े कम चुभते हैं इसलिये गुलाब में काँटे भी होते हैं, खुशबू भी होती है, फूल भी होता है।

जो दूसरों को कष्ट देने में आनंदित होते हैं, खुश होते हैं ऐसे जीवों के काँटे ही काँटे होते हैं। ऐसे जीव काँटे बनकर स्वयं भी दु:खी रहते हैं तथा दूसरों को भी अपनी चुभन से दु:खी करते हैं तथा सभी को अप्रिय लगते हैं।

अत: हम सभी को बबूल की तरह नहीं बनना है, कमल व गुलाब की तरह खिलना है, वाणी व व्यवहार को मधुर बनाना है।

*** अर्थ से धर्म की रक्षा होती है, निरंतर साधना से विद्या की, मृदु स्वभाव से राजा की तथा पतिव्रता स्त्रियों से घर परिवार की रक्षा होती है।**

इंसान की अच्छाई पर सब खामोश रहते हैं।
बुराई एक भी दिखती तो गूंगे बोल उठते हैं।।

136. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! श्रावक लोग दिन रात कमाते हैं, दोनों हाथों से कमाते हैं एक हाथ से खाते हैं, साधु कुछ भी नहीं कमाते और दोनों हाथों से खाते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य आत्मन्! चला चली के इस संसार रूपी मेले में यह मानव सुबह से शाम तक रात्रि तक व्यापार करने में, नौकरी करने में, धन कमाने में सम्पूर्ण जीवन दोनों हाथों से कमाने में लगा रहता है। परिवार का मुखिया परिवार चलाने के लिये, बच्चों के पालन पोषण के लिये, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन कमाता है पर खुशी प्राप्त नहीं होती कमाते-कमाते पूरी जिंदगी निकल जाती तब भी भोजन नसीब नहीं होता क्योंकि पूर्व में आपने कभी उत्तम पात्रों को दान नहीं दिया था, गरीबों को भोजन नहीं कराया था, भिखारी को भिक्षा नहीं दी थी, भिक्षा भी दी तो खुश होकर नहीं दी, दान दिया पर खुश होकर नहीं दिया, धर्म कार्य नहीं किया, यदि किया भी तो उपयोग नहीं लगाया, ना ही विवेक लगाया इसलिये लोग दिन रात कमाते हैं, दोनों हाथों से कमाते हैं पर मुश्किल से एक हाथ से खाते हैं अर्थात् कमाते अधिक है फल थोड़ा सा मिलता है, संत कुछ भी नहीं कमाते पर ऐसा कमाते हैं जो कोई और नहीं कमाता, रत्नत्रय रूपी धन जिसे धर्म, वैराग्य, संयम, तप के द्वारा संत प्राप्त करते हैं, ध्यान के द्वारा तीन लोक की सम्पदा भी प्राप्त कर लेते हैं इसलिये जैन साधु मुनि बनकर रत्नत्रय को धारण करके प्रतिपल इतना पुण्य कमाते हैं जिस पुण्य के प्रभाव से साधु कोई व्यापार नहीं करते, नौकरी नहीं करते, पद आदि ग्रहण नहीं करते, धनादि नहीं कमाते पर दोनों हाथों से खुश होकर आहार ग्रहण करते हैं।

तथा जो साधुओं को प्रतिदिन खुश होकर आहार देता है वह कमाता नहीं है बिना मेहनत के ही भोजन सुलभता से प्राप्त हो जाता है। अत: ऐसा कार्य करे जिससे कमाना न पड़े।

सफलता मन की शीतलता से नष्ट होती है, ठंडा लोहा ही गर्म लोहे को काट व मोड़ सकता है।

137. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** आपने बतलाया गृहस्थों को, श्रावकों को मुख शुद्धि करके मंदिर में जाकर अभिषेक पूजन करना चाहिये ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! प्रत्येक गृहस्थ को, श्रावक को मुख शुद्धि करके अभिषेक, शांतिधारा, पूजन व परमात्मा का गुणगान करना चाहिये, क्योंकि रात्रि में सोने के बाद मुख अशुद्ध हो जाता है इसलिये शुद्धात्मा का गुणगान मुख शुद्ध करके ही करना चाहिये क्योंकि मुख शुद्ध होगा तो हमारी वाणी शुद्ध होगी जिससे हमारा मन व वचन भी शुद्ध होगा इसलिये प्रात: उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर हाथ की शुद्धि, शरीर की शुद्धि व मुख शुद्धि बहुत जरूरी है।

मुख शुद्धि कॉलगेट, पेस्ट आदि से नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें हड्डी का चूरा मिला होता है, जब हम पेस्ट करते हैं तो हमारे मुख से गाय भैंसों की तरह झाग निकलता है, जो रिन सर्फ में सिन्थेटिक डिटर्जेन्ट में डाला जाता है वही पदार्थ पेस्ट व पाउडरों में झाग पैदा करने के लिये डाला जाता है तथा साथ में मरे हुये जानवरों की हड्डी का चूरा डालते हैं। पाउडर में अलग-अलग रंग की फ्लोराइड भी मिलाई जाती है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

जड़ी बूटी से बने मंजन कर सकते हैं, नीम की दातुन जो दाँत व मसूड़ों को मजबूत रखती है, दाँत पीले नहीं होते, पायरिया व खून नहीं आता, इमली की दातुन से यश व सम्मान बढ़ता है, बबूल की दातुन फैले हुये दाँतों को पास में करती है, मुलेठी की दातुन करने से कंठ मधुर व होंठ लाल होते हैं, ऊमर की दातुन से वाणी की सिद्धि होती है, लोमड़ा की दातुन से कैंसर के रोग दूर होते हैं, इसलिये मुख शुद्धि व दातुन पेड़ की लकड़ी, छाल आदि से करना चाहिये।

जैन साधु व साध्वी मुख शुद्धि नहीं करते क्योंकि 28 मूलगुणों में एक विशेष मूलगुण है अदन्त धोवन। जैन साधु-साध्वी 24 घण्टे में एक बार ही आहार पान करते हैं इसलिये मुख शुद्धि नहीं करते, दाँतों को सुंदर करने के लिये दाँतों को नहीं धोते, उपचार हेतु हल्दी, नमक, सरसों के तेल, फिटकरी आदि से आहार के बाद कुल्ला करते हैं।

138. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! नींद क्यों आती है तथा बिस्तर देखकर बहुत जल्दी निद्रा देवी प्रसन्न हो जाती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! निद्रा नामकर्म के कारण नींद अधिक आती है, गरिष्ठ भोजन करने से, भूख से अधिक भोजन करने से, टिककर बैठने से, थकान के कारण, आलस्य व प्रमाद के कारण बिस्तर आदि देखकर निद्रा देवी प्रसन्न हो जाती है और हम सो जाते हैं जब तक नामकर्म है तब तक नींद समाप्त नहीं हो सकती पूर्णरूपेण निद्रा की समाप्ति बारहवें गुणस्थान में होती है।

बिस्तर देखकर बहुत जल्दी नींद आती है, प्राय: देखा जाता है घरों में डबल बेड व सिंगल बेड से गद्दे नहीं उठते हमेशा बिछे रहते हैं, अपनी शान समझते हैं, मेहमान आये तो देखें। बिस्तर देखकर जल्दी उबासी आने लगती है बिस्तर पर बैठे फिर सोने में देर नहीं लगती, दिन में सोना रोग का प्रतीक है, इससे अस्वस्थता भी महसूस होती है समय का अपव्यय भी होता है तथा धर्म ध्यान भी नहीं हो पाता है।

जिन घरों में बिस्तर लगे होते हैं वो अहिंसा धर्म का पालन भी नहीं कर पाते छोटे-छोटे सूक्ष्म जीव हो जाते हैं व जीव हमारे उठने, बैठने, सोने से शीघ्र मरण को प्राप्त हो जाते हैं, बड़े-बड़े जीव छिपकली, सर्प, मेंढक आदि भी बिस्तरों में घुस जाते हैं जो स्वयं भी मर सकते हैं अथवा हमें भी हानि पहुँचा सकते हैं इसलिये हमें अहिंसा धर्म के पालन के लिये बिस्तर प्रतिदिन झाड़कर, देखकर, बिछाना चाहिये। जैन साधु भूमि पर या चटाई पर शयन करते हैं, चटाई भी मार्जन करके बिछाते हैं क्योंकि वह अहिंसा महाव्रत का पूर्ण पालन करते हैं, वे संस्तर का प्रयोग करते है उनके बिस्तर का त्याग होता है।

जैन साधु के मूलगुणों में एक विशेष मूलगुण है भूमिशयन इसका वह पूर्ण रूप से पालन करते हैं तथा नींद पर विजय प्राप्त करते हैं।

परखों तो कोई अपना नहीं समझो तो कोई पराया नहीं।

139. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया सामान्य लोग जल से शरीर की शुद्धि करते हैं तथा जैन साधु मंत्र से शरीर की शुद्धि करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! स्नान करने से हमारे शरीर की गंदगी दूर होती है, मन आनंदित होता है। हमारे शरीर में नई स्फूर्ति एवं ताजगीपन महसूस होता है, शरीर की शुद्धि करने से हमारा शरीर निरोगी होता है, स्नान से शरीर के प्रत्येक रोम छिद्र की सफायी होती है। पसीना, धूल, गंदगी सब साफ हो जाती है इसलिये प्रात: उठकर सोने के पश्चात् सुबह स्नान करना चाहिये क्योंकि सोना छोटी मृत्यु है, मृत्यु का पूर्वाभ्यास है। मृत्यु के पश्चात् शरीर पूर्ण अशुद्ध हो जाता है क्योंकि शरीर अचेतन व जड़ हो जाता है वैसे ही सोने के पश्चात् चेतना शक्ति कार्य नहीं करती, नींद के पश्चात् अपनापन समाप्त हो जाता है, सुबह जब जागते हैं तो हमारा शरीर अशुद्ध हो जाता है इसलिये शुद्धि के लिये, स्वस्थता के लिये स्नान किया जाता है। पूर्व दिशा में मुख करके स्नान करने से सर्वकार्य सिद्धि व आर्थिक उन्नति होती है। आग्नेय दिशा में मुख करके स्नान करने से स्त्री रोग व बीमार होते हैं, दक्षिण दिशा में स्नान करने से रोग आते हैं, नैऋत्य दिशा में स्नान करने से भूत-प्रेत की बाधा होती है, पश्चिम दिशा में स्नान करने से गलतफहमी व पुरुषों के रोग होते हैं। वायव्य दिशा में स्नान करने से मध्यम फल मिलता है, उत्तर दिशा में स्नान करने से धन-धान्य आदि सम्पत्ति प्राप्त होती है।

स्नान सिर से पैरों तक करना चाहिये जिससे मस्तिष्क से पैरों तक की गर्मी समाप्त होती है, लू नहीं लगती है।

दिगम्बर साधु का अस्नान मूलगुण है, जीवन पर्यन्त तक स्नान नहीं करते मंत्र के द्वारा शरीर की शुद्धि करते हैं, वे रत्नत्रय से पवित्र होते हैं, ये शृंगार के पूर्ण त्यागी होती है। स्नान करना भी एक शृंगार है इसलिये दिगम्बर साधु शरीर को सजाने के लिये स्नान नहीं करते पर जब रजस्वला स्त्री, चांडाल, शूद्र से स्पर्श होने पर, माँस, हड्डी के स्पर्श हो जाने पर, समाधिस्थ साधु के स्पर्श करने से दण्ड स्नान करते हैं बाद में प्रायश्चित ग्रहण करते हैं।

140. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जैन साधु सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त नग्न रहते हैं तन पर धागा भी धारण नहीं करते ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! प्रकृति का नियम है जो जैसा आया था वह उसी रूप में रहकर वैसा ही जायेगा जब बच्चे का जन्म होता है तब उसके तन पर कोई वस्त्र नहीं होते, न ही आभूषण व शृंगार होता है। जैन साधु प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। वो कहते हैं जब जन्म हुआ था तब नग्न थे, जब मरण करेंगे तब भी नग्न अवस्था में जायेंगे तो बीच में वस्त्रों का झमेला क्यों? आचार्य जिनसेन, आ. कुंदकुंद स्वामी ने कभी वस्त्र नहीं पहने निर्वस्त्र ही रहे तथा आ. जिनसेन ने 8 वर्ष में तथा आ. कुंदकुंद ने 11 वर्ष में दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करके अन्तरंग व बहिरंग से निर्वस्त्र हो गये अर्थात् रत्नत्रय को धारण करके अपनी आत्मा का कल्याण किया।

दिगम्बर जैन साधु आवरण से रहित होते हैं, दिशाएँ ही जिनका अम्बर है ऐसे अम्बर से रहित निर्वस्त्र अचेलकत्व मूलगुण को धारण करते हैं। अचेलकत्व का अर्थ है चेल अर्थात् वस्त्र से रहित है, दिगम्बर होना बहुत बड़ी शक्ति है यह साधुओं का विशेष गुण है।

दिगम्बर साधु विकारों से, विषय वासनाओं से रहित होते हैं इसलिये निर्वस्त्र होते हैं, जो भोग विषयों में आसक्त होते हैं वही वस्त्र पहनते हैं, छोटे बच्चों के अंदर भोग विषय नहीं होते इसलिये वह स्वयं वस्त्र नहीं पहनते माता-पिता व अन्य कोई परिवार जन बच्चों को वस्त्र पहनाते हैं तब भी बच्चे पहनना नहीं चाहते जैसे ही बड़े होते हैं विषय वासना का अन्तर्गमन होता है वैसे ही वस्त्र पहनने लगते हैं पर साधु हमेशा निर्विकारी होते हैं, अपरिग्रही होते हैं, वह वस्त्रों को भी परिग्रह समझते हैं इसलिये तन पर एक धागा भी नहीं रखते सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी जैन साधु ही होते हैं, सर्व परिग्रह का त्याग होते ही सभी इच्छाएँ शमन होती हैं, इच्छाओं के निरोध करते ही भावदशा शुद्धोपयोग को स्पर्श करने लगती हैं अत: अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह का त्याग अचेलकत्व है। अचेलकत्व अथवा नग्नता के बिना कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। णमोकार मंत्र में पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है ये पंच परमेष्ठी दिगम्बरत्व को धारण करके ही परमेष्ठी पद में विराजमान हुये हैं।

141. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शास्त्रों में पढ़ा है सूर्यास्त से पूर्व व सूर्योदय के पश्चात् भोजन करना हमारी भारतीय संस्कृति है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! सूर्योदय के 2 घड़ी पश्चात् भोजन करना व सूर्यास्त से 2 घड़ी पूर्व भोजन करना हमारी भारतीय संस्कृति है क्योंकि सूर्योदय के पूर्व व सूर्यास्त के बाद सूर्य का उचित प्रकाश नहीं होता अँधेरे में अथवा लाइट के कृत्रिम उजाले में छोटे-छोटे सूक्ष्म जीव व अनेक त्रस जीव हमारे भोजन में गिर जाते हैं ऐसे भोजन के भक्षण करने से अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं।

डॉ. के अनुसार यदि जूं खाने में आ जाये तो जलोदर रोग हो जाता है, यदि मक्खी खाने में आ जाये तो वह वमन करा देती है, बाल आ जाये तो कण्ठ का स्वर भंग कर देती है, सूर्यास्त के बाद भोजन करने से तिर्यंच व नारकी बनते हैं इसलिये दिन में भोजन करना हमारी भारतीय संस्कृति है, दूसरों के दु:ख को देखकर मोम की तरह पिघल जाना हमारी संस्कृति है, दूसरों को भूखा देखकर अपने हिस्से में से दे देना हमारी संस्कृति है, देवदर्शन, देवपूजन, संतों की सेवा, शास्त्र का वाचन करना हमारी संस्कृति है, रीति रिवाज के अनुसार श्रेष्ठ वेशभूषा हमारी संस्कृति है, गरीबों की सहायता करना, अन्धे, बहरे, काने, लूले, लँगड़े, दरिद्री की पूर्ति करना हमारी संस्कृति है, समय पर भोजन पान करना, ईमानदारी से व्यवसाय करना, समय पर व्यापार करना हमारी संस्कृति है इससे विपरीत रात्रि में भोजन करना, बुरे कार्य करना, नशा आदि करना हमारी विकृति है।

अत: संस्कारों की नींव पर सारी जिंदगी का महल खड़ा हुआ है, संस्कार ही भविष्य का निराकार रूप बनाने का दम रखता है। अत: हम सभी संस्कारों के प्रति हर क्षण सजग रहे जिससे संस्कृति की रक्षा हो।

सफलता हमारा परिचय दुनियाँ को करवाती है
और असफलता हमें दुनियाँ का परिचय करवाती है।

142. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! विवाह के पूर्व सगाई होती है बीच में दो, चार, छह माह का गेफ होता है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! कोई भी कार्य करने से पहले पूर्व तैयारी की जाती है तभी कार्य पूर्ण हो पाता है जैसे पास होने के लिये एक वर्ष से विद्यार्थी तैयारी करता है, व्यापारी व्यापार की पूर्व तैयारी करता है वैसे ही सगाई पूर्व तैयारी है शादी के लिए पूर्ण मन बनाने के लिये अत: पहले सगाई बाद में शादी होती है। लड़की इससे अपरिचित घर में रहने के लिये पूर्व से तैयारी करती है। कैसे रहना व कैसा व्यवहार करना है। अनादिकाल से प्राय: यही देखा जाता है विवाह संस्कार के पूर्व सगायी की रस्म होती है। सगाई से विवाह के बीच में 2, 3 माह का गेफ इसलिये मिलता है अभी भी कुछ भी नहीं बिगड़ा अभी भी समझ जाओ, अभी भी समय है संसार चक्र से निकलने का अभी भी समय है जन्म, मृत्यु रूपी महारोग से बचने का, मिथ्यात्व, मोह रूपी अंधकार में डूबने से बचो पर किसी की समझ में ही नहीं आता जब विवाह हो जाता, पश्चात् विचार करते हैं काश शादी नहीं होती तो अच्छा था क्योंकि शादी के पश्चात् नोन, तेल, साबुन के भाव समझ में आने लगते हैं।

वर्तमान में आज देखा जाता है सगायी के पश्चात् लड़का-लड़की एक दूसरे से मोबाइल के जरिये, फ्रेंडशिप के जरिये, रिश्तेदारों के जरिये, घूमने के जरिये, स्कूल, कॉलेज के बहाने अधिक सम्पर्क में आ जाते हैं, विवेक खो देते हैं, दोनों प्यार के नशे की मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाते हैं, पागल, मोही मनुष्य की तरह। इसलिये सगाई के बाद सोचने, समझने, स्वयं को समझाने, चित्त को जगाने का समय नहीं मिलता जिससे विवाह रूपी आजीवन कारावास रूपी बंधन में कैद हो जाते हैं।

*** जैसे मछली दृष्टि से, कछुआ ध्यान देकर, पंछी स्पर्श करके अपने बच्चों को पालती हैं वैसे ही संत जन पुरुषों की संगति कर मनुष्य का पालन पोषण करते हैं।**

143. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! शोर–सूतक के बाद अथवा किसी भी कार्य की सफलता के लिए भव्य श्रावक अधिकांश शांतिनाथ विधान ही करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन्! जबसे शांतिनाथ भगवान ने इस भारत की भूमि पर जन्म लिया तब से आज तक संत परंपरा अक्षुण्ण है एक दिन के लिये भी धर्म का विच्छेद नहीं हुआ। तीर्थंकर आदिनाथ से धर्मनाथ के बीच में धर्म का बहुत समय तक विच्छेद रहा, संतों का समागम भी नहीं हुआ पर शांतिनाथ भगवान से आज तक संतों की परंपरा जीवित है। पंचमकाल के अंत समय तक संत परम्परा जीवित रहेगी, जब तक संत इस धरा पर है तब तक अग्नि है जिस दिन संतों का अभाव होगा उसी दिन अग्नि समाप्त हो जायेगी, संतों की बदौलत, धर्म की बदौलत हम सब जीवित हैं, संत परंपरा, धर्म परंपरा, हमेशा हमेशा रहे, सृष्टि पर हमेशा शांति बनी रहे, कभी भी धर्म से च्युत न हो, विघ्न बाधाएँ न आ पायें इसलिये शोर–सूतक (10 व 12 दिन) के पश्चात् अथवा सर्व विघ्न बाधाओं को दूर कराने के लिये आनंदित होने के लिये शांतिनाथ विधान किया जाता है।

बड़ी से बड़ी परेशानी को दूर करने के लिये 108 दिन तक शांति विधान अवश्य करें। निश्चित है सुख, शांति व समृद्धि होगी व सभी कार्य शीघ्र ही हल होंगे।

एक श्रावक गुरुदेव के पास बम्बई से आया, नमस्कार किया बोला आपका बहुत नाम सुना है आपके आशीर्वाद से सारे काम बन जाते हैं मेरे करोड़ों की सम्पत्ति डूबी है, बहुत दुःखी हूँ, परिवार का खर्चा–पानी भी आसानी से नहीं चल पा रहा है, मैं बहुत परेशान हूँ, आप ही मेरे दुःखों को उबार सकते हो कोई उपाय बताइये। क्या करे? गुरुदेव ने कहा – 108 दिन तक शांतिनाथ विधान कीजिये, लोंगों के द्वारा आहुतिपूर्वक हवन कीजिये सब ठीक हो जायेगा उस व्यक्ति ने वैसा ही किया 60 दिन तक विधान किये। 75% कार्य सम्पन्न हुये, डूबी हुई सम्पत्ति आने लगी गुरुदेव के पास आये, बोले–आपकी कृपा से, आशीर्वाद से सारी विपत्ति, परेशानी दूर हो गयी। गुरुदेव ने कहा सब प्रभु की कृपा व शांति विधान की महिमा है।

144. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आकर्षण कैसे बढ़ता है हम क्या करें जिससे सभी लोग आकर्षित हों तथा हमसे बार–बार मिलने तथा देखने की कोशिश करे।

समाधान –हे मनीषी आत्मन्! गुणों व अच्छे व्यवहार से आकर्षण बढ़ता है अवगुण, शृंगार व दिखावे से नहीं। वस्तु से व्यक्ति सुंदर नहीं होता वस्तु के स्वभाव से आकर्षण बढ़ता है। महिलाएँ पुरुषों को आकर्षित करने के लिये और पुरुष महिलाओं को आकर्षित करने के लिये कई घंटे शृंगार हेतु ब्यूटी पार्लर में गुजार देते हैं, अपनी व परिवार की मान मर्यादा, सम्मान को, विवेक को, बुद्धि को खो देते हैं।

दूसरों को आकर्षित करने के लिये कभी चेहरे को क्रीम, पाउडर, मस्करा, लिपिस्टिक आदि पोतकर आकर्षित करना चाहते हैं तो कोई अच्छे कपड़ों से दूसरों को आकर्षित करते हैं। ऐसे कपड़ों से आकर्षित करना चाहते हैं जिन कपड़ों से अंग प्रदर्शन होता है, जिनसे शील भंग होता है तो कोई अनेक प्रकार के आभूषणों, साज–सज्जा के द्वारा आकर्षित करना चाहते हैं। लोग दिखावे की दुनियाँ में जी रहे हैं सभी अधिक से अधिक दिखावा करके स्वयं को आकर्षित करते हैं। जैसे – कोई धन को दिखाकर, सुन्दर वस्तुओं को दिखाकर, कोई अपने घर को सुंदर बनाकर दिखावे में लगे हुये हैं लेकिन उन्हें यह नहीं पता लोग इन चीजों से थोड़े समय के लिये आकर्षित होते हैं लेकिन जिनके पास अधिक गुण है, संयम, तप, त्याग में सर्वश्रेष्ठ है, जिन लोगों के अंदर दूसरों की सेवा करने का गुण हो, सबके बारे में सोचने का गुण हो तथा हम सदैव सकारात्मक ऊर्जा से भरे हो तो ऐसे लोग सभी को अपने प्रति आकर्षित करते हैं सभी लोग उनके पास अधिक से अधिक समय बिताना पसंद करते हैं इसलिये अपने अंदर गुणों को बढ़ायें क्योंकि गुण ही सबको आकर्षित करते हैं बाहर का दिखावा नहीं वस्तु से व्यक्ति सुंदर नहीं होता बल्कि व्यक्तित्व कृतित्व व गुणों से सुंदर होता है, गुणों के प्रति आकर्षण ही सच्चा आकर्षण है जिसे देखकर ऊपर उठने लग जायें तन, मन चेतन सब कुछ विशुद्ध हो यही आकर्षण है।

145. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बताया दूसरों को अपना श्रेय देने पर सभी हमारी प्रशंसा करते हैं ऐसा क्यों?

समाधान –हे भव्य श्रावक! यदि हम किसी से अपनी प्रशंसा चाहते हैं तो दूसरों को श्रेय देना सीखे। जब–जब हम अच्छे कार्यों का श्रेय दूसरों को देते हैं तब–तब प्रशंसा के पात्र बनते हैं। जैसे – बहू यदि अच्छा भोजन बनाये कोई पूछे बहुत स्वादिष्ट भोजन है किसने बनाया तो बहू उस भोजन का श्रेय सासु माँ को देती है तो वह बहू सासु माँ की प्रिय बहू बन जाती है, विद्यार्थी सर्वश्रेष्ठ अंकों से पास हुआ तो पढ़ाने का श्रेय अपने टीचर, माता–पिता व मित्रों को देता है तो सभी उसकी प्रशंसा करने लगते हैं, शिष्य ज्ञानी है, ध्यानी है तो सभी कहते हैं कितना ज्ञान है, अच्छी तपस्या है तो शिष्य कहता है जो कुछ है सब गुरुदेव की बदौलत है सारा श्रेय गुरु को दे दिया तो वह शिष्य गुरु का प्यारा हो जाता है। यदि कोई नेता कोई कार्य करे उसका श्रेय, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री को देता है तो वह सारी जनता के लिये प्रशंसनीय बन जाता है। हम कोई भी कार्य करे उसका श्रेय अपनों से बड़ो को देने पर सभी के प्रिय व सबसे प्रिय बन जाते हैं। जैसे – कमल के पत्ते पर पानी की बूँद मोती जैसी चमकती है उसमें प्रभाव कमल के पत्ते का है पानी की बूँद का नहीं उसी प्रकार शिविर में जो भव्यात्मन् अधिक संख्या में बैठकर ज्ञानार्जन कर रहे हैं इसमें मेरा प्रभाव नहीं, प्रभाव तो आदिनाथ भगवान का है, आचार्य मानतुंग स्वामी का है। इस प्रकार अपना श्रेय सदा दूसरों को देने से सदैव सभी के द्वारा प्रंशसा को प्राप्त होते हैं।

अत: जो अपनी प्रशंसा चाहते हैं वे प्रशंसा के कार्य करें, बड़ो का आदर करें, स्वयं अच्छा कार्य करने पर अपने से बड़े को श्रेय दें। आपकी कृपा से आपके आशीर्वाद से मेरा कार्य सम्पन्न हुआ इतना कहने पर सभी बड़े व छोटे लोग आपकी प्रशंसा करने लगेंगे सभी की नजरों में आप प्रशंसा के पात्र होंगे।

क्रोध यमराज के समान है, लालच वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और संतोष इन्द्र के नंदन वन जैसा है।

146. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ऐसा कहा जाता है शांतिधारा शुरू से अन्त तक अखण्ड रूप से होनी चाहिए ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यात्मन! शांतिधारा मंत्रोच्चारण के पूर्व से अन्त तक अखण्ड होना चाहिए। अखण्ड का तात्पर्य है जिस धारा से जल की धारा की जा रही हो वह धारा बीच में बंद न हो निरन्तर चलती रहे। सोमदेव सूरि आदि आचार्यों ने इस परम्परा पर जोर दिया।

प्रथम तीर्थेश आदिनाथ से नवमें तीर्थंकर पुष्पदंत भगवान तक निरन्तर इस भारतभूमि पर दिगम्बर मुनि होते रहे और धर्म की परम्परा अखण्ड चलती रही परन्तु पुष्पदंत भगवान के तीर्थ से शीतलनाथ भगवान के बीच पाव पल्य (असंख्यात वर्षों) तक धर्म का प्रभाव हो गया था फिर शीतलनाथ भगवान से श्रेयांसनाथ भगवान के बीच आधा पल्य तक धर्म का अभाव रहा, वासुपूज्य से विमलनाथ के बीच एक पल्य का अभाव रहा, विमलनाथ से अनंतनाथ के बीच पौन पल्य का अभाव रहा, अनंतनाथ और धर्मनाथ के बीच आधा पल्य का अभाव रहा, धर्मनाथ से शांतिनाथ के बीच पाव पल्य का अभाव रहा परंतु शांतिनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक अखण्ड रूप से रही तथा पंचमकाल के अंत समय तक धर्म की परम्परा निर्बाध रूप से चलती रहेगी, एक दिन के लिए भी विलुप्त नहीं होगी, मुनि व श्रावकों का भी अभाव नहीं होगा। समाज में परिवार में, गाँव में, नगर में, देश में, राष्ट्र में सुख शांति बनी रहे। किसी प्रकार का बिखराव ना हो, खण्ड-खण्ड न हो, प्रेम, सामंजस्य बना रहे, अखण्डता बनी रहे, पंचमकाल के अंत समय तक मोक्षमार्ग प्रशस्त रहे। श्रमणों की चर्या का पालन निरतिचार होता रहे, संतों का अंत तक मान सम्मान, बहुमान होता रहे, अंत तक धर्म का साम्राज्य बना रहे इसी लक्ष्य को लेकर शांतिधारा की जाती है।

इसी उद्देश्य को लेकर श्रावक गण सुख-दुख में हर समय शांति विधान करते हैं जिससे हमारे परिवार में कोई परेशानी न आये, कार्य में बाधा न आये, विवाह आदि अच्छे से सम्पन्न हो, सभी कार्य सुचारू रूप से चले, समाज में, परिवार में अखण्डता बनी रहे, वाद विवाद की स्थिति न बने, धर्म अखण्ड बना रहे इसी उद्देश्य को लेकर शांति विधान अधिक करते हैं।

147. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुनते हैं चरण आचरण के प्रतीक होते हैं ऐसा क्यों? क्या कारण है।

समाधान – हे भव्य श्रावक! जिनका आचरण श्रेष्ठ है जिन्होंने रत्नत्रय को धारण किया है, जो महापुरुष कहलाते हैं जिन्होंने संयम की रोशनी से अपने जीवन को जलाया है ऐसे आचरणवान् के चरण पूज्य होते हैं इसलिए आचरणवान् के चरण स्पर्श किये जाते हैं। उनके पैर के अँगूठे से सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है। सकारात्मक ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए powerful बनने के लिए, उन जैसे आचरण को, गुणों को प्राप्त करने के लिए आचरणवान् महापुरुषों के संत-महंतों के चरण स्पर्श करते हैं।

यदि ज्ञान है पर सम्यक् चारित्र को धारण नहीं करता ज्ञान का ही अहंकार करने लगता है तो ऐसा ज्ञान मुर्दे को पहनाये गये आभूषण के समान है। सम्यक् आस्था ही धर्मरूपी वृक्ष की जड़ है और समीचीन ज्ञान उसका तना है। श्रद्धा रूपी तने में ही चारित्र के फल लगते हैं परंतु जैसे पेड़ के हरे भरे होने पर भी यदि फल नहीं लगते हैं तो वह पेड़ कोई काम का नहीं वैसे ही चारित्र रूपी फल के बिना ज्ञानरूपी वृक्ष फलित नहीं होता।

चारित्र से ज्ञान की शोभा बढ़ जाती है। चारित्र से आत्मानुभूति प्रकट होती है, आत्मानुभूति मीठे फल की तरह मिठास पैदा करती है, चारित्र ही ध्यान की सिद्धि के लिए चिंतामणि रत्न है, चारित्र ही सुख, शांति, सौंदर्य और सौभाग्य का घर है, चारित्र ही मोक्ष रूपी लक्ष्मी के पाणिग्रहण के लिए बंधन है, चारित्र ही बल, आयु, आरोग्यता का संगम स्थान है, चारित्रवान् की ही पूजा होती है, देवता भी चारित्रवान् के चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं।

देश के नेता देशवासियों के लिए आदर्श पुरुष होते हैं, परिवार के अभिभावक पारिवारिक जनों को सम्माननीय होते हैं, विद्यालय के शिक्षक विद्यार्थियों के लिए नमस्कार के योग्य होते हैं पर पूज्यनीय नहीं होते, आचरणवान् न होने से उनके चरण नहीं पूजे जाते हैं। इसलिए देश के कर्णधारों को चारित्रवान् होना चाहिए। चारित्र व चारित्रवान् की महिमा ही हमारी भारतीय संस्कृति में गायी गयी है, चरित्रहीनों की नहीं।

भगवान राम, महावीर आदि महापुरुषों के चरण आचरण के कारण पूज्य बन गये, आचरण जिसके पास होता है वे चरण मंदिर में रखकर पूजे जाते हैं तथा आचरणहीन चरण मरघट पर बेरहमी से जला दिये जाते हैं। आचरण ही जीवन को महान् बनाता है, आचरण ही इंसान को भगवान बनाता है, आचरण मोक्ष जाने के लिए पंख है, आज मानव आचरण करता है उसमें भी मायाचारी करता है, भगवान को धोखा देता है। शायद इंसान को यह नहीं मालूम कि ईश्वर को धोखा नहीं दे रहे अपने आप को धोखा दे रहे हैं। स्वयं को धोखा न देकर सच में चरण पूज्य बनो जिससे हमारे चरण आचरण के योग्य बनें।

*** दृष्टि से देखकर पैर रखना चाहिए, कपड़े से शुद्ध करके पानी पीना चाहिए, शास्त्र से शुद्ध करके व वचन बोलना चाहिए और मन में विचार करके कार्य करना चाहिए।**

***

*** संत वृक्ष है, संयम उसकी जड़ वेद शाखाएँ, धर्म तथा कर्म पन्ने हैं इसलिए संत का कर्तव्य है कि जड़ की रक्षा करे क्योंकि जड़ के अभाव में न पत्ते रहेंगे न शाखाएँ।**

***

क्षणिक जीवन चपल ये मन न इसमें सार है यारो
बनाना हो सफल इसको तो तज संसार ये यारो,
शिखर जी की न तुमने कभी भी वंदना आकर,
भले ही जैन हो यारो मगर बेकार हो यारो।

148. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है प्रायश्चित से, प्रतिक्रमण से व शास्त्र स्वाध्याय से मन का मैल मिटता है ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्य श्रावक! प्रत्येक संसारी प्राणी आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं के कारण निरंतर दुःखी रहता है तथा वह अनेक प्रकार की विकथाओं को करता है, भोजन, कथा, स्त्री, पुत्र, पुत्री, परिवार, समाज, राष्ट्र, राज, चोर आदि विषयभोग संबंधी कथाओं में मस्त रहता है ये सभी कथाएँ संसार में भटकाने वाली तथा अज्ञान को बढ़ाने वाली है, ज्ञान की प्राप्ति के लिए, राग द्वेष, कषाय रूपी मन का मैल समाप्त करने के लिए धर्मकथा का श्रवण करना चाहिए, धर्मकथाओं का अध्ययन करना चाहिए जिससे अज्ञान रूपी अंधकार समाप्त हो, ज्ञान का प्रकाश हो, आत्मा का विकास हो, कर्मों का नाश हो, मोक्ष का प्रयास हो।

धर्मकथा थकान, टेंशन को दूर करती है, संबल, साहस, संस्कारों को लाती है। जिनधर्म व जिनवाणी भव्यों को सुहाती है, पुरुषार्थ को जाग्रत करती है, धर्मग्रंथों का अध्ययन आत्मा की सुरक्षा में ढाल का काम करती है जैसे शत्रु से बचने के लिए योद्धा की ढाल रक्षा करती है और तलवार से शत्रु पर वार किया जा सकता है वैसे ही पाप कर्मरूपी शत्रुओं से धर्मशास्त्रों की ज्ञान रूपी ढाल ही बचाती है।

धर्मोपदेश मनोरंजन के लिए नहीं किया जाता आत्मरंजन के लिए किया जाता है। तन के मैल को पानी से धोया जाता है और मन के मैल को जिनवाणी से, स्वाध्याय से, गुरुपदेश से धोया जाता है तन का मैल दिखता है इसलिए हर व्यक्ति धोना चाहता है। मन का मैल अथवा स्वयं का अपराध स्वयं को दिखता है तथा स्वयं की अनुभूति में आता है। पश्चाताप के आँसुओं से भी मन का मैल धुलता है।

जिनेन्द्र भगवान के वचन मन के मैल को, राग–द्वेष, रूपी कचरे को साफ करते हैं, जिनवाणी अमृत है पिलाने का कार्य गुरु करते हैं। भगवान की वाणी जानवरों को भी सद्मार्ग दिखाती है, इंसान को चलना सिखाती है तथा एक दिन सभी जीवों से क्षमायाचना व अपनी गलतियों का प्रायश्चित करने पर सभी भूल सुधारने पर आत्मा भी परमात्मा बन जाती है।

149. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! सुना है ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, ईश्वर के आशीर्वाद के बिना कोई भी कार्य नहीं चलता ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! यह सच है कि ईश्वर की बिना मर्जी के कोई भी काम नहीं होता अथवा दुनियाँ में ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता क्योंकि हर इंसान के दिल में ईश्वर की शक्ति विद्यमान है। जब भक्त श्रद्धा भक्तिपूर्वक दिल से ईश्वर का नाम लेता है, अपना श्रेय ईश्वर को देता है, ईश्वर के गुणों का गान करता है, भक्ति करता है। श्रावक विचार करता है जो भी हो रहा है जो भी होगा सब ईश्वर की कृपा से होगा तब यह बात सिद्ध हो जाती है कि ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

जब हम पुरुषार्थ करते हैं, पुरुषार्थ के बदौलत ही शैतान इंसान बन जाता है इंसान भगवान बन जाता है तब कहा जाता है सब ईश्वर की ही माया है, अर्थात् ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

आदमी अच्छे या बुरे जो भी कृत्य करता है उनका लेखा जोखा परमात्मा के यहाँ होता रहता है फिर बाद में कृत्य के अनुसार उसका फल परमात्मा के द्वारा दिया जाता है जैसा कार्य वैसी सजा दी जाती है। यदि कोई अपने अपराध को दण्ड मिलने से पूर्व स्वीकार कर लेता है तो उसका दण्ड कम कर दिया जाता है सजा माफ भी कर दी जाती है। किसी भी मनुष्य का अच्छा या बुरा कृत्य परमात्मा की नजरों से छिपा नहीं है, हम कोई भी पाप कार्य करते हैं छुप कर करते हैं कोई देख न ले पर ध्यान रखना तुम सबसे बच सकते हो पर परमात्मा तुम्हें हर पल देख रहा है इसलिए हम जब भी कोई कार्य करें तो परमात्मा की बिना आज्ञा के न करें। रावण ने परमात्मा की बिना आज्ञा के पाप कार्य किया, दूसरों की स्त्री का अपहरण किया, चोरी की, परस्त्री का पाप किया, अहंकार में आ गया, परमात्मा की नहीं मानी इसलिए अधोगामी बना। परमात्मा ने जहन्नुम में डाल दिया कहा भोगो अपने कृत्य को।

अत: जैसी परमात्मा की रजा उसमें हमें मजा, जैसी परमात्मा की मर्जी वैसी हमारी मर्जी। हम परमात्मा के खिलाफ एक कदम भी न चलें वरना कर्म व्यवस्था तो यही है इसलिए कहा जाता है ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

150. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया विनय मोक्ष का द्वार है अर्थात् विनय ही संसार सागर से तरने के लिए मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! विनय मुक्ति का कारण है, लक्ष्मी का कारण है, प्रीति का कारण है, विनय बुद्धि व विवेक का कारण है, **विद्या ददाति विनयं।** विनय के बिना उत्तम विद्या की प्राप्ति नहीं होती, जो विद्या के समीप ले जाये वह विनय कहलाती है। विनय ही संसार सागर से तरने के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है इसलिए कहा भी है "विणओ मोक्खद्वारं अर्थात् विनय ही मोक्ष का द्वार है।

विनम्रता ही ऐसा मार्ग है जिससे विपत्तियों के दलदल को बड़ी ही सरलता से पार किया जा सकता है। विनम्रता आते ही व्यक्ति की पात्रता स्वयमेव दिखने लगती हैं क्योंकि विनम्रता सारे सद्गुणों का दृढ़ स्तंभ है जो फलदार पेड़ विनम्रता गुण के कारण झुके रहते हैं लेकिन जो बड़े बड़े पेड़ अहंकार में खड़े होते हैं वे आँधी तूफान आने पर मुर्दे की तरह गिर जाते हैं अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं अर्थात् जो झुकना जानता है उसे दुनियाँ ऊपर उठाती है, जो केवल अकड़ना जानता है दुनियाँ उसे उखाड़ फेंकती है अत: जो झुक जाता है वह अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकता है। झुकने वाला व्यक्ति रुई के समान हो जाता है जिसे तीक्ष्ण तलवार भी नहीं काट सकती।

संसार में व्यक्ति की कमर झुक जाती है लेकिन सिर नहीं झुक पाता। कहते हैं **झुकता वही है जिसमें ज्ञान है अकड़ना तो खास मुर्दों की पहचान है।** जैसे फलदार पेड़ व गुणवान व्यक्ति ही झुकते हैं, सूखा पेड़ और मूर्ख व्यक्ति नहीं झुकते। अगर आप झुकना नहीं जानते तो आप या तो टूट जाते हैं या फिर काट दिये जाते हैं यदि इन सबसे बच गये तो आप कभी भी आगे नहीं बढ़ पायेंगे, अत: आगे बढ़ने के लिए कुछ सीखने के लिए झुकना सीखें जैसे कुएँ में उतरने वाली बाल्टी जब झुकती है तो भरकर आती है जीवन का यही गणित है जो झुकता है वह प्राप्त करता है।

अत: जो पुरुष आत्म विद्या को प्राप्त करना चाहते हैं वह सर्वप्रथम अपने जीवन में विनय भाव धारण करें। जिस प्रकार जमीन पर पड़ी वस्तु बिना झुके प्राप्त नहीं हो सकती, उसी प्रकार गुणों की प्राप्ति, ज्ञान की प्राप्ति मोक्ष की प्राप्ति विनय भाव के नहीं होती अत: विनय ही मोक्ष को प्राप्त करने का उत्तम दरवाजा है।

151. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! क्रोध अकाल मौत के लिए आमंत्रण कार्ड है तथा क्रोध कैंसर व अनेक रोगों का घर है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य पुरुष! यह सत्य है क्रोध अकाल मौत को अपने पास बुलाता है, स्वयं निमंत्रण देता आओ मेरे पास मुझे ले जाओ, क्रोध जिंदगी को कम करता है, क्रोध करने से जीवन की धड़कन बढ़ जाती है, ब्लड प्रेशर हाई होने लगता है। हर व्यक्ति को जिंदगी में गिनती की धड़कनें मिली हैं, यदि धड़कनों को क्रोध से तीव्र करके जो धड़कनें हमें 60 मिनिट की मिली है उन्हें 40 मिनिट में ही निकाल देते हैं तो 20 मिनिट आयु कम हो जाती है।

क्रोध कैंसर व अनेक रोगों का बीज है। कैंसर का बीज एक छोटे से बिंदु से प्रारंभ होता है लेकिन जब वह फैल जाता है तो बेहद कष्ट होता है तथा यह रोग महारोग के रूप में जान लेवा बन जाता है फिर अनेक उपचार करने पर भी बचाया नहीं जा सकता। क्रोध अनेक रोगों का बीज है एकमात्र थोड़ी देर का क्रोध करने से हँसती खेलती हुई जिंदगी में कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं जो अपने जीवन को व अन्य दूसरे लोगों के जीवन को नष्ट कर देता हैं, क्रोध के आने पर सम्पूर्ण परिवार भी नष्ट हो जाया करता है इसलिए क्रोध जीवन के लिए जहर का काम करता है।

क्रोध का उदय पूर्व अपराध का परिणाम है जिसकी सजा यहाँ पर भी मिल सकती है तथा इस जिंदगी के बाद अगली जिंदगी में भी मिल सकती है। क्रोध खिलती हुई जिंदगी का परिणाम नहीं, गिरती हुई , डूबती हुई जिंदगी का विकार है, क्रोध आत्मा का शत्रु है, क्रोध से रक्त कणिकाएँ जलती हैं, क्रोध से आत्मा जलती है तथा क्षमा से कर्म जलते हैं।

संसार की आग से तो सभी परिचित हैं लेकिन दूसरी आग क्रोध की है जो हम सभी संसारी प्राणी के पास जिसे देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की जरूरत है। संसार की आग तो शरीर को जलाती है, खून को जलाती है, माँस को जलाती है लेकिन क्रोध की आग शरीर में स्थित हड्डी को जलाकर जिंदगी के सभी गुणों को जलाकर राख कर देती है। अत: क्रोध मृत्यु का बुलावा है, रोगों का घर है इसलिए अकाल मृत्यु से बचने के लिए रोगों से मुक्ति के लिए क्रोध को छोड़कर आत्मा का गुण क्षमा भाव धारण करें।

152. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया ब्रेक के बिना कार व्यर्थ है प्रतिमा के बिना मंदिर व्यर्थ है और अनुभव के बिना संयम व्यर्थ है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! जैसे ज्ञान के बिना आचरण व्यर्थ है रोग के बिना संगीत व्यर्थ है, ब्रेक के बिना कार व्यर्थ है, श्रद्धा के बिना पूजा व्यर्थ है, धर्म के बिना मानव जीवन व्यर्थ है। भाव के बिना स्वाध्याय व्यर्थ है, गुरु के बिना शिष्य का जीवन व्यर्थ है प्रतिमा के बिना मंदिर व्यर्थ है वैसे ही अनुभव के बिना संयम व्यर्थ है।

परमात्मा ने सभी को दिया देकर भेजा है लेकिन उसमें न तेल है न बाती है। तेल और बाती हमें दुनियाँ में आकर पैदा करना है जैसे संयम तो धारण कर लिया पर अनुभव तो स्वयं ही पैदा करना पड़ता है स्वयं के विवेक से। एक वो लोग हैं जो अज्ञान का तेल भर लेते हैं पर तपन की बत्ती पैदा कर लेते हैं जिससे अपना दीया जलाते हैं ऐसा दीप चिराग नहीं कहलाता क्योंकि अज्ञान का तेल मिट्टी का तेल है जिसमें चिमनी जली हुई है ये चिमनी निरंतर कार्बन फेंकती रहती है जिससे घर भी काला, तन भी काला, मन भी काला हो जाता है तथा चिमनी के संयोग से जो भी सामान आता है सभी काला हो जाता है यदि हम ज्ञान का घी भर कर तप की बत्ती लगाते हैं ऐसा चिराग परमात्मा की आरती करने के काम आता है। घी के चिराग से आँखों की रोशनी बढ़ती है, माइग्रेन का दर्द नहीं होता। हमारे अंदर ज्ञान का घी हो, आचरण की बाती हो तभी परमात्मा के सामने अगरबत्ती लगाना सार्थक है। यदि आचरण की बाती नहीं है तो अगरबत्ती कोई काम की नहीं है, वैसे ही अनुभव के बिना संयम का पालन करना कोई काम का नहीं है, इसलिए अंदर से तेल निकालकर अनुभव पैदा करो।

अगरबत्ती लगाने से परमात्मा प्रसन्न नहीं होता, फल फूल चढ़ाने से परमात्मा खुश नहीं होता, परमात्मा पदार्थ का भूखा नहीं है वह तो आचरण की पवित्रता को चाहता है, जिसका आचरण पवित्र होता है जो अनुभव के द्वारा संयम से अपने जीवन को महकाता है उसी से परमात्मा खुश होता है।

हम ज्ञान के दीप में तप का तेल भर लें तो यह चिराग हमें भी रास्ता दिखायेगा दूसरों को भी रास्ता दिखायेगा।

इसलिए अत: हम आत्मानुरूप करे तो नये–नये अनुभूतियों–अनुभवों से परिचित होंगे। तभी अनुभव सहित जीवन श्रेष्ठ, संयमी व कल्याणकारी बनेगा।

153. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया देने वाला देवता कहलाता है और लेने वाला राक्षस ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्य श्रावक! प्रकृति का नियम है कि जो वस्तु को पाकर दूसरों को दे सके वही पाने का हकदार होता है। गरीबों को दिये बिना कोई परमात्मा का धन पाने की आकांक्षा रखता है। ईश्वर उसे नपुसंक, पापी, पाखंडी, मिथ्यादृष्टि समझता है। अत: जिसने दिया है, देता है उसे ही प्राप्त होता है उसे ही मिलेगा जो पूर्व में दान धर्म को अपने जीवन में देकर आया है।

वर्तमान में जिसके पास धन है, संपदा है अमीर है, सेठ है, किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है इससे पता चलता है अतीत में हमने क्या दिया था क्योंकि मिलना देने का परिणाम है, यदि कोई गरीब है, संपन्न नहीं है तो समझना चाहिए पूर्व में उसने दान नहीं दिया होगा।

कहा है चाहे एक पैसा दो चाहे दस लाख दो। देते समय, ख्याति, लाभ, अभिमान, प्रशंसा की भावना न होकर स्व पर कल्याण की भावना होना चाहिए। यदि हम इच्छाओं को, आकांक्षाओं को, लोभ वृत्ति को रखते हुए दान करते हैं तो दान का समुचित फल हमें प्राप्त नहीं होता है।

हे मनीषी आत्मन्! देने वाला देवता होता है और लेने वाला दैत्य/देवता इसलिए है कि देने वाला त्यागी होता है, सबको प्रिय लगता है, जैसे देव सभी को प्रिय होते हैं, देने से देवगति को प्राप्त होते हैं, देने से गुण प्राप्त होते हैं। देना धर्म है, देव गुणी व धर्मी होते हैं। लेने वाला राक्षस होता है, लेता वही है जिसने पूर्व में दिया नहीं था, आज भिखारी सा बना हुआ है, लेने वाले का हाथ नीचे है सिर झुका हुआ है देने वाला का हाथ ऊपर है सिर भी ऊँचा है, देने के बदले में हमें दुगुना फल प्राप्त होता है लेने में कम फल प्राप्त होता है यदि हमने कोई अच्छा कार्य किया अपना श्रेय दूसरों को दें जैसे – जो कुछ भी हुआ है सब गुरुवर की कृपा से हुआ है तो हमारा सम्मान दूसरों की नजर में दुगुना हो जाता है, देने का भाव करना परमात्मा का सम्मान करना है जब पर को दिया जाता है तो परमात्मा प्रसन्न होता है तथा देने वाला आदरणीय, सम्माननीय व पवित्र होता है।

अत: हम सभी भी लेना नहीं देखा सीखें, कुछ न कुछ अवश्य दें। यदि आपके पास धन है, तो धन दें, मकान है तो मकान दें, ज्ञान है तो ज्ञान दें, इनमें से यदि कुछ भी नहीं है तो मुस्कुराहट दें पर दें जरूर। देव बनने के लिए देना आवश्यक है इसलिए जरूर दें।

154. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! जमाने को बदलने से पहले खुद को बदलिए तभी जीवन व जमाना बदलेगा ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! किसी ने कहा है ''हम बदलेंगे युग बदलेगा'' हमारी जीवनशैली हमारे दृष्टिकोण पर आधारित होती है, दृष्टिकोण का वातावरण पर असर पड़ता है, लोगों में परिवर्तन अपनी जीवनशैली में परिवर्तन आने से होता है। कहा है जब कोई संत भगवंत के पास जाकर बैठता है तो थोड़ी देर के लिए शांति का अहसास स्वयं को होने लगता है यदि हम क्रोधी के पास जाकर बैठते हैं, बात करते हैं तो हमारे अंदर भी क्रोध पनपने लगता है, तांत्रिक, ढोंगी, पाखंडी के पास बैठते हैं तो हमें कुछ अशांति सी महसूस होने लगती है यह जीवनशैली का ही प्रभाव है।

हर व्यक्ति का अपना–अपना नजरिया है, नजरिया के स्तंभ पर जीवन की छत ढली होती है, नजरिया जीवन की आधारशिला है, नजरिया से ही नजारे बदलते हैं, नजरिया ही हमारी जीवनशैली के लिए लक्ष्य है, लक्ष्य के द्वारा ही जीवन में आचरण परिलक्षित होता है। वर्तमान प्रणाली के अनुसार मानव मिथ्यात्व, विषय कषायों की लहर में बहता हुआ दूसरों को बदलना चाहता है, जमाना बदलना चाहता है स्वयं अपनी जीवनशैली नहीं बदलना चाहता, परमात्मा कहता पहले औरों को नहीं, पर को नहीं, स्वयं को बदलिए क्योंकि औरों को बदलने से पदार्थ मिलेगा, अपमान भी मिल सकता है लेकिन स्वयं को बदलने से परमार्थ मिलता है, परमात्मा मिलता है, सम्मान मिलता है।

जमाना जीवन को देखकर मानता है जुबान की सुनकर नहीं, जमाने ने जो भी माना है सत्य ही माना है। हमारी जीवनशैली ऐसी हो हमारे द्वारा जमाने में किसी जीव को कोई पीड़ा न हो, हमारा जीवन सादा जीवन उच्च विचार वाला हो, हमारा व्यक्तित्व ऐसा हो जो हर प्राणी देखकर प्रशंसा करें, सम्मान की नजर से देखें। अनेक श्रेष्ठ कार्यों से हम सभी के आँखों के तारे हो सकते हैं यदि हमने अपनी जीवनशैली को नहीं सुधारा दूसरों को सुधारने में ही लगे रहे तो दूसरों को पीड़ा दी तो हम सभी की आँखों के पत्थर हो जायेंगे। हम सभी अपनी जीवनशैली से ही सतयुग ला सकते हैं, जीवन बदलने पर जमाना बदलेगा भगवान राम ने, महावीर ने खुद को बदला इसलिए उनके जीवन के साथ जमाना ही बदल गया। हम खुद को बदले जमाना बदल जायेगा।

155. जिज्ञासा– **हे गुरुदेव!** बीजाक्षर अत्यधिक शक्तिशाली व अत्यधिक प्रभावशाली होते हैं ऐसा क्यों?

समाधान – हे विज्ञ श्रावक! बीजाक्षर रूप मंत्रों का अत्यधिक महत्त्व है क्योंकि ये बीजाक्षर मानव के जीवन पर प्रभावशाली कार्य करते हैं इन बीजाक्षर रूप मंत्रों से सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है तथा नकारात्मक ऊर्जा नष्ट होती है, बीजाक्षर रूप मंत्र अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं, अत्यधिक ऊर्जावान होते हैं, अनंत शक्ति का पिंड है, बीजाक्षर – जो साधक ऊँ को नाभि, हृदय पर ह्रीं को पर स्थित करता है उसका मन चलायमान नहीं होता तथा जो बीजाक्षर मंत्रों का ध्यान एकाग्रतापूर्वक काय व मन को स्थिर करके करता है वह स्वस्थ व प्रसन्न रहता है, शारीरिक, मानसिक व्यंतर संबंधी सभी परेशानी समाप्त हो जाती है।

बीजाक्षर बीज के समान है। एक छोटा सा बीज जब फलीभूत होता है तो सघन व अनेक फल फूलों से सहित होता है जो सभी जीवों की तृप्ति को समाप्त करता है वैसे ही यह बीजाक्षर मंत्र हुआ करते हैं जब हम शुद्ध भावों से शुद्ध उच्चारणपूर्वक बीजाक्षर मंत्रों का ध्यान करते हैं तो उससे असंख्यात व अनंत गुना फल प्राप्त होता है जिससे सातिशय पुण्य होता है, अनंत कर्मों की निर्जरा होती है, दु:खों का क्षय होता है, पाप कर्मों का नाश होता है। विशुद्धि दिन प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ती हुई होती है इसलिए बीजाक्षर अनेक हैं पर सभी बीजाक्षरों के अर्थ अलग-अलग हैं। जैसे क्लेश समाप्त करने के लिए क्लीं बीजाक्षर का ध्यान करना चाहिए, शक्ति व ऊर्जा पैदा करने के लिए ऊँ बीजाक्षर का ध्यान करना चाहिए, सामने वाली की विद्या को रोकने के लिए स्तंभ-स्तंभ का ध्यान करना चाहिए, शांति प्राप्त करने के लिए नम: का ध्यान करना चाहिए, प्राप्ति के लिए स्वाहा का ध्यान करना चाहिए, वचन सिद्धि के लिए छं बीजाक्षर का ध्यान करना चाहिए, अध्यात्म की वृद्धि के लिए रं बीजाक्षर का ध्यान करना चाहिए, प्रेम, वात्सल्य बढ़ाने के लिए यं बीजाक्षर का ध्यान करना चाहिए, शांति व कषाय शांत करने के लिए लं बीजाक्षर का ध्यान

करना चाहिए। अलग-अलग बीजाक्षरों का अलग-अलग प्रभाव है, जैसे - अनेक प्रकार के रोगी हैं सभी की बीमारी की दवा भी अलग-अलग है। सभी का प्रभाव अलग-अलग है। जैसे - सिर दर्द के रोगी को सिर की दवा असरकारी है, स्वास्थ्यवर्धक है वैसे ही बीजाक्षरों का अलग-अलग प्रभाव है।

बीजाक्षरों के ध्यान से ही मानव श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेता है, बीजाक्षरों के मंत्रोच्चारण से स्थापना निक्षेप से पत्थर की प्रतिमा में संस्कारों के माध्यम से परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है जो अत्यधिक ऊर्जावान् व शक्तिशाली होती है जिसे तीनों लोक परमात्मा के रूप में स्वीकार करके वंदना करते हैं। बीजाक्षर मंत्रों का ही सब चमत्कार है। शांतिधारा में भी अधिक बीजाक्षरों का उच्चारण करने से शांतिधारा का जल भी अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है। जो रोगी इस जल को शुद्ध भावों से मस्तक पर नेत्रों पर लगाता है उसके रोग भी पलायमान हो जाते हैं।

※ गुण से रूप की शोभा बढ़ती है, शील से कुल की शोभा बढ़ती है सिद्धि विद्या को शोभित करती है और त्याग व दान धन की शोभा बढ़ाते हैं।

※※※

※ रूप यौवन से सम्पन्न, बड़े कुल में पैदा होते हुए भी विद्याहीन पुरुष वैसे ही आदर नहीं पाते जैसे बिना सुगंध के पलाश का फूल।

※※※

सुबह आँखे खुले मेरी तो गुरु चेहरा तुम्हारा हो
हो आँखे बंद जब मेरी तो गुरु सपना तुम्हारा हो
हो गुरुवर दूर कितने भी, मगर अंतिम समय मेरा,
समाधि से मरण गर हो तो गुरु दामन तुम्हारा हो।

156. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! तीर्थंकर बालक का सुमेरु पर्वत पर ही जन्माभिषेक करते हैं अन्य पर्वत पर नहीं ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्य श्रावक! तीर्थंकर बालक का जन्म होते ही सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर सबसे ऊँचे सुमेरु पर्वत पर ले जाता है अन्य सम्मेद शिखर हिमालय आदि पर्वतों पर नहीं क्योंकि जब सौधर्म इन्द्र ने देखा सुमेरु पर्वत से ऊँचा अन्य कोई पर्वत नहीं है। तीर्थंकर सबसे उच्च व सर्वश्रेष्ठ विचार वाले होते हैं तीनों लोकों में उनकी सोच जैसी अन्य किसी भी जीव की नहीं होती फिर चाहे वह चक्रवर्ती ही क्यों न हो।

तीर्थंकर का विचार सभी प्राणियों के प्रति करूणा भाव का होता है सभी जीव सुखी रहे, सभी में मैत्री भाव हो, सभी जीवों का कल्याण हो, तीनों लोकों में शांति हो, अहिंसा हो, कोई भी दुःखी न हो इसी कारण से जब तीर्थंकर बालक का जन्म होता है तब कुछ समय के लिए तीनों लोकों में शांति छा जाती है।

तीर्थंकर बालक को सबसे ऊँचे सुमेरु पर्वत पर ले जाया गया। यह सुमेरु पर्वत गोल आकार वाला है, पृथिवी तल से 10,000 योजन विस्तार तथा 99000 योजन उत्सेध वाला है, क्रम से हानि रूप होता हुआ इसका विस्तार शिखर पर जाकर 1000 योजन रह जाता है। यह पर्वत तीर्थंकरों के जन्माभिषेक का आसन रूप माना जाता है, क्योंकि इसके शिखर पर पांडुक वन में स्थित पांडुक आदि चार शिलाओं पर भरत, ऐरावत पूर्व व पश्चिम विदेहों के सभी तीर्थंकरों का देव लोग जन्माभिषेक करते हैं।

जिस कलश से तीर्थंकर बालक का जन्माभिषेक किया जाता है उस एक कलश की 96 कि.मी. गहराई, 48 कि.मी. चौड़ाई, 12 कि.मी. का मुख होता हैं। एक कलश में 19 नील 58 पदम लीटर जल होता है इतना जल ऊपर डाला जाता है लेकिन रंचमात्र भी कष्ट नहीं हुआ क्योंकि जन्म से ही अतुल्य बल के धारी हुआ करते हैं। सबसे अधिक ताकतवर प्राणी तीर्थंकर ही होते हैं। इसलिए जन्म होते ही तीर्थंकर भगवान को सबसे ऊँची शिला पर ले जाकर सबसे ऊँचे विशाल 1008 कलशों से जन्माभिषेक किया जाता है।

157. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया तीर्थंकर और संत की अकाल मृत्यु नहीं होती ऐसा क्यों?

समाधान – हे विज्ञ पुरुष! मौत सभी की निश्चित है लेकिन अकाल मौत सभी की नहीं होती, होनी होना जरूरी है लेकिन अनहोनी कभी-कभी होती है। जिसका पूर्व से पता हो वह होनी है। जैसे– जन्म हुआ है तो मृत्यु भी निश्चित होगी यह सभी को ज्ञात है लेकिन जिसका पूर्व से पता न हो, पूर्वाभास न हो, अच्छे-भले खड़े है पूर्व में कोई बीमारी नहीं है, अचानक एक्सीडेंट हो गया और तुरंत ही मृत्यु को प्राप्त हो गया यह अनहोनी है अथवा अकाल मृत्यु है।

तीर्थंकर जैसे महान पुरुषों की अनहोनी घटनाएँ कभी नहीं होती उनके सामने सब होनी ही होती है। पाप के उदय में व्यक्ति दुर्घटनाओं में घायल होता है तथा तीव्र पाप के उदय में अकाल मौत का शिकार होता है-यमराज के सामने मंत्र-यंत्र-तंत्र देव-देवी सभी असहाय हो जाते हैं। मृत्यु हवा की तरह है जिसे रोका नहीं जा सकता है, हवा का रुख मोड़ सकते हैं वैसे ही मृत्यु का रुख मोड़ सकते हो, जिन्दगी धर्मयुक्त हो, सात्विक हो, सम्यक्त्व से सहित हो, देव शास्त्र गुरु पर सच्चा श्रद्धान हो तो मौत सकाल हो जाती है, जिन्दगी धर्म से शून्य हो enjoyful हो तो अकाल मौत बन जाती हैं और संयम से युक्त हो तो समाधि होती है। संत पुरुष व तीर्थंकरों की कभी भी अकाल मौत नहीं होती है क्योंकि तप व संयम में श्रेष्ठ मुनिराज एक बार आहार के पश्चात् चारों प्रकार के आहार जल का त्याग कर देते हैं हर समय साधु समाधि की ओर अग्रसर रहता है। दुर्घटना, एक्सीडेंट आदि होने पर भी त्याग होने के कारण, संक्लेशता से रहित होने के कारण साधु की अकाल मृत्यु नहीं होती। श्रेष्ठ समाधि होती है तथा तीर्थंकर भगवान इतने पुण्यशाली जीव होते हैं, पुण्य प्रबल होने के कारण, संक्लेशता रहित होने के कारण, सर्वश्रेष्ठ सोच होने के कारण, विश्व कल्याण की भावना के कारण उसी भव से मोक्ष जाने के कारण तीर्थंकर भगवान का पंडित-पंडित मरण होता है अर्थात् निर्वाण होता है, अकाल मरण नहीं होता है।

तीर्थंकर जैसी सर्वश्रेष्ठ सोच पैदा करने वाले ही तीर्थंकर जैसे सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होते हैं।

158. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया पाप से खोटी गति की, पुण्य कर्म से उच्च गति की प्राप्ति होती है तथा पाप व पुण्य से रहित मोक्ष गति प्राप्त होती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! आचार्य भगवंतों ने लिखा है–

पावेण णरय तिरियं, धम्मेण गमइ देव लोयम्मि।
मिस्सस्स माणुसत्तं, दोण्हं पि खवेण मोक्खं तु।।

पाप कार्यों से, कषाय, राग, द्वेष मोह के परिणामों से इन्द्रिय विषयों का भोग करने से खोटी गति अर्थात् नरक व तिर्यंच गति, धर्म से, व्रत, संयम, तप, त्याग ग्रहण करने से देवगति में गमन होता है तथा पाप व पुण्य (धर्म व कर्म) दोनों की मिश्र अवस्था से मनुष्य गति में गमन होता है तथा पाप व पुण्य दोनों के क्षय होने पर मोक्ष अर्थात् पंचम गति की प्राप्ति होती है।

यदि आपने 24 घंटे में 90% पाप, 10% पुण्य अर्थात् 2 घंटा 24 मिनिट किया है तो नरक गति प्राप्त होगी।

यदि आपने 12 घंटे पाप व 12 घंटे पुण्य अर्थात् 50% पाप व 50% पुण्य किया है तो मनुष्य गति प्राप्त होगी।

यदि आपने 18 घंटे पाप, 6 घंटे पुण्य अर्थात् 75% पाप व 25% पुण्य किया है तो तिर्यंचगति प्राप्त होगी।

यदि आपने 2 घंटा 24 मिनिटर पाप अर्थात् 90% पुण्य व 10% पाप किया है तो देव गति प्राप्त होगी।

न पाप की क्रिया न पुण्य की क्रिया हो तो मोक्ष की प्राप्त होती है।

यदि हमारे जीवन के खाते में 50% पुण्य व 50% पाप होगा तो यह पूर्णत: सत्य है कि इस समय वह व्यक्ति मरे तो मनुष्यगति मिलेगी। यदि 50% की जगह 60% पुण्य हुआ तो धनाढ्य खानदान में जन्म होगा, सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ जन्म से ही प्राप्त होगी, यदि 70% पुण्य होगा तो किसी राजा-महाराजा के यहाँ जन्म लेता है तथा पूरे नगर या देश पर राज्य करने वाला होता है।

महर्षियों ने कहा है–राजेश्वरी सो नरकेश्वरी और तपेश्वरी सो स्वर्गेश्वरी–राज्य सम्पदा में मरने वालों का भविष्य नरक होता है। जैसे–रावण का तथा तप त्याग करने वालों का भविष्य स्वर्ग व मोक्ष होता है। अत: पुण्य–पाप से रहित पंचमगति को प्राप्त होता है।

159. जिज्ञासा– हे गुरुदेव! ऐसा आपने बतलाया और सुनने में भी ऐसा आता है कि अंत भला तो सब भला ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्य श्रावक! ऐसा कहा जाता है अंत भला तो सब भला। मेरा ऐसा विचार है अंत भला का तात्पर्य है कुंडली देखने के बाद अंतिम फलादेश की घोषणा।

अंत भला उसी का हो सकता है जिसका सारा जीवन परोपकार में गुजरा हो, जिसने जन्म से अंत तक सज्जनता को नहीं छोड़ा हो, जिसने जीवन में आवश्यकता से अधिक तृष्णा की पुष्टि के लिए परिग्रह को नहीं जोड़ा है, जो दूसरों के हित के लिए अपने धनादि खर्च करता हो, जिसने परमात्मा व गुरु के चरणों में अपना जीवन सौंप दिया हो उसका अंत में भला होना संभव है। लेकिन जो अपने बच्चों की इच्छापूर्ति में ही लगा रहा, पत्नि के साथ भोग आदि में ही लगा रहा जिसने कभी परमात्मा की आराधना नहीं की, व्रत, नियम, संयम की भावना नहीं की, संतों की सेवा नहीं की, षट् आवश्यकों का पालन नहीं किया ऐसे लोगों का अंत भला कभी नहीं हो सकता है।

कोई ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो पूरे जीवनकाल में गृहस्थ रहते हैं और अंत समय में सत्संग करके जीवन को सफल बना लेते हैं ध्यान रहे ये वे व्यक्ति है जो गृहस्थ अवस्था में रहकर सादगी से रहे, व्रती बनकर रहे, भावना भाते रहे अंत में हमारा समाधि से मरण हो, ऐसे लोग अंत समय में अपना भला कर लेते हैं।

अंत भला होना इस बात का प्रतीक है कि इसकी जिन्दगी भलाई, परोपकार व सज्जनता में गुजरी थी। जब हम चिट्ठा बनाते हैं उसमें यदि अंतिम Balance अच्छे Position में है तो यह बात साफ हो जाती है कि इसका Trading Account भी बहुत अच्छा था Gross Profit & Net Profit भी बहुत Fine था। अन्यथा Balance Sheet अच्छी हो ही नहीं सकती थी। ठीक वैसे ही हमारे जीवन भर के व्यवहार से भरा व्यापार जिसमें बुराई कम अच्छाई अधिक हो तभी अंत भला हो सकता है।

A Good was has a good end

160. जिज्ञासा– हे भक्तामर महोदधि गुरुदेव! अक्ल बड़ी या भैंस यह मुहावरा पूर्व से सुनते आये हैं पर आपने बतलाया अक्ल बड़ी या वयस् ऐसा क्यों?

समाधान – हे विज्ञ श्रावक ! आपने बहुत सुंदर प्रश्न किया। आज यह मुहावरा कई लोगों की जुबान पर देखा जाता है लेकिन 95% लोगों को यह बात नहीं मालूम कि यह मुहावरा गलत है बेतुका है। सिद्ध होगा तो गलती पर गलती हो जायेगी। जैसे–यदि एक रेल की गति 200 किलोमीटर प्रतिघंटा है तो अटलबिहारी की उम्र कितनी होगी ये सवाल ही बेतुका है इसकी कोई तुक ही नहीं बैठती। रेल की रफ्तार का किसी की उम्र से क्या ताल्लुक, ठीक वैसे ही अक्ल से भैंस का क्या ताल्लुक। इस मुहावरे का सही रूप है "अक्ल बड़ी या वयस्" वयस् का मतलब उम्र होता है। अब बिल्कुल सही बैठ जाता है कि अक्ल बड़ी या उम्र तो सही उत्तर है अक्ल। उम्र से बड़ा होने से कोई फायदा नहीं, कीमत तो अक्ल की है अर्थात् ज्ञान की है।

एक मजदूर शरीर से 8 घंटे पसीने बहाता है और 200/– रुपये कमाता है एक जज अक्ल से 4 घंटे जजमेंट देता है 1000/–रुपये कमाता है, कीमत अक्ल की है शरीर की नहीं, भगवान महावीर ने 42 वर्ष में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया लेकिन उनके पिता सिद्धार्थ को 80 वर्ष में भी केवलज्ञान नहीं हुआ। भगवान महावीर उम्र से छोटे होते हुए भी अक्ल (ज्ञान) से बड़े थे। कहा भी जाता है उम्र से कोई बड़ा नहीं होता, श्रेष्ठ कार्यों से व ज्ञान प्राप्त करके बड़ा होता है क्योंकि ज्ञान असीमित है, अनंत है, उम्र सीमित है।

अतः उम्र से बड़ा ज्ञान है। इसलिए सूक्ति का सही रूप अक्ल बड़ी या वयस् सही है। ये बात अलग है कि वयस् कहते–कहते जो कम पढ़े लिखे लोग थे उनके मुँह पर वैसा हो गया और बदलते–बदलते वह भैंस रूप में प्रचलित हो गया तब से भैंस ही चला आ रहा है। वयस् शब्द हम सभी लोगों के मुख पर चलन में नहीं है और भैंस चलन में है इसलिए मुहावरा प्रसिद्ध हो गया अक्ल बड़ी या भैंस।

बुद्धु नहीं बुद्ध बनो क्योंकि–बुद्धु बनने में अनंत संसार की यात्रा है लेकिन बुद्ध बनने में संसार का अंत है इसलिए बुद्धिपूर्वक कार्य करके बुद्ध बनने का उपक्रम करो।

161. **जिज्ञासा– हे गुरुदेव! आपने बतलाया मन ही मानव के जीवन में बंध व मोक्ष का कारण है ऐसा क्यों?**

समाधान – हे भव्य श्रावक ! मन मानव के जीवन की धुरी है। मन में अपार क्षमता है। हमारी समस्त व्रत्तियों और प्रवृत्तियों का उत्प्रेरक मन ही है यह क्रियाशील व विकासशील दोनों है। यह हमारे जीवन का मारक व तारक है। अंतर्मुखी मन अथवा चेतन मन हमारा तारक है और बहिर्मुखी मन हमारा मारक है जिसे अवचेतन मन भी कहा जाता है।

बन्धाय विषयासक्तं, मुक्तये निर्विषय मनः।
मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।।

वस्तुतः मन ही मानव के जीवन में बंधन व मुक्ति का कारण है जब मन बहिर्मुखी होता है तो विषयों की ओर भागता है तब इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति से बंध होता है लेकिन जब मन अंतर्मुखी होकर स्वस्थ व संयमित हो जाता है तब मुक्ति का कारण हो जाता है अपने मन को वश में करने वाले महात्मा माने गये हैं। मन को वश में करने का अर्थ दबाना नहीं है बल्कि मन को समझना है। मन को दबाने व समझाने में बड़ा अन्तर है। दबाने से मन और अधिक तनावग्रस्त हो जाता है, विक्षिप्त हो जाता है किंतु मन को समझाने पर मन शांत व स्वस्थ होने लगता है। मन को प्रशिक्षित करना, तत्त्व को वास्तविक स्वरुप की ओर ले जाना ही वास्तव में मन को वश में करना है।

जिसका मन संवेग व वैराग्य से भरा होता है वही संसार से पार हो पाता है। जिस प्रकार घोड़े पर लगाम हो तो वह सीधा अपने गन्तव्य पर पहुँच जाता है। ऐसा ही मन पर यदि वैराग्य ही लगाम हो तो वह सीधा मोक्ष तक जाने में सहायक होता है। मलिन संसार मन में कितने ही जोर क्यों न मारे उससे हारना नहीं सतत भिड़ते रहना चाहिए अन्त में विजय होना ही हैं। मन पर जोर लगाने की अपेक्षा विवेक, वैराग्य और प्रयास की चाबी द्वारा खोलने से मनोविजय का ताला आसानी से खुल जाता है।

अतः मन ही बंध व मोक्ष का कारण है अच्छे निर्मल परिणामों से मोक्ष व बुरे मन से विचार करने पर कर्मों का बंध होता है।

162. जिज्ञासा- **हे गुरुदेव!** आपने बतलाया गुरु के पादमूल में ही समाधि मरण श्रेष्ठ होता है ऐसा क्यों?

समाधान -

गुरुमूले यचि निचिते चैत्य सिद्धांत वार्धि सद्घोषे।
मम भवतु जन्म जन्मनि सन्यसन समन्वितं मरणं।।

हे भव्यात्मन्! हर मुमुक्ष की यह भावना होती है कि अंत समय में हमें गुरु चरण अवश्य मिले, उनका संबोधन प्राप्त हो, क्योंकि सही सम्यक् तरीके से समाधि मरण गुरु के पादमूल में ही होता है ऐसा इसलिए कहा जाता है कि हर किसी के जीवन में सबसे उच्च स्थान गुरु का होता है किसी की बात माने या न माने पर गुरु की बात अवश्य सुनता है और मानता है गुरु चरणों में मन सरल व निर्मल होता है। गुरु प्रायश्चित देकर हमें पवित्र कर देते हैं, पापों से निवृत्त कर देते हैं जब प्रायश्चित हो जाता है तो हम बिल्कुल सरल व विनम्र हो जाते हैं कोई विकल्प मन में नहीं रहता तो फिर समाधि करने में कोई बाधा नहीं आती है। यदि किसी के गुरु की समाधि हो गयी हो तो उसे किसी न किसी को गुरु स्वीकार अवश्य कर लेना चाहिए। क्योंकि गुरु के बिना हम किसी की सुनते नहीं है। गुरु का सम्मान बहुमान व विनय जितनी कर पाते हैं, उतनी विनय कहीं अन्य के पास नहीं होती।

गुरु होंगे तो हम स्वछन्द प्रवृत्तियाँ नहीं करेंगे व स्वतन्त्र रहकर भी समय-समय पर प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो जाएगे फिर कभी भी समाधिरण होगा गुरु की देख रेख में अच्छा होगा।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का वर्तमान में साक्षात् उदाहरण है उन्होंने अपनी सचेत अवस्था में ही अपने शिष्य विद्यासागर जी को सिंहासन पर बैठा दिया था गुरु स्वीकार कर स्वयं नीचे बैठ गये। प्रतिक्रमण प्रायश्चित आदि ग्रहण किया और कहा कि अब आप ही मेरे गुरु हो, आपको मेरी श्रेष्ठ समाधि कराना है। जैसा शास्त्रों में लिखा है गुरु मुख से सुना है कि गुरु के पादमूल में ही समाधि होती है उन्होंने वैसा कर दिखाया, इसलिए जीवन में गुरु की अहं भूमिका है, गुरु का आशीर्वाद, कृपा हमेशा बने रहना बहुत आवश्यक है। अंत समय में गुरु का

पादमूल हो, भगवान का बिंब सामने हो, सिद्धांत शास्त्रों का घोष कानो में सुनायी दे, मुनि हमारे आस-पास बैठे हो ऐसी भावना उठते बैठते, हर श्वाँस में होनी चाहिए। तब कहीं अंत समय में यह बात घटित हो पाती है और तब गुरु के पादमूल में श्रेष्ठ समाधिमरण हो पाता है कहा भी है-

मरण समय गुरु पादमूल हो संत समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की गंगा नित्य बहे।।
भव-भव में सन्यास मरण हो नाथ हाथ धर दो
मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो।

***

अंधेरा दूर हो सकता है संतों के उजाले से
तपस्या है नज़र आती पड़े पांवों के छाले से
महक संयम के बल पर ही हमें मिल जाएगी मंजिल
बताया है हमें गुरुवर ने पिच्छी के हवाले से।

***

आज का परिश्रम ही कल का आराम है।

163. जिज्ञासा- **हे भक्तामर महोदधि गुरुवर!** आपने बतलाया वर्तमान समय में युवा पीढ़ी के लिए धन को ग्यारहवां व मोबाइल को बारहवां प्राण कहा है ऐसा क्यों?

समाधान – हे विज्ञ श्रावक! ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो बिना प्राणों के जीवित हैं, प्राण है तो जीवन है अर्थात् प्राणों के संयोग से जन्म होता है तथा प्राणों के वियोग होने पर मरण होता है। मानव का जीवन 10 प्राणों से चलता है-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण, मन, वचन, काय, श्वाँसोश्वास और आयु 10 प्राणों से अधिक किसी भी जीव के प्राण नहीं होते, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के 10 प्राण होते हैं इससे अधिक अन्य किसी भी जीव के नहीं होते कम हो सकते हैं पर अधिक नहीं। परन्तु वर्तमान में मानव ने धन को ग्यारहवाँ व मोबाइल को बारहवाँ प्राण माना है जो ऐसा मानते हैं उनके लिए जीवन से प्रिय धन व मोबाइल है क्योंकि ऐसे लोगों को धन प्रिय हैं, मोबाइल प्रिय हैं, जीवन प्रिय नहीं है।

एक व्यक्ति पैसे कमाकर घर जा रहा था सूटकेस साथ में थी, डाकुओं ने देखा सूटकेस में माल हैं सीने से बन्दूक लगा दी और कहा जान दोगे या माल उस धन के लोलुपी व्यक्ति ने कहा जान ले लो माल तो बुढ़ापे में काम आएंगा, आज हर व्यक्ति की यही स्थिति है, धन कमाते-कमाते बूढा हो जाता है ऐशोआराम में जीवन गुजारता है पर स्वयं के लिए सोच नहीं पाता अंत में धन जोड़ते-जोड़ते मरण को प्राप्त हो जाता है।

ऐसे ही आज 95% लोगों की पसन्द मोबाइल हैं, मोबाइल है तो जीवन हैं, मोबाइल के बिना जिन्दगी अपूर्ण है अधूरी है आज जिस घर में खाने को नहीं है, मजदूरी करके पेट भर रहे हैं भीख मांग रहे हैं पर उनके पास भी मोबाइल है क्योंकि लोगों के लिए आवश्यक अंग प्राणों से प्रिय बन गया है मोबाइल।

जब एक बच्चे से टीचर ने पूछा बड़े होकर तुम क्या बनना चाहोगे बच्चे ने कहा मोबाइल, टीचर ने पुनः पूछा क्यों बनना चाहते हो तब बच्चे ने रोकर के कहा, दादा-दादी, मम्मी-पापा, भाई, बहिन, चाचा-चाची, मामा-मामी सभी मोबाइल से प्यार करते हैं, सभी मोबाइल को समय देते हैं मेरे लिए कोई

समय नहीं देता, मोबाइल के कारण मुझे कोई प्यार नहीं करता इसलिए मैं मोबाइल बनना चाहता हूँ जिससे मुझे सभी लोग प्यार करे। टीचर भी बच्चे की बात सुनकर समझ गया कि बच्चा सच कह रहा है। अत: आप सभी से मेरा कहना है धन व मोबाइल को प्रिय न बनाकर धर्म व जीवन को प्रिय बनाए।

जिन्दगी एक गणित है इसमें दोस्तों को जोड़ों
दुश्मनों को घटाओ, दु:खों का भाग दो
सुखों का गुणा करो वर्ग करे अच्छे समय का
वर्गमूल निकालो
घमण्ड का समीकरण बनाओ अच्छे कर्मों का

***

एक मच्छर परेशान बैठा था, दूसरे ने कहा क्या हुआ
पहला बोला यार गजब हो रहा है, चूहेदानी में चूहा
साबुनदानी में साबुन, मगर मच्छरदानी में आदमी सो रहा है।

***

हर हंसी जिंदगी को सलाम करके चलें।
दोस्त–दुश्मन सभी को राम–राम करके चलें।।

164. जिज्ञासा– हे भक्तों के दिल के सरताज आचार्य भगवन्! आपने बतलाया गुरु कृपा से 14 राजू की यात्रा भव्य जीवों की हुआ करती है ऐसा क्यों?

समाधान – हे मनीषी श्रावक!

ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजा मूलं गुरु पदं।
मंत्र मूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा।।

गुरु की मूर्ति ध्यान का आधार है, अरहंत भगवान भी गुरु है। 6 से 14 वें गुणस्थान में विराजित 3 कम 9 करोड़ मुनिराज होते हैं वे सब हमारे गुरु हैं। दीक्षा गुरु एक, शिक्षा गुरु अनेक और श्रद्धा गुरु 3 कम 9 करोड़ मुनिराज हुआ करते हैं। सिद्ध भगवान भी भूत नैगम नय से गुरु ही है। सिद्ध भगवान भी ध्यान के आधार है। उनके गुणों का चिंतन, दर्शन, ज्ञान, चारित्र का चिंतन उनके द्रव्य, गुण, पर्यायों का चिंतन ध्यान का आधार है। गुरु चरण वो होते हैं जिनकी पूजन, भक्ति हमें आचरण सिखा जाती है। गुरु के मुख से उच्चरित हर शब्द मंत्र रुप होते हैं कहा भी हैं गुरु वाक्यं प्रमाणेन, गुरु के वाक्य प्रमाण रूप है। वात्सल्य रत्नाकर आचार्य विमल सागर जी मुनिराज निमित्तज्ञानी थे अर्थात् जो मुख से बोलते थे वह काम हो जाता था, जैसे एक बार उन्होंने कहा मई की तपन थी, 48 टेम्पेचर था कहा आज शाम 4 बजे तेज बारिश होगी, 3:30 बजे तक तेज गर्मी थी बारिश के आसार भी नहीं दिख रहे थे लेकिन ठीक 4 बजे गुरुदेव के वचनों के अनुसार तेज वर्षात् प्रारंभ हुई।

हमने ज्यादा समय कहाँ निकाला? छहढालाकार ने कहा है–काल अनंत निगोद मंझार–अनंत काल तक हम निगोद पर्याय में रहे हैं। एक श्वाँस में 18 बार जन्म–मरण किया है अनंत दुःखों को उठाया हैं। मोक्षमूलं गुरु कृपा अर्थात् गुरु कृपा से मोक्ष कैसे होता है। शास्त्रों में लिखा है 6 माह 8 समय में 608 जीव मोक्ष जाते हैं तब 6 माह 8 समय में 608 जीव निगोद से निकलकर त्रस पर्याय धारण करते हैं। 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती मुनिराजों ने मोक्ष प्राप्त किया तब जाकर हम निगोद से निकलकर यहाँ तक आ पाते हैं ऐसे गुरु की कृपा से हमने 14 राजू प्रमाण लोक में से 7 राजू की यात्रा तो कर ली, निगोद (कल कल

पृथ्वी) से चित्रा पृथ्वी तक 7 राजू तक है। हम जो भी भोग रहे हैं जो भी मिला है, जो भी मिलेगा गुरु कृपा से ही मिला है। गुरु छाया से रास्ता सरल हो जाया करता है, मोक्षमार्ग बहुत कठिन है पर गुरु का साथ हो, आशीष भरा हाथ हो, गुरु चरणों में माथ हो तो कठिन कार्य भी सुगम हो जाता है। कहा है जहाँ श्रद्धा है वहाँ चमत्कार है अर्थात् श्रद्धा में ही चमत्कार हुआ करता है।

एक मच्छर परेशान बैठा था, दूसरे ने पूछा क्या हुआ,
पहल बोला यार गजब हो गया वाह क्या घर ढूँढा है।
पहला मच्छर बोला– घर कहाँ अभी तो सिफ प्लॉट खरीदा है।

***

फुर्सत नहीं घर से मंदिर तक इंसान को आने की
और ख्वाहिशे श्मशान से सीधा स्वर्ग तक जाने की रखते हैं।

165. जिज्ञासा– हे सिद्धांतज्ञ गुरुदेव! आपने बतलाया अशुद्धि में आहार देने से तन–मन व वचन तीनों शुद्धि को प्राप्त नहीं होते ऐसा क्यों?

समाधान – हे भव्यश्रावक! जो श्रावक व श्राविका साधु को व व्रती श्रावक को अशुद्धि में अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मन, वचन, काय की शुद्धि के बिना आहार देता है ऐसे अशुद्ध आहार देने से पुण्य की जगह पाप का अर्जन होता है। अशुद्धता में आहार देने पर झूठ का अवलम्बन लेकर कहते हैं मैं शूद्ध हूँ। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है ऐसा श्रावक के कहने पर साधु विश्वास करके आहार ग्रहण करता है। पर अशुद्धता में आहार देने पर साधु का अंतराय होता है, शारीरिक व मानसिक स्थिति कमजोर हो जाती है, मन प्रसन्न नहीं रहता, शरीर स्वस्थ नहीं रहता क्योंकि कहा भी है–जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन जैसा पीओ पानी वैसी होवे वाणी (As food so mood as drink water so think.) साधु के आवश्यकों में शिथिलता आने लगती है, अतिचार अनाचार लगने लगते हैं। यदि किसी श्रावक ने अशुद्धता में झूठ बोलकर आहार दिया है तो झूठ बोलने के कारण उसे किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती, जो वह वचन बोलेगा वह भी झूठा हो जाएगा और मन की अशुद्धि से आहार दिया है तो बुद्धि का विकास रुक जाएगा मानसिक स्थिति बिगड़ जाएगी। काय की अशुद्धि में आहार देने पर आगे ऐसी बीमारी होगी कि कभी वह जैन कुल में पैदा भी हो गया तो भी अभिषेक, पूजन, विधान, आहार आदि धार्मिक क्रिया नहीं कर पाएगा, शरीर में कुछ न कुछ हीनाधिकता हो जाएगी। अथवा परिवार में विजातीय, अंतर्जातीय विवाह आदि दोष उत्पन्न हो जाएंगे जिससे वह धार्मिक क्रियाओं का लाभ नहीं ले पाएगा। अशुद्ध आहार लेने व देने का फल श्रावक व साधु दोनों पर पड़ता है। इसलिए आहार में दिखावा मात्र नहीं अंतरंग, बहिरंग दोनों शुद्धि जरूरी है। इसे ही चौका कहते हैं। इसलिए शुद्ध भावों से, शुद्ध द्रव्य से सही समय पर, शुद्ध स्थान पर साधु का आहार कराना चाहिए। ध्यान रखें वस्त्रों की शुद्धि होनी चाहिए, धुले हुए वस्त्र पहिनना चाहिए। पुरुष वर्ग को धोती दुपट्टा व महिलाओं को साड़ी पहिनना चाहिए। ये दोनों ही ड्रेस जिनागम में कही है। शुद्ध वस्त्र पहनकर चप्पल

नहीं पहिनना चाहिए, चप्पल धोने के बाद भी शुद्ध नहीं है चप्पल भले लकड़ी की ही क्यों न हो, सोने की ही क्यों न हो, चप्पल तो चप्पल है। शुद्ध धुले वस्त्र पहिनकर आहार देने के लिए गाड़ी पर बैठकर नहीं आना चाहिए क्योंकि गाड़ी अशुद्ध है और गाड़ी पर बैठकर आये तो कितने जीवों को मारते हुए आए हम शुद्ध होकर भी अशुद्ध हो गए इसलिए गाड़ी पर बैठकर नहीं आएँ, वरना दोषी आप होंगे साधु नहीं, यदि साधु ने देख लिया आप अशुद्धि में आहार दे रहे हैं तो साधु को आहार नहीं लेना चाहिए। अत: मन, वचन, काय की शुद्धि के लिए चारों प्रकार की शुद्धि का ध्यान रखना चाहिए।

भगवान पर विश्वास करो उस बच्चे की तरह जिसको हवा में उछालो तो वो हँसता है, डरता नहीं क्योंकि वो जानता है कि आप उसे गिरने नहीं देंगे।

***

मनुष्य बड़ा अजीब है प्रार्थना करते वक्त समझता है कि भगवान बहुत नजदीक है और गुनाह करते वक्त यह समझता है कि भगवान बहुत दूर है।

***

जिन्दगी जीने के लिए मिली थी,
लोगों ने सोचने में गुजार दी।